સેવાગ્રામ

રચનાત્મક કાર્યકર્તા સંમેલન

કા વિવરણ

૧૯૪૮

રઘુનાથ શ્રીધર ધોત્રે
મંત્રી, ગાંધી સેવા સંઘ.

ગાંધી સેવા સંઘ, વર્ધા

सेवाग्राम
रचनात्मक कार्यकर्ता संमेलन
का विवरण

१९४८
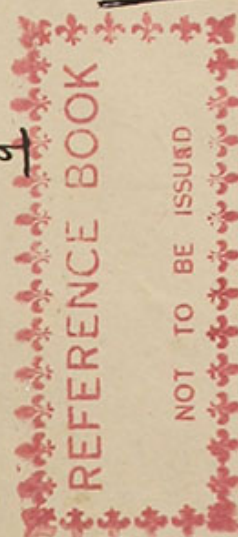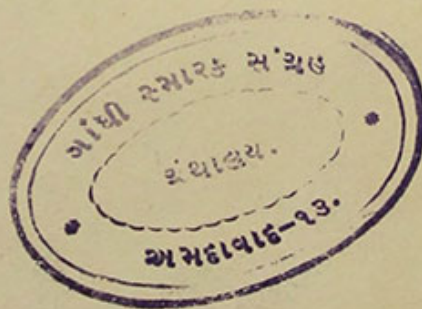
सेवाग्राम

रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन
का विवरण

★

हमें स्वर्णरूप बनना है

भारत को स्वराज मिले, यह समस्त भारतवासियों की पुकार है; और यह उचित ही है। परंतु स्वराज हमें नीति-मार्ग से प्राप्त करना है। वह नाम का नहीं। वास्तविक स्वराज होना चाहिए। ऐसा स्वराज नाशकारी उपायों से नहीं मिल सकता। उद्योग की आवश्यकता है; पर उद्योग सच्चे रास्ते से होना चाहिए। भारतभूमि एक दिन स्वर्णभूमि कहलाती थी, इसलिए कि भारतवासी स्वर्णरूप थे। भूमि तो वही है, पर आदमी बदल गये हैं। इसलिए यह भूमि उजाड़-सी हो गई है। इसे पुनः स्वर्ण बनाने के लिए हमें सद्गुणों द्वारा स्वर्ण-रूप बनना है। हमें स्वर्ण बनानेवाला पारसमणि दो अक्षरों में अंतर्निहित है; और वह है 'सत्य'। इसलिए यदि प्रत्येक भारतवासी 'सत्य' का ही आग्रह करेगा, तो भारत को घर बैठे स्वराज मिल जायगा।

'सर्वोदय' —गांधीजी

★

प्रकाशक :

रघुनाथ श्रीधर धोत्रे,

मंत्री, गांधीसेवा संघ

नेक नीयत और नेक तरीका

इसके लिये एक दूसरी दलील दी जाती है, जो देखने में बड़ी सुहावनी भी लगती है। यह बहस पुरानी ही है कि अगर काम अच्छा है तो उसके लिये जिन अच्छे-बुरे उपायों का इस्तेमाल किया जाय वे भी अच्छे हैं। जमानों से यह बहस चलती आ रही है। क्योंकि ये सवाल बड़े पेचीदा होते हैं। उनका 'हाँ' या 'ना' में जवाब नहीं मिलता। बहुत तकलीफ और दिमागी परेशानी उठाने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि ग़लत क़दम उठाने का नतीजा बुरा ही होता है। बात बिल्कुल अदना-सी है। लेकिन उसके नतीजे बहुत गहरे हो सकते हैं। राजनीति में वक्ती फ़ायदा देखा जाता है। ज़रूरत इस बात की है कि चाहे वक्ती फ़ायदा हो या न हो, जो क़दम उठाया जाये, वह सही क़दम हो। जिन्दगी के तमाम क्षेत्रों में यह उसूल बुनियादी है। इसके बारे में अगर हमारा दिमाग साफ हो, तो सारे मामले सुलझ सकते हैं।

सेवाग्राम-सम्मेलन
१३ मार्च, १९४८

—जवाहरलाल नेहरू

विषय-सूची

बृहस्पतिवार, ता. ११ मार्च १९४८

विषय नियामक समिति की बैठक

दूसरा दिन

ता. १२ मार्च १९४८

उपसमिति की बैठक

तीसरा दिन

ता. १३ मार्च, १९४८

खुला अधिवेशन

ता. १३ मार्च, १९४८

विषय-निर्वाचिनी की बैठक

खुला अधिवेशन

दूसरा दिन

१४ मार्च १९४८

विषय निर्वाचिनी समिति

खुला अधिवेशन

१४ मार्च, १९४८, तीसरे पहर, तीन बजे

विषय-निर्वाचिनी समिति

ता. १५ मार्च १९४८

खुला अधिवेशन

सूचना–अंक पृष्ठ संख्याके सूचक हैं।

भूमिका

माफी माँगने की हिम्मत नहीं

सेवाग्राम रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन की यह 'रिपोर्ट' पेश करते हुए मुझे सन्तोष के साथ-साथ शर्म भी है। यह 'रिपोर्ट' सम्मेलन खतम होने के बाद ज्यादा से ज्यादा पन्द्रह दिन, या एक महीने के भीतर, प्रकाशित हो जानी चाहिये थी। इसका जिम्मा मैंने लिया था। लेकिन, मैं ज़िम्मेवारी पूरी न कर सका। कुसूर सब तरह से और पूरा पूरा मेरा है। गांधी सेवासंघ के मंत्री और दूसरे ज़िम्मेदार व्यक्ति बेचारे लाचार थे। सर्वोदय समाज के सदस्य और अनुबन्धी मुझसे चिढ़े, नाराज हुए, झुंझलाये भी। मेरी हिम्मत माफ़ी माँगने की भी नहीं होती। किस मुँह से यह ढिठाई करूं? इस लिए चुप रहना ही प्रशस्त समझता हूँ। सर्वोदय समाज के साथी और मित्र जानें और उनकी उदारता तथा कृपाशीलता जाने! मैंने अपना शील निबाहा, वे अपना निबाहें! अपराध करना मेरा शील है। 'क्षमा बड़नको उचित है।'

यह रिपोर्ट मेरी और मेरे कुछ मित्रों की टिप्पणियों पर से बनायी गयी है। हम लोगों में से कोई भी शीघ्रलिपि नहीं जानता। फिर भी जहां तक हो सका, वक्ताओं के मुख्य मुख्य वाक्य और शब्द ज्यों के त्यों रखने की कोशिश की गयी है। आशा है कि कहीं भी अर्थहानि या अर्थविपर्यास नहीं हुआ है। भाषा और शैली के बारे में मैं मजबूर था। वक्ताओं की भाषा और शैली पर मेरी भाषा और शैली के दोषों की छाया पड़ी हो, तो इसमें मैं कसूरवार तो हूं, लेकिन मजबूर भी हूं। जहांतक मुझसे बना, मैंने सचाई के साथ हर एक का आशय ठीक ठीक व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। अगर दोष हैं, तो मेरे हैं। जो गुण हैं, वे उन वक्ताओं के अपने हैं।

इस विवरण में जगह जगह पुनरुक्ति है। बार बार एक ही बात और एकही विषय अलग अलग रूपों में आता है। मैंने अपनी कैंची नहीं चलायी। सम्मेलन का हू-ब-हू और यथातथ्य चित्र रख देना मैंने अपना कर्तव्य समझा। यदि पुनरुक्ति और गोल चक्कर की तरह की गति का कुछ आभास यहां है, तो दोष परिस्थिति का है। किसी निर्णयपर पहुँचना इतना कठिन था कि चर्चा चक्राकार गति से घूमे बिना नहीं रह सकती थी।

सम्मेलन की फल-निष्पत्ति

यह बिलकुल स्वाभाविक था कि बहुतोंने मुझसे पूछा, 'आखिर सेवाग्राम के सम्मेलन में से क्या निष्पन्न हुआ'? मैंने जवाब दिया, 'बहुत-कुछ। लेकिन प्रस्तावों के रूप में नहीं।' सम्मेलन कहते ही ऐसा लगता है कि उसमें कुछ ठोस संकल्प, शानदार प्रस्ताव और दबदार सूचनाएँ होनी चाहिए।

ऐसी एक प्रथा ही पड़ गयी है। किन्तु इस सम्मेलन के प्रस्ताव, सूचनाएँ और संकल्प पढ़-सुनकर किसी के मन पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा।

सम्मेलन का फल–'सम्मेलन'

सच कहिये तो यह सम्मेलन बिना किसी प्रस्ताव के ही पूरा हो जाना चाहिए था। किन्तु परम्परा की गुलामी बड़ी दुस्तर होती है। इसलिए इस सम्मेलन में भी कुछ प्रस्ताव मंजूर हुए। वैसे तो प्रस्तावों का स्वरूप ऐसे कुछ मनपर अपनी छाप जमानेवाला नहीं है। परन्तु, शायद यही इस सम्मेलन की विशेषता थी। सम्मेलन ने यह खबरदारी रखी कि जो बात करना संभव न हो, उसे ख्वामखा कहा न जाय और जो कुछ कहा जाय, वह भी, जितना बने उतनी, सीधी-सादी भाषा में और सीधे-सादे ढंग से कहा जाय। इस सम्मेलन की मुख्य फलश्रुति, 'सम्मेलन' के अतिरिक्त और कुछ नहीं। बापू के रहते ही यह तय हुआ था कि सबलोग एक बार मिलें। उनके न रहने के बाद मिलना और भी जरूरी मालूम होने लगा। केवल मिलना भी क्या कोई छोटी बात है? एक-दूसरे से मिलने के लिए लोग दूर दूर से जाते हैं। यात्रा की कितनी मुसीबतें उठाते हैं? कितना खर्च करते हैं? उन्हें वह खर्च व्यर्थ नहीं मालूम होता। मिलने के सिवा उसका और कोई फल भी नहीं मिलता। मिल गये कि खर्च और परेशानी सार्थक हो गयी। मिल जाने पर हरएक की अपनी अपनी अभिरुचि और संस्कृति के अनुरूप कुछ न कुछ काम भी हो जाता है। भजन होते हैं, प्रार्थना होती है, सामुदायिक वाचन होता है, गायन होता है, खेल होते हैं, सह-भोजन, सह-विचार, चर्चा, सभी कुछ। एकत्र आनेवालों के स्वभाव और प्रकृतिपर यह मुनास्सिर होता है। इसमें से कुछ भी न किया, तो भी पैसा और मेहनत मुफ्त गयी ऐसा हम नहीं समझते। केवल सब मिलकर हँसने के लिए, एक साथ बैठने के लिए—यहांतक, कि मिलकर रोने के लिए भी—लोग दूर दूर से एकदूसरे पास जाते हैं। एक-दूसरे से मिलने से, सज्जन-सहनिवास से, भी आनन्द और लाभ होता है। हम कहते हैं कि आपके सहनिवास का अलभ्य लाभ मिला? सत्संगति की महिमा बड़े-बूढ़ोंने गायी है। 'सत्संग प्राप्त हुआ,' इन शब्दों में जितने प्रकट और ध्वनित अर्थ हैं, उतने सब अर्थों में सेवाग्राम का सम्मेलन सफल हुआ।

इसी दृष्टि से, जवाहरलालजी को धन्यवाद देते हुए विनोबा ने विषय-निर्वाचिनी समिति में कहा, "हम ने आप के सामने अपने सवाल रखे। आप को उत्तर देने की तकलीफ दी। यह व्यर्थ नहीं गया। लेकिन, यदि हम आप को यह कष्ट न भी देते, तो भी आप का आना निरर्थक नहीं होता। आप जैसों की सोबहत में हम सब मिलकर खेलते, गाते, चाहे और कुछ करते, किन्तु ऐसा किसी को न लगता कि समय फिजूल गया।" विनोबा ने मानो एक महान् सिद्धान्त सुझाया।

'बापू का जंगली जानवर'

हमारे सम्मेलनों में आजकल बड़ी 'तांत्रिकता' आने लगी है। यदि सम्मेलन याथविधि, बाकायदा, सांगोपांग नियमानुसार न हो, तो लोगों को लगता है कि वह असफल हुआ। प्राणहीन तांत्रिकता

और औपचारिकता इसी तरह बढ़ते जाते हैं। किन्तु विनोबा एक क्रान्तिकारी व्यक्ति ठहरे! अपने बारे में उन्हों ने कहा, 'मैं बापू का पाला हुआ एक जंगली जानवर हूँ।' इस वर्णन में गंभीर अर्थ है। विनोबा ये शब्द विचारपूर्वक काम में लाये होंगे। इन शब्दों में ऐसा इंगित है कि बापू का पाला हुआ हो कर भी मैं एकदम पालतू और गवाँर नहीं हूँ। इसीलिए विनोबा को क्रान्तिकारक कल्पनाएँ और विचार सहज सूझ जाते हैं।

स्वराज्य का मुख्य भय, 'यादवी' या गृहयुद्ध

विनोबा और जवाहरलालजी दोनोंने कहा कि इस समय स्वराज को यदि भय है तो भीतरी गृहकलह से, 'यादवी' से, बाहरी आक्रमण से नहीं। अन्तःकलह, कुटिलता, टुकडाखोरी, ही मुख्य धोखे की चीज है। यदि गृहकलह की रोकथाम न की जा सकी, तो देशकी आज़ादी टिकना कठिन है। आज राजनैतिक पक्षभेद भी धार्मिक, सांप्रदायिक और जातीय भेदों के समान भयंकर रूप धारण करने लगे हैं। पक्षभेद पर आधारित राजनीति के कारण 'पक्षान्धता' और 'संस्थान्धता' उत्पन्न होने के लक्षण साफ दिखाई देने लगे हैं। 'माई पार्टी—राइट ऑर रांग'। 'सही हो या गलत—मेरा पक्ष ही प्रमाण है?' सत्पक्ष और असत्पक्ष के बदले, 'जो मैं कहूँ सो सत्य और दूसरे कहें सो असत्य'— ऐसे नये भेद पैदा होने लगे हैं। इसीलिये पक्षभेद भी जातिभेदों की तरह अनर्थकारी और क्षुद्र बन बैठे हैं। देशहित के लिए उत्कंठित दो सज्जन समाज-सेवकों के बीच भी पक्षभेदों के कारण खिंचाव पैदा हो जाता है। साथ काम करने में पक्षभेद बाधक होने लगा है। वह सम्प्रदाय के समान ही संकीर्ण स्थिर और प्रतिगामी बन गया है। सिद्धान्त दर किनार, पक्षनिष्ठा मुख्य हो बैठी है। ध्येय के बदले पक्ष ही आराध्य देवता हो गया है। संस्थावाद और सम्प्रदायवाद जड़ पकड़ने लगे हैं।

विनोबा की चिन्ता

विनोबा को दूसरी बड़ी चिन्ता यह थी कि मृत्यु के बाद गांधीजी के नाम को किसी भी प्रकार की पंथनिष्ठ साम्प्रदायिकता के चंगुल से बचाना ही चाहिए। उनके नाम पर यदि किसी पंथ या गुरु-परम्परा का निर्माण हो गया, तो उनके सारे कामोंपर पानी फिर जायगा। विनोबा को फिकर थी कि कहीं बापू की तत्त्वनिष्ठा का अपमान न होने पाये। दूसरों को भी कुछ ऐसा ही लगता था। इसलिए किसी भी प्रकार के संघ की स्थापना का विरोध किया गया। जहां संस्था की बात आयी कि सदस्यत्व आया। 'इसे लो, उसे बरकाओ, यह अपना, वह पराया'—ऐसे न मालूम कितने झगड़े आये ही समझो। और फिर, यह सब बापू के नाम पर हो, यह बात किसी को भी नहीं भायी। जो कह दे कि मैं तुम्हारा, तो वह हमारा। उसका नाम लिखने की भी जरूरत नहीं। कोई नियंत्रण नहीं, कोई अनुशासन नहीं। ऐसी एक ढीली-ढाली, व्यापक, लचीली और प्राणवान् संस्था की कल्पना विनोबा ने लोगों के सामने रखी। इस संगठन में ` के लिये अनंत अवकाश है। लेकिन बाह्य, कृत्रिम, अनुशासन के लिए नहीं। ठंढ से बचने के लिए हम कपड़ा ओढ़ते हैं। लेकिन हम उसमें कसकर जकड़ दिये जायँ,

और उसके कारण हमारा दम घुँटने लगे, तो हमें उसे फाड़कर फेंक ही देना होगा। संस्था और संगठन के लिए भी यही नियम लागू है। सेवाग्राम में जो लोग इकट्ठे हुए थे, उन्होंने इस बातको समझ लिया और एक स्वरसे विनोबा की योजना का समर्थन किया।

लक्ष्मण की रेखा

विनोबाकी योजनामें भिन्न भिन्न पक्षके सज्जनों के लिये मिलकर बैठने की सुविधा है। उसमें एक मर्यादा है और योजना भी है। परंतु उस मर्यादामें संकीर्णता नहीं है। पावित्र्यवाद और परहेज़ नहीं है। मर्यादा इतनी हो कि साध्यभेद के बावजूद भी साधन की एकता चाहिए। साध्य तो उदात्त होगा ही। किन्तु साधन भी अशुद्ध या अमंगल नहीं होना चाहिए। जिन्हें भी साधनशुद्धि का आग्रह है वे सब सज्जन हैं। ऐसे सब सज्जन आज इकट्ठे हो जायँ और सद्भावना की एक अभेद्य दीवार खड़ी कर दें। अंतर्गत हिंसा स्वराज्यके लिए भयकारक है। उसी की बदौलत अखंड भारत द्विखंड हुआ। अब कहीं वह शतखंड और सहस्रखंड न हो जाय। अंतर्गत हिंसा तथा अशुद्ध और अमंगल साधनोंका विरोध आजका राष्ट्रधर्म है। यदि स्वराज्य ठहर सकता है, इसी राष्ट्रधर्म के बलपर। साधन-शुद्धिका आग्रह हमारे लिये लक्ष्मणकी रेखा है।

प्रगतिशील कौन ?

सेवाग्राम जाने के पहले बहुत से मित्रोंने मुझ से उत्कटताके साथ कहा "परिस्थिति आज तुम गांधी के आदमियों के हाथ में है। तुम ही लोग तमाम प्रगतिशील शक्तियों का एकीकरण करो और प्रतिगामी शक्तियों के खिलाफ़ मोर्चा बांधो। कॉंग्रेस एक लीक में फंस गयी है। उसे तुम ही लोग प्रशस्त मार्गपर ला सकते हो। जातिवादी और जातिवाद-विरोधी, केवल येही दो विभाग मानकर, जातिवाद-विरोधी प्रगतिशील शक्तियों का तुम संगठन करो"।

बात जँची। मैंने विनोबा से कही। विनोबाने कहा "जातिवाद-विरोधी होकर भी जो हिंसक साधनों का प्रयोग करना चाहता है, उसके हाथों स्वराज्य का खून होगा। आज तो जिसके मन में साधन-शुद्धिका आग्रह है, वही प्रगतिवादी है। इसके विपरीत, 'यदि हेतु उच्च हुआ तो साधन चाहे जैसे हो सकते हैं,' इस पुराने सूत्र को प्रमाण माननेवाला व्यक्ति निःसंदेह प्रतिगामी है—चाहे उसके हाथ में कार्ल मार्क्स हो, कॉंग्रेस का घोषणा-पत्र हो या दूसरी कोई क्रान्तिवादी पुस्तक हो। जानकर या अनजाने, अंतर्गत हिंसा को उत्तेजन देना आज लोकद्रोह है। इसलिये इस नयी, निराली, भूमिका पर सब लोग अपना अपना पुनःसंगठन करें। इसके सिवा गत्यन्तर नहीं है।"

दूसरी क्रान्तिकारी कल्पना

सेवाग्राम सम्मेलन की यह पहली क्रान्तिकारक कल्पना है। साधन-शुद्धि की बुनियाद पर संगठन करना बापूकी विशेषता थी। विनोबाने उस विशेषताके रक्षण और विकासका अचूक मार्ग दिखाया। और सम्मेलन ने बड़ी नम्रतासे उसे स्वीकार किया।

दूसरी क्रान्तिकारक कल्पना थी मेले की। आजतक सम्मेलन होते थे। अब मेला होगा! मेले का सिर्फ दिन और स्थान निश्चित होगा। दूसरी कोई झंझट करने की जरूरत नहीं। न किसीको बुलाना होगा। न किसीका इन्तजाम करना होगा। मेले-ठेलोंमें जितनी व्यवस्था होती है, उतनी काफ़ी समझी जायगी। फलां को क्यों नहीं बुलाया, ढिकां का इन्तज़ाम क्यों नहीं हुआ, यह परेशानी नहीं। रूठना नहीं, मनाना नहीं, सन्ताप नहीं, लोभ नहीं। परिषदों का तंत्र गया। झंझट खतम हुई।

किन्तु मर्यादा तो इस मेले में भी रहेगी। केवल मनोरंजन के लिए निठल्ले आदमी जमा हो जायँ, ऐसा इसका उद्देश्य नहीं होगा। ऐसे आदमियों को कोई निकाल नहीं देगा। किन्तु यह मेला उनका नहीं होगा। विनोबाने कहा, 'लायक आदमियों के पास समय नहीं बचता और निठल्ले आदमी लायक नहीं होते'। सेवा का चाव रखनेवाले, सेवा में मग्न, व्यक्ति इस मेले में आयेंगे। साफ है कि वे सब वाहियात गप्पों में अथवा हानिकारक कामों में अपना वक्त ज़ाया नहीं करेंगे। यह मेला सचमुच में एक अनौपचारिक सम्मेलन होगा।

बापू की विरासत

बापूके बाद उनकी अनमोल विरासत किस प्रकार सम्हाली जा सकती है, इस बातका विचार करने के लिए सेवाग्राम का सम्मेलन किया गया था। बापूकी विशेषता, उनकी खास संपत्ति उनके चेलों की जमात नहीं है। उनकी संस्थाएँ भी उनकी विशेषता नहीं है। उन्होंने साबरमती-आश्रम को तोड़ दिया, सेवाग्राम को छोड़ दिया, गांधी सेवासंघ के साथ भी वैसा ही किया। सत्ता और संस्था का मोह उनको कभी नहीं छू पाया। सब प्रकार की पंथनिष्ठा और सांप्रदायिकता का विरोध बापूकी पहली विरासत है।

बापूकी दूसरी विरासत है, राष्ट्रव्यापी कौटुम्बिकता। मलिकन्दा में उन्होंने धोत्रेजी से पूछा 'तुम्हारी फेहरिस्त में कितने नाम हैं?' धोत्रेजी ने जवाब दिया, 'करीब ढाईसौ। तब बापू ने कहा, 'तुम्हारा रजिस्टर झूठा है। क्या तुम्हारा यह मतलब है कि इस देश में मेरे सिद्धान्तों को माननेवाले सिर्फ ढाईसौ आदमी हैं?' इतना कहकर सामने खड़ी हुई प्रचंड भीड़ की तरफ उंगली दिखाते हुए उन्होंने कहा, 'देखो! वह है मेरा रजिस्टर! तुम्हारा रजिस्टर झूठा है'! बापू की संगठन की कल्पना ऐसी व्यापक थी। संस्था की बाड़-बागुड़ या हदबंदी वे सह नहीं सकते थे। यह है उनकी दूसरी

विरासत। इन दो विरासतों को अक्षुण्ण रखकर साम्प्रदायिकता, औपचारिकता और तांत्रिकता की लीक में से राष्ट्रीय आंदोलन का रथ, साधनशुद्धि और पक्षभेद-निरपेक्ष सहयोग के प्रशस्त लोकमार्गपर लाकर खड़ा कर देने का अत्यन्त शुभकारक प्रयत्न सेवाग्राम–सम्मेलनने किया। यही उसकी 'फलश्रुति' है।

मंत्री की ओर से धन्यवाद

गांधीसेवा संघ के मंत्री श्री भाई धोत्रे के बदले यह निवेदन मैं क्यों लिख रहा हूँ, यह अब स्पष्ट हो गया होगा। धोत्रेजी क्या लिखते? उनका कोई दोष नहीं था। लेकिन सबका निहोरा मानने का अधिकार उनका है। उनकी तरफ़ से मैं मध्यप्रान्त के प्रान्तपति परम श्रेष्ठ श्री मंगलदासजी पकवासा और उनकी सरकार का उनकी सहायता के लिए उपकार मानता हूं। जिन्होंने लाऊडस्पीकर की व्यवस्था में और अन्य तरह की मदद की उन सबको धन्यवाद देता हूं। इस काम का श्रेय किसी एक व्यक्ति या थोड़ेसे व्यक्तियों को नहीं है। इसलिए सभी का अनुग्रह मानता हूं। वर्धा का श्रीकृष्ण प्रेस विशेष रूप से धन्यवाद का पात्र है। जब कि परिस्थिति सभी तरह से प्रतिकूल थी और समय भी बिलकुल परिमित था, श्रीकृष्ण प्रेस के कर्मचारियों तथा संचालकों ने बड़ी आत्मीयता और परिश्रम से इस रिपोर्ट की छपाई का काम किया। मैं उनका कृतज्ञ हूं।

धनतोली नागपुर.   क्षमाकांक्षी,—

३, मार्च १९४९   **दादा धर्माधिकारी**

सेवाग्राम सम्मेलन

प्रारम्भिक विचार

बृहस्पतिवार ता० ११ मार्च, १९४८, सबेरे

ता० १३ मार्च १९४८ से शुरू होनेवाले रचनात्मक कार्यकर्ता संमेलनके विषयमें प्रारंभिक विचार करनेके लिये, कुछ निमंत्रित व्यक्तियोंकी एक छोटीसी सभा ११-३-४८ को सबेरे ९.१५ बजे हुई। राष्ट्रपति श्री. राजेंद्रबाबू अध्यक्ष थे। सबसे पहले गांधी सेवा संघ के मंत्री श्री रघुनाथ श्रीधर धोत्रे का प्रास्ताविक भाषण हुआ। संमेलन की भूमिका समझाते हुए श्री धोत्रेजीने निम्न आशय का भाषण किया:-

संमेलन की भूमिका

धोत्रेजी--१३ ता. से हमारा संमेलन शुरू होगा। उस संमेलन में हमें किन बातोंका निर्णय करना हैं, कौन कौन से विषयोंकी चर्चा करनी है, इसकी कुछ रूपरेखा हमारे सामने होनी चाहिये। संमेलनमें होनेवाली चर्चा की दिशा भी पहलेसे निश्चित कर लेना जरूरी है। सन् बयालीसके कारावासके बाद, जब बापूजी छूटकर आये, तभी से इस तरह का संमेलन करने का विचार हो रहा था। लेकिन, उसके लिये मौका नहीं मिला। बापूजी कई तरह के कामों में लगे रहे। समय निकालना उनके लिये मुश्किल हो गया। आखिर, १९४७ के दिसंबर में यह बापूजीके साथ तय हुआ, कि संमेलन फरवरी के पहले हफ्तेमें वर्धा में कराया जावे। संमेलनका मुख्य विषय तो यही है कि मौजूदा परिस्थितिमें रचनात्मक कार्यकर्ताओंका क्या स्थान हो, और उनके कार्यका स्वरूप क्या हो। ता. १३ से १५ तक संमेलन का मुख्य अधिवेशन होगा। ता. १३ का कार्यक्रम मोटे तौर पर इस तरहका होगा। उद्घाटन पंडित जवाहरलालजी करेंगे। 'गांधी सेवा संघ' के अध्यक्ष श्री अप्पासाहब पटवर्धन का छोटासा भाषण होगा। वे सबका स्वागत करेंगे और संमेलन की भूमिका बतलावेंगे। इसके बाद, पूज्य राजेंद्रबाबू अध्यक्षकी जगह लेंगे और प्रारंभिक भाषण करेंगे। अबतक तो ऐसाही मालूम होता है कि, बहुत करके सरदार नहीं आ सकेंगे। हमारी और उनकी भी इच्छा तो यही थी कि वे आ सकें। लेकिन, उनकी तबियत अच्छी नहीं है और इसलिये उनके लिये आना असंभव है।

"अबतक शासनकर्ताओंका और रचनात्मक कार्यकर्ताओंका एक दूसरे के साथ बहुत कम संपर्क रहा है। हमें अपने शासनकर्ताओंका मार्गदर्शन अक्सर नहीं मिल सका है। इस संमेलनमें हमें उनका

मार्गदर्शन मिल सकेगा। हम अपनी कठिनाइयाँ उनके सामने रख सकेंगे। इस दृष्टिसे पहिले दिनका कार्यक्रम बनाया है। अध्यक्षके प्रारंभिक भाषण के बाद श्री किशोरलालभाई का भाषण होगा। वे रचनात्मक कार्यकर्ताओंकी खास अडचनों, दिक्कतों और समस्याओंका उल्लेख करेंगे। उनके भाषण के बाद जवाब में पं. जवाहरलालजी का भाषण होगा। यह ता. १३ का कार्यक्रम बनाया गया है। इसमें आप लोग जो कुछ हेरफेर सुझाना चाहें, सुझावें। इस संमेलनका नक्शा तो आपही बनावेंगे। आजकी यह छोटीसी सभा इसी मंशा से बुलाई गई है। समेलनके सामने, मेरी समझमें, जो मुख्य बात होनी चाहिये, वह तो यह है कि आजकी बदली हुई परिस्थितिमें रचनात्मक कार्यका क्या स्थान है। पच्चीस साल पहले जब ये रचनात्मक कार्य की संस्थाएं कायम हुईं, या 'गांधी सेवा संघ' की स्थापना हुई, उस समय कुछ बातें गृहीत समझ ली गई थीं। एक तरह से बुनियादके रूपमें मान ली गई थीं। आज वह हालत नहीं रही। उस वक्त काँग्रेस के हर काम में अहिंसा गृहीत थी। बुनियादी तौर पर अहिंसा को मानकर ही सारे कामोंकी योजनाएं बनाई जातीं थीं। आज Non-violence is not taken for granted हम अहिंसा को बुनियादी रूप में नहीं मान लेते। बल्कि Violence in some form is taken for granted। किसी न किसी रूप में हिंसा आवश्यक मान ली गयी है। अब तो काँग्रेस शासन करने लगी हैं। इसलिये, यह मान ही लिया गया है, कि हिंसा के बिना काम नहीं चल सकता। बापूजीका तो सारा ज़ोर अहिंसा पर था। हमारे सामने सवाल यह है कि बापूकी सिखाई हुई चीज़ें आज भी हमारे काम की हैं या नहीं। आज परिस्थिति बदल गई है। हम आजाद हो गये हैं। अब तो इस देश को First class military power, आला दर्जे का फौजी राष्ट्र, बनाने की बात कही जाती है। बापूजीने पहले पहल जब यह बात सुनी तो वे कुछ चौंकसे गये। पटना में उन्होंनें मुझसे कहा कि मैं इस के बारे में दस व्याख्यान देना चाहता हूं। लेकिन उन्हे फुरसत नहीं मिल सकी। अहिंसा में श्रद्धा रखनेवालोंका आज क्या स्थान है? अहिंसा-शक्ति, अहिंसक समाज, दरिद्रनारायण, ये बापू के खास शब्द थे। इन शब्दों के साथ Military Nation की बात का मेल कैसा? यह हमें सोचना है। असल बात तो यह है कि अब हमें अपनी श्रद्धा टटोलनी है। क्या अहिंसा में आज हमारी उतनीही और वैसीही श्रद्धा है जैसी कि पहले थी? यह मूलभूत प्रश्न है। क्या यदि हमारे नेता और काँग्रेस अहिंसा को छोड़ दें तो भी हमारी श्रद्धा बनी रहेगी? क्या हमारा उद्दिष्ट, हमारा आखिरी मकसद, अहिंसाकी शक्ति का विकास करना ही है? क्या आज भी हम रचनात्मक कार्य को अहिंसक शक्तिके विकासका साधन मानते हैं? ये सब बुनियादी सवाल हैं, जिनके स्पष्ट और साफ साफ ज़वाब हमको देने होंगे।

"फिर सवाल यह होगा कि क्या यह मानी हुई बात है कि रचनात्मक कार्यमेंसे अहिंसक ताकतही पैदा होती है। आज हम यह नहीं कह सकते। क्योंकि, बयालीसके आंदोलनने यह साबित कर दिया है कि रचनात्मक कार्यक्रम हिंसक ताकत भी पैदा कर सकता है। हिंसा की शक्ति चाहनेवालोंने भी वही कार्यक्रम अपनाया। और आज भी वे उसको उपयोगी समझते हैं। युद्ध के दिनों में विनोबा कहा करते थे कि हिटलर जीत रहा है क्योंकि उसने रचनात्मक कार्य किया, अंग्रेज हार रहे हैं क्योंकि

उन्होंने रचनात्मक कार्य की ओर ध्यान नहीं दिया। हम रचनात्मक कार्यक्रम और अहिंसाका अटूट संबंध समझते थे। सो बात नहीं रही। यह हमारे विचारके लिये दूसरा मुद्दा है।

"तीसरी बात कार्य की पद्धति।" हम अपना काम किस ढंगसे करें? क्या किसी मार्गदर्शक, केंद्रीय या मुख्य संगठन की जरूरत है? बापूने काँग्रेस के लिये लोक सेवा संघकी योजना बनाई थी। उसमें तो बापू की यही कल्पना थी कि रचनात्मक कार्यक्रम अहिंसक समाज के निर्माण की प्रक्रिया है। 'लोक सेवा संघ' के सदस्य की शर्तें करीब करीब 'गांधी सेवा संघ' के सेवक-सदस्य के प्रतिज्ञा पत्र के समान हैं। बापू काँग्रेसको एक नया रूप देना चाहते थे।

"अक्सर कहा जाता है कि रचनात्मक कार्य सरकार की सहायता के बिना उन्नति नहीं कर सकेगा। रचनात्मक कार्यकर्ता हमेशा सरकारकी मदद की ज़रूरत महसूस करते आये हैं। परंतु बापूजीका ख्याल कुछ दूसरी तरह का था। वे कहते थे कि हम सरकारकी मदद न चाहें। बल्कि उसकी मदद करें। इस तरह की दो भिन्न विचार धाराएं हमारे सामने हैं। हमें यह तय करना है कि सरकारसे हमारा संबंध किस तरह का हो।

"उसी प्रकार हमें यह भी सोच लेना चाहिये कि काँग्रेसके साथ हमारा संबंध क्या हो। अब यह कोई जरूरी बात नहीं है कि काँग्रेस अहिंसक नीति और अहिंसक समाज के सिद्धांतोंको अपने सामने रखे। इसलिये, हमको इस संबंध में अपनी नीति निश्चित कर लेनी चाहिये।

"मुख्य मुद्दे हमारे सामने यही हैं। इनको लेकर हमें चर्चा और निर्णय करने हैं। मालिकंदामें जबसे गांधी सेवा संघका बिसर्जन हुआ तभी से उसे पुनर्जीवित करने की सूचनाएँ बारबार आती रहीं हैं। हमें उनका विचार भी कर लेना चाहिये। आज बापूजीका मार्गदर्शन हमें प्राप्त नहीं। कार्यकर्ताओंके संदेह दूर करके उनकी शिथिलता हटाने के लिये अब बापू नहीं रहे। ऐसी परिस्थिति में हमें अपनी निष्ठा कायम रखकर आगे बढ़ना है।

हमारा ध्येय : अहिंसक समाज-रचना

राजेंद्रबाबू—"विषय तो सब आपके सामने आ गये हैं। जहांतक मौलिक प्रश्न का संबंध है, हमारा ध्येय तो अहिंसक समाज की रचना होना चाहिये। उसके लिये जहांतक हो सके हम कोशिश करें। इसमें मतभेद की गुंजाइश न हो। इस विषयमें चर्चा की जरूरत नहीं होनी चाहिये। फिर भी, यदि आप चाहें, तो चर्चा कर सकते हैं।"

श्री विचित्र नारायण शर्मा—यह चीज इतनी साफ नहीं है। हमारा ध्येय तो अहिंसक समाज की रचना ही है। लेकिन, आज उस दिशामें हम क्या कर सकते हैं, यह सवाल है। हम स्वतंत्र रूप से जो करते हैं, और स्टेट से या काँग्रेस से जो कराना चाहते हैं, उसका मेल कहांतक बैठेगा?

स्टेट की, काँग्रेस की और हमारी नीति कहांतक एकरूप होगी ? हमारे सामने आयेदिन जो सवाल पेश होते हैं उनका अहिंसक हल हमने अबतक नहीं सोचा है। अब बापू के न रहने पर इस बात की और भी ज्यादा जरूरत है। पाकिस्तान का ही मसला लीजिये। पाकिस्तान का निर्माण होनेपर हिंदू लोग वहां से भागे। सिवा बापूके, हम लोगोंमें से किसीने भी अहिंसक ढंग का प्रतिकार नहीं अपनाया। और भी कई तरहके सवाल हैं। यदि हमारी सरकार को दूसरे किसी देशसे मजबूर होकर लड़ाई करनी पड़े, तो उसके प्रति हमारा क्या रुख हो ? क्या हम लड़ाई में किसी तरह का हिस्सा न लेकर अहिंसक प्रतिकार का रास्ता अपनावें ? या लड़ाईके और अहिंसक प्रतिकार के बीच का कोई मार्ग हो सकता है ? कोई कोई कहते हैं कि दरमियानी चीज हो ही नहीं सकती। या तो हम इधर रहें या उधर। बीच की कोई बात नहीं। मैं इन बातों का कोई जवाब नहीं दे पाया हूं।"

राजेंद्र बाबू---"मेरी राय में हमारी संस्था का उद्देश्य क्या हो, और सरकार को हम क्या सलाह दें, ये दो अलग अलग बातें हैं। समाज में कुछ लोग एक आदर्श सामने रख कर चलते हैं। मुमकिन है कि सारा समाज और सरकार उस आदर्श को सामने रखकर चलने के लिये तैयार न हों। ऐसी हालत में हमको दो तरह की नीति से काम लेना होगा। सरकार की मर्यादायें पहचान कर उसे उन मर्यादाओं के अनुरूप सलाह देनी होगी। इधर हम अपने आदर्शपर चलने की कोशिश करते रहें और उसके लिये समाज को तैयार करें। मेरी समझ में हमारे सामने असली सवाल यह है कि हम एक छोटीसी जमायत रहें या नहीं ? क्या इस तरह से रहने में कोई फायदा होगा ? हमारे सामने तरह तरह के विचारों का और कार्यक्रमोंका समुन्दरसा भरा है। क्या इस समुंदर में हम कुछ कर पायेंगे ? असल में इस पहलू पर आपको विचार करना है।

काकासाहब कालेलकर—बापूजीका खयाल छोटीसी जमात कायम करनेका नहीं था। समाज के समुंदर में अपनी एक अलग सलग खाडी बनाकर संतोष मानना वे नहीं चाहते थे। उनकी यह मन्शा थी कि अहिंसक प्रतिकार का स्वीकार सारा देश पूरी तरह से करे और दुनिया के लिये मिसाल पेश करें। अगर यह न होता तो युरोप को सलाह देनेकी हिम्मत वे हरगिज़ नहीं करते। उन्होंने तो हिटलर तक को पत्र लिखा। हिटलरने और युरोपने कहा, दूसरोंको सलाह देना आसान है। जब तुमपर मौका आवेगा तब देखेंगे। बापूने इंग्लैंड को और हिटलर को जो सलाह दी उसपर अमल करने का मौका आज हमारे सामने है। सवाल संख्या का नहीं है। निष्ठा और नीति की शुद्धता का है। चाहे हम थोडेसे भले ही रहें। एक छोटीसी जमात ही क्यों न रहें।

देश की रक्षा तक के सारे सवाल अहिंसक प्रतिकार की प्रणाली से हल करनेकी हिम्मत यदि हमने दिखाई तो हम समाज के लिये अवश्य उपयोगी साबित होंगे। डेलांग सम्मेलन में (१९३८) बापूजीने अहिंसक सेना बनाने की बात पेश की। बड़े बड़े नेताओंने अहिंसक सेना का संगठन करना असंभव बतलाया। बापूने अपना प्रस्ताव लौटा लिया। अहिंसक सेना के संगठन का

अधिकार दरअसल बापू का ही था। लेकिन आज उनके अभाव में क्या हम हारकर बैठ जावें ? तब तो उन्होंने हमें कुछ नहीं दिया। और हमने उनसे कुछ नहीं पाया। बंबई में मुरारजीभाई कठोर शासनसे काम लेना चाहते हैं। केंद्रीय सरकार कश्मीर का प्रश्न फौज़ी ताकत से हल कर रही है। उनका कोई कसूर नहीं। क्या वे प्रतिकार छोड़कर बैठ जावें ? उनके सामने अहिंसक प्रतिकार का कोई सामान मौजूद नहीं है। न वह मनोवृत्ति है, न उसके लिये कोई संगठन है, न उसका कोई तरीक़ा या Technique तैयार है। ऐसी हालत में कोई सरकार दंडप्रयोग और शस्त्रप्रयोग के सिवा प्रतिकार का कौनसा तरीका अख्त्यार करे ? हम उसे कोई सलाह देनेकी योग्यता भी नहीं रखते। हम आज सरकार अपने हाथ में भी नहीं ले सकते। इतनी ताकत हमारी नहीं है। ऐसी हालत में जब हमारी सरकार अनाक्रमणशील यानी किसीपर धावा न बोलते हुए हिंसक प्रतिकार करे तो हमें उसका समर्थन करना चाहिये। जबतक अहिंसक प्रतिकार का विकास हम नहीं कर सकते तबतक और कोई चारा नहीं है। प्रतिकार मुख्य धर्म है। अप्रतिकार कायरताका लक्षण है। हम देखते हैं कि जहां हमारे लोगों की कसरत से बहुसंख्या है वहाँ से भी वे भागते हैं। अगर उनसे अहिंसक प्रतिकार नहीं बनता तो उन्हें हिंसक प्रतिकार के लायक बनाना चाहिये। जबतक हमने अहिंसक प्रतिकार का तरीका नहीं बतलाया तबतक हम सरकारको दोष नहीं दे सकते। कृपलानीजीने कहा कि हमारे मंत्रिमंडलोंने हमें धोखा दिया। यह इल्जाम मैं ठीक नहीं समझता। मंत्रिमंडलों के सामने दूसरे किसी तरीकेकी मिसाल नहीं थी। मामूली अनाड़ी और बर्बर मनुष्यों में प्रतिकार की जो शक्ति होती है, वह भी हम में नहीं रही। प्रतिकार का धर्म लोगोंको सिखाना और बढ़ाना हमारा पहला काम है। हम जबतक अहिंसक सेना नहीं बनायेंगे तबतक रचनात्मक कार्यक्रम में भी जान नहीं आवेगी। उसमें आगे बढ़नेका दम नहीं रहेगा। प्रतिकार की शक्ति, चाहे वह अहिंसक हो या हिंसक, पहली आवश्यकता है। उसके बिना रचनात्मक कार्य पनपही नहीं सकता। प्रतिकार के मौके जबजब आये उस समय हम में से किसीनेभी अहिंसक प्रतिकार के तरीकेका प्रयोग करनेकी हिम्मत नहीं बतलायी। हिंदु मुसलमानों के दंगोंमें सिवा आप्पा साहब पटवर्धन के और किसी को यह प्रयोग करनेकी नहीं सूझी। यह हमारी बुनियादी कमज़ोरी रही है। इसे दूर करने लिये सब से पहली ज़रूरत एक अहिंसक सेना का संगठन करना है।

अहिंसक प्रतिकार और अपरिग्रह

जो कोई अहिंसक प्रतिकार को अपनाना चाहे। और अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहे; उसके लिये एक बात की जरूरत और है। उसे अपरिग्रही होना चाहिये। परिग्रही समाज अहिंसक हो ही नहीं सकता। संपन्नता कायरताका कारण है। संपत्ति मनुष्यको कायर बना देती है। इसलिये जो अहिंसक प्रतिकार का संगठन करना चाहते हैं, उन्हें अपरिग्रह का व्रत लेना चाहिये। संपत्ति का केंद्रीकरण व्यक्तियों के गिरोहोंमें या छोटे छोटे क्षेत्रों में कहीं भी नहीं होना चाहिये। जहाँ केंद्रीकरण होगा वहाँ सैनिक संगठन और शस्त्रास्त्रों की जरूरत मालूम होगी। मेरा मतलब यह है कि अभी तो

हम सरकार को अपने रास्तेपर चलने दें। जहां वह आत्मरक्षा के लिये न्यायोचित हिंसा का प्रयोग करे वहां उसका समर्थन भी करें। लेकिन साथ साथ अपरिग्रह और अहिंसक प्रतिकार का व्रत लेनेवाले सेवकों का एक संगठन भी बनावें जो हर क्षेत्र में और हरेक प्रश्न का अहिंसक हल समाज के सामने और सरकार के सामने पेश करें।

अपने से शुरू करें

कमलनयन बजाज—मेरी भी कुछ इसी तर की राय है। सरकार अहिंसक प्रतिकार का प्रयोग नहीं कर सकती। हम सरकार से यह नहीं कह सकते कि वह अहिंसक सेना बनावे। यह जिम्मेवारी और जोखिम हमको उठानी चाहिये। अहिंसक प्रतिकार की ताकत पहले हम खुद हासिल करें। तब दूसरों को सलाह दें। पाकिस्तान के या दूसरे किसी के हमले का प्रतिकार अहिंसक ढंग से पहले हम करना सीखें। सरकार तो हथियारों से ही लड़े। हम उसे वही सलाह दें। फौज के बिना काम चलाने की ताकत पहले हम खुद में लावें, बाद में समाज में उसका प्रचार करें। तब कहीं वह सरकार में उतरेगी। पहले हम अपने आप से शुरू करें। इस प्रयोग के लिये सरकार की जरूरत नहीं है। हम जोखिम उठाकर प्रयोग करें। हम सफल हुये तो जनता में भी शक्ति पैदा होगी। और जनता में अहिंसक प्रतिकार की शक्ति आजानेपर शायद सरकार या शासन की जरूरतही नहीं रहेगी।

विनोबा—हमको जो सोचना है वह यह है कि आज हमारी श्रद्धा कितनी गहरी है? अहिंसा का एक तरीका है। जनता और सरकार उसके लिये अनुकूल नहीं होती ऐसी स्थिति में हमारी अपनी श्रद्धा क्या कहती है? क्या हम भी नीचे उतरकर समाज के हिंसक तरीके को अपनायें? या अपनी श्रद्धा के अनुकूल रहकर मर मिटें? किसीको शायद लगेगा कि दो चार आदमियों के मर मिटने की अपेक्षा यह बेहतर है कि कुछ नीचे उतरें। अपनी श्रद्धा में थोड़ासा पानी मिला दें। मेरी श्रद्धा कहती है कि हम मर मिटें। यही श्रेयस्कर है। उसमें हमारा कर्तव्य पूरा हो जाता है। लेकिन इतनी शक्ति न हो तो क्या कायर बनें? अप्रतिकार में बैठें? निष्क्रियता को अपनावें? मेरा जवाब यह है कि चुप बैठने में भी तपस्या है। निष्क्रियता में भी तपस्या है। चिन्तनात्मक निष्क्रियता विधायक कार्यक्रम की ही एक क्रिया है। हमें दो भूमिकायें कदापि नहीं लेनी चाहिये। (१) नीचे उतर कर, समाज के साथ होकर, हिंसक प्रतिकार को अपनाना (२) कायर बनना। या तो अपनी श्रद्धा के अनुकूल चलकर मिट जावें या फिर तटस्थ रहकर चिन्तन करें। निष्क्रिय-चिन्तनात्मक तपस्या भी सेवाका एक तरीका है। अगर हम ठीक काम नहीं कर सकते तो कम से कम अ-टीक न करें। सही रास्ता नहीं ले सकते तो गलत रास्ता लेनेसे इन्कार करने में भी केवल निष्क्रियता नहीं है। हम अलग रहकर प्रतीक्षा करते रहें। जो जागृत रहकर प्रतीक्षा करते हैं वे भी सेवा करते हैं। प्रतीक्षा के काल में हम अहिंसक शक्ति का विकास करने के उपाय सोचते रहें। मुझे इस वक्त इस निष्क्रिय अहिंसक शक्ति संग्रहात्मक तपस्या के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता।

तटस्थता और प्रतिकार

काका—यह जो निष्क्रिय प्रतीक्षात्मक और शक्ति-संग्रहात्मक तपस्याकी बात कही गई है, वह मुझे नहीं जँचती। यह अहिंसात्मक भले ही हो, लेकिन प्रतिकारात्मक नहीं है। अहिंसात्मक तपस्याका तरीका हमारे ऋषि मुनियोंका तरीका था। वह बापूका तरीका नहीं है। कुछ अंशमें शुरू शुरू में बापूकी भी भूमिका उस तरह की भलेही रही हो, लेकिन बाद में बापूकी वह पुरानी भूमिका नहीं रही। केवळ हिंसासे दूर रहने में उन्होंने अपने धर्मका पालन नहीं माना। अहिंसक प्रतिकार का प्रयोग ही उन्होंने अपने जीवन का प्रधान धर्म समझा। उनकी तरह हमने अहिंसक प्रतिकार के विज्ञान और तरीकेका विकास करने की कोशिश नहीं की। यह हमारा दोष है। ऐसी हालतमें सरकार और जनता यदि उचित रूपसे हिंसक प्रतिकार करे तो मैं उस में शामिल हूंगा। हम लोग जनता में रहते हैं। सरकारसे रक्षण पाते हैं। जिंदगी के सब तरह के सुभीतोंसे लाभ उठाते हैं। हम तटस्थ नहीं रह सकते, व्यक्ति अकेला अरण्य में या एकान्त में तटस्थ भले ही रह सके; समुदायमें, संस्थामें या समाज में हरगिज तटस्थ नहीं रह सकता। हम अहिंसक प्रतिकार-प्रणालीके अनुयायी कहलाते हैं। लेकिन एक आप्पासाहब को छोड़कर हममेंसे और किसीने अहिंसक प्रतिकारका प्रयोग नहीं किया। वैसा प्रयोग अगर हम संगठित रूपसे करें तो मैं जनता को हिंसक प्रतिकारका रास्ता लेनेकी सलाह कभी नहीं दूंगा। लेकिन अगर हम उस तरहका कोई प्रयोग नहीं करते तो मैं अहिंसक तटस्थताकी अपेक्षा हिंसक प्रतिकारका समर्थन करना अधिक पसंद करूंगा।

विनोबा—शायद मैं अपनी बात अच्छी तरह समझा नहीं सका। मैं यह नहीं कहता कि हम को अहिंसक तरीकेका प्रयोग सच्चे दिलसे और संगठित रूपसे नहीं करना चाहिये; लेकिन मैं आज वह शक्ति और वातावरण नहीं पाता। मेरा मतलब इतना ही है कि अगर मैं पाऊं कि अहिंसक तरीका विकसित करनेका मौका मुझे नहीं मिला, तो हिंसक प्रतिकार के लिये तैयार होने में जनताकी मदद करने के बदले मैं निष्क्रिय रहकर तपस्या करना अधिक पसंद करूंगा।

स्वामी सत्यानंद—मेरी तो यह श्रद्धा है कि अगर हम अपने ढंगसे चलते रहें तो लोग उसकी कद्र करते ही हैं। वे चाहे हमारे तरीके को अपनावे भले ही नहीं, लेकिन समझते और कद्र करते जरूर हैं। हममें जितनी शक्ति थी उतनी लगाकर अबतक थोड़ा बहुत किया। बापूजी की छत्रछाया में और उनकी देखभाल में कुछ लियाकत भी हासिल की। अब बापूजी नहीं रहे। लेकिन अगर हम अपने तरीकेसे चलते रहेंगे, तो जो कुछ रस हमने पाया है, उस में से कुछ दूसरों को भी दे सकेंगे। हममें जितना रस बढ़ेगा उसके मुताबिक दूसरोंको भी दे सकेंगे। इसलिये मुख्य बात अपने ढंगसे काम करने की और अपने तरीकेपर चलने की है। इसी दृष्टिसे संगठन करने की जरूरत मालूम होती है। अहिंसक प्रतिकार के तरीके का विकास का और कोई उपाय मुझे नहीं दिखाई देता।

गांधी सेवा संघ का पुनरुज्जीवन

अण्णा साहब दास्ताने—मैं विरक्ति या निराशाका कोई कारण नहीं देखता। आज कमसे कम पच्चीस-तीस सालका यह अनुभव है कि देशके सामने हम जों दृष्टि रखते हैं, उसे देश अपनाता है। आज भी वही हो रहा है। आज की सरकार हमही लोगों की बनी हुई है। सरकार में जो लोग हैं, उन्होंने भी हमारी तरह गांधीजी से ही रोशनी पाई है। वे भी गांधीजी के सिखावन के कायल हैं। गांधीजी का सिखावन ध्यान में रखकर, जनता की तैयारी देखकर वे अपने प्रतिकार का तरीका निश्चित करते हैं। इस दृष्टि से मेरी राय में हमारी सरकार जो कर रही है वह ठीक कर रही है, जो चाहिये वही कर रही है। हम उसकी निंदा न करें। जनता की तैयारी और शक्ति देखकर हम कदम आगे बढ़ावें, तो सरकार के सामने एक प्रत्यक्ष और ठोस उदाहरण पेश कर सकेंगे। हम जनता के साथ संपर्क बढ़ाकर उसकी और अपनी शक्ति बढ़ावें। मैं देहातों में गया हूँ। पढ़े-लिखे लोगों में और अपढ़ जनता में भी गया हूँ। मैं आप से कह सकता हूँ कि जनता की रगरग में बापूजी की बात भरी हुई है। सवाल यह है कि अब उसका आविष्करण किस तरह हो? वह व्यक्त स्वरूप में कैसे प्रकट हो? अहिंसक कार्य की नींव तो बापूने डाली। उन्होंने रचनात्मक कार्य के लिये संस्थाएँ कायम कीं। व्यापक अहिंसात्मक संगठन के लिये 'गांधी सेवा संघ' के निर्माण में भी मदद की। वह उनका बनाया हुआ संगठन नहीं था। लेकिन फिर भी उसके जीवन का सहारा वही थे। इसी लिये वे उसे खतम कर सके। उन्हें उस तरह के संगठन की उपयोगिता नहीं मालूम हुई। लेकिन अब परिस्थिति बदल गई है। सरकार अपनी नपी-तुली मर्यादा में ही प्रयोग कर सकती है। मिसाल के तौर पर खादी की बात ही लीजिये। खादी का काम बढ़ाने के लिये १९४६ में दिल्ली में बापू की सरकार के साथ चर्चा हुई। बापू की बतलाई हुई मर्यादायें सरकार को स्वीकार नहीं हुई। तब से फिर यह जरूरत मालूम हुई कि बापू की बतलाई हुई मर्यादा में काम करनेवाली कोई संस्था होनी चाहिये। इसलिये मेरा तो यह सुझाव है कि मालिकंदा में जो गांधी सेवा संघ खतम किया उसे फिरसे कायम करें। चरखा संघ आदि रचनात्मक संस्थायें इस काम के लिये माकूल नहीं हैं। उदाहरण के लिये खादी के सिद्धान्तपर अमल चरखा संघ नहीं कर सकता। चरखा संघ से मेरा हमेशा मूलभूत मतभेद रहा है। वह संस्था व्यापारी ढंग से चलती है। बेकारी हटाकर गरीबों की मदद करना वह चाहती है। इसलिये मैं उसकी कद्र और इज्जत भी करता हूँ। लेकिन यह हमारा बुनियादी आर्थिक उसूल नहीं है। हम अपरिग्रही समाज कायम करना चाहते हैं। उसका आधार Co-operative (सहयोगी) तरीकाही हो सकता है। अपरिग्रही समाज में मालकियत किसी व्यक्ति की नहीं रहेगी। मालकियत की भावना हटाकर हमें सहयोगवृत्ति का विकास करना है। समाज में व्यक्ति से काम कराने के लिये मालकियत अनिवार्य नहीं है। आज भी कोई व्यक्ति मर जाने पर मालिक नहीं रहता। मालकियत की भावना हटाकर सहयोगवृत्ति का विकास करने में सरकार आज हिम्मत से आगे कदम नहीं बढ़ा सक रही हैं। हम तो अपरिग्रही समाज की बुनियाद रखने को उत्सुक हैं। इसलिये हमें अपना अलग संगठन बनाकर अपनेतईं प्रयोग करना चाहिये। वही बात अहिंसक प्रतिकार

की भी है। यह प्रयोग सरकार अपनी आज की मर्यादाओं में नहीं कर सकती। अहिंसक ढंगसे सामना करनेकी शिक्षा देना गैरसरकारी संस्था का काम है। हमको अपनी निजी ताकत के भरोसे अहिंसक प्रतिकारका तरीका सोचना होगा। और अुसका अमल करना होगा। कल यदि पाकिस्तान का आक्रमण हो तो क्या अुसके लिये अहिंसक सेना बनेगी? पाकिस्तानके आक्रमण का प्रतिकार तो सरकारकी फौज करेगी अैसी हालत में अहिंसक सेना क्या काम करेगी? वह तो बापूके तरीके के खिलाफ होगा। अिस तरह अहिंसक सेना नहीं बनेगी। उसकी भूमिका बनाने के लिये कुछ मूलभूत बातोंकी जरूरत होगी। उसकी तरफ काकासाहबने इशारा किया। आक्रमक क्यों आते हैं? आक्रमक लोभसे आते हैं। जनतामें अगर लोभ न होगा तो वह मर मिटकर उनका प्रतिकार करेगी। बच्चे, बूढे, औरतें सब प्रतिकार करेंगे। उस वक्त फौज की जरूरत नहीं होगी। फिर आज क्यों है? आज व्यक्तिगत संपत्ति के रूपमें लोभ का कारण मौजूद है लोभ के सबबसे सर झुकता है। करोड़पतिसे लेकर जिसके पास सिर्फ लोटा है उस व्यक्तितक सबको लोभने कमजोर कर दिया है। जब परिग्रह चला जावेगा तो हरएक व्यक्तिमें संतोंके समान ताकत आवेगी। इसलिये हमें अपरिग्रही समाजकी नींव रखनी होगी। उसके बिना अहिंसक सेना के लिये वातावरण नहीं बन पावेगा। चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ आदि संस्थाअें अपने अपने मर्यादित क्षेत्रमें शरीरश्रम और उद्योगशीलता का विकास कर रहीं हैं। लेकिन आर्थिक सहयोग की बुनियाद के आधारपर अपरिग्रही व्यक्तियोंके समाज की नींव डालने की तरफ उनका उतना ध्यान नहीं हैं। उन संस्थाओंको एक दूसरे के कामों के लिये आकर्षण नहीं है। एक संस्था दूसरी संस्था के काम में सक्रिय दिलचस्पी नहीं लेती। उनकी बनावट, उनका इतिहास, उनके संस्कार ही कुछ अैसे हैं कि वे अपने अलग अलग दायरोंमें रहकर अपना नियत काम करती रहती हैं। एक काम को मुख्य मानकर साथ साथ दूसरे काम नहीं करतीं। ये सारे काम हाथ में लेकर व्यापक अधिष्ठान पर से अहिंसक समाज की रचना की कोशिश करनेवाले एक प्रभावशाली स्वतंत्र संगठन की आवश्यकता अनिवार्य रूप से महसूस होती है। विनोबा की तात्त्विक बातें हमारी मर्यादा से बाहर की हैं। उनका आचरण करने की हमारी ताकत नहीं हैं। उदासीन रहकर निष्क्रिय आचार या तटस्थ तपस्या से जनताका मार्गदर्शन नहीं होगा। निष्क्रिय तपस्वी अपनी तटस्थ निष्क्रियता में भी ताकत अनुभव कर सकता है। इस प्रकार की निष्क्रिय साधना में मेरा बौद्धिक विश्वास है। लेकिन उसकी व्यावहारिक उपयोगिता में मेरा विश्वास नहीं है। इस प्रकार का तपस्वी एक तरह के भावनात्मक हिमालय में ही रहेगा। इन्सान हिमालय में रहने के लिये पैदा नहीं हुआ है। हमें जनता के दैनंदिन जीवन में उसके साथ रहना और जीना है। हम न उदासीन रह सकते हैं न तटस्थ। इसलिये मेरी सूचना है कि हम अपनी सारी ताकत लगाकर बापू के सिद्धान्तों के प्रयोग का कोई व्यावहारिक तरीका खोज निकालें। सरकार को न छेड़ें। उसे अपना काम करने दें। हम अपनी ताकत के भरोसे, अपनी मर्यादा में रहकर संगठन करें। और विश्वास रखें कि यह संगठन लाभदायी और फलदायी होगा। संघ बने या नहीं, और बने तो उसका नाम गांधी सेवा संघ हो या न हो, ये दो ही सवाल मेरे लिये व्यावहारिक महत्त्व रखते हैं। मेरा जवाब

हैं कि संघ बने और जरूर बने। सिर्फ विचार-विनिमय के लिये नहीं, जनता में जाकर कार्य और प्रचार करने के लिये। जितना काम होगा उतनी ही कामयाबी होगी। वातावरण प्रतिकूल नहीं हैं। जनता आपके खिलाफ नहीं है। नाम आप कुछ भी रख लीजिये। लेकिन संघ बनाने में हिचक या आनाकानी की गुंजाईश नहीं है।

जीवन की बुनियादें बदलनी हैं

जे. सी. कुमारप्पा—सरकार की सेना में हम जिस हिंसाकी परछाई देखते हैं वह हिंसा हमही पैदा करते हैं। हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में से जो हिंसा पैदा होती है उसीकी परछाई हम अपनी सेनाओं में देखते हैं। युरोपीय युद्ध, अमेरिकन युद्ध, सरकारी फौजें, पाकिस्तान—ये सब आखिर हमारी रोजमर्रा की जिंदगी के नतीजे हैं। हम यदि अपना रोज का जीवन दूसरी तरह से ढाल देंगे तो सारा नक्शा बदल जायगा। आज के हमारे रचनात्मक संघ इसके लिये काफ़ी नहीं हैं। उनको तोड़ देना चाहिये। अहिंसा की बुनियाद पर नये सिरेसे पुनः संगठन करना चाहिये। हमारा दैनिक जीवन याने हमारा खाना-पीना, कपड़ा और मकान आदि तमाम बातों का संयोजन उस धरातल पर से होना चाहिये। इस विधायक रचना का साधन ही रचनात्मक कार्यक्रम होगा। हमें इस बुनियादी चीज पर अपनी सारी ताकत केंद्रित करनी चाहिये। मैंने जवाहरलालजी से कहा कि बापूको गोली गोडसे ने नहीं मारी बल्कि हमने मारी। गोडसे में संकल्पशक्ति, साहस और बलिदान का माद्दा था। उसके जैसे और भी हजारों नौजवान हैं जिनमें त्यागबुद्धि और बलिदान की शक्ति है। हमें उस शक्ति का उचित दिशा में उपयोग करना चाहिये। हिंदु महासभा या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को कोसना बेकार है। कसूर हमारा है। हमने इन नवयुवकों का कोई सदुपयोग नहीं किया। हमने अपने सारे जीवन में व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में, हिंसाकाही विकास किया। उसीकी परिणति गोडसे में हुई। अब यदि हम अपने जीवन की बुनियादें नहीं बदलेंगे तो अहिंसाका विकास करना या अहिंसक समाज की नींव डालना बिलकुल असंभव है। सारे रचनात्मक कार्यक्रम का मकसद जीवन की बुनियादें बदलना ही होना चाहिये। (अंग्रेजी से).

लक्ष्मीबाबू (बिहार)—हमारे सामने प्रश्न यह है कि अहिंसक समाज-रचना का आदर्श रखनेवाला संघ हो या न हो?

विनोबा—नहीं। प्रश्न यह है कि हम अहिंसा को मानते हैं या नहीं? और अगर मानते हैं तो किस हदतक?

लक्ष्मीबाबू—हमने तीस साल तक उसी आधारपर काम किया। वह सवाल नहीं है। सवाल अहिंसक समाज की बुनियाद डालने की तैयारी का है।

शान्ति सेना

श्रीमन्नारायण अग्रवाल—हां ! अहिंसा के बारे में संदेह नहीं है। सवाल अहिंसात्मक संरक्षण और अहिंसात्मक प्रतिकार की योजना का है। हमने इनकी किसी विधि का आविष्कार नहीं किया है। खुद बापूजी की रक्षा का इंतजाम भी हमने अपने ढंग से नहीं किया। उलटे बापू की रक्षा की त्रुटि के लिये सरकार को दोष दिया। यहाँ भी हमने अपने संमेलन में नेताओं की रक्षा का इंतजाम पुलिस को ही सौंपा है। यह सब हमारा दोष है। स्वयं बापूने इस तरह का इंतजाम कभी पसंद नहीं किया। उन्होंने एक हद से आगे पुलिस और फौज को रक्षा नहीं करने दी। अगर उनकी वृत्ति को हम मानते हैं, तो एक संघ जरूर रहे। सरकार फौज रखें या नहीं, यह दूसरी बात है। उस फौज का उपयोग तो आंतरराष्ट्रीय मामलों में होगा। लेकिन जहां तक अंदर के झगड़ों का सवाल है यानी जात-जमात के झगडों का सवाल है, उनके लिये बापूने हमें एक तरीका सिखाया था। उन्होंने अपने जीवन में शांति-सेना की बात बार बार कही। किसी न किसी वजह से उनके जीते-जी शांति-सेना नहीं बनी। अब उनके बाद बने। अहिंसक समाज-रचना के दो पहलू हैं—आर्थिक और प्रति-कारात्मक। आर्थिक पहलू चरखा संघ, ग्राम उद्योग संघ जैसी संस्थायें संभालें। लेकिन प्रतिकारात्मक पहलू के लिये अहिंसक सेना की सख्त जरूरत है। यह कोई सैनिक कार्यक्रम नहीं है। यह भी रचनात्मक कार्यक्रम का ही अंग है। अहिंसक सेना मामूली अर्थ में फौजी चीज नहीं है। वह आत्मिक चीज है। मामूली फौज की तरह उसमें रोज कवायद नहीं हो सकती। लेकिन व्यवस्थित और संगठित प्रयत्न अवश्य होगा। जैसा कि कुमारप्पाजीने कहा हमारे जीवन में एक तरह का खाली-पन रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को दोष देने से काम नहीं चलेगा। तरुणों का इतना बड़ा उत्साह और जोश कहाँ जाता ? हम उसको उचित दिशा में मोड़ने की कोशिश करें तभी जीवन के मूल्य बदल सकेंगे। आर्थिक और औद्योगिक संयोजन के साथ साथ रक्षण और प्रतिकार की अहिंसक विधि का विकास भी करना जरूरी है। इसलिये बापूजीने जिस शांति सेना का संकेत किया था, उसके संगठन की रूपरेखा और योजना हम यहाँ बनावें।

बुनियादी सवाल

राधाकृष्ण बजाज—मैं समझता हूँ बुनियादी सवाल वही है जिसका जिक्र विनोबाने किया। अहिंसक समाज बनाने की जरूरत आज हमें मालूम होती है या नहीं, इसके बारे में हम अपना अपना दिल टटोलें। बापू में हमारी श्रद्धा थी। वे अहिंसा चाहते थे। उनकी श्रद्धा से प्रेरित होकर हम काम करते थे। कुछ तो यह बात थी और कुछ स्वराज्य की आकांक्षा थी। स्वराज प्राप्त करने का साधन अहिंसक प्रतिकार था। इसलिये हमने उसे श्रद्धापूर्वक अपनाया था। अब बापू चले गये। और स्वराज भी आगया। हमारी अपनी सरकार स्थापित हो गई। अब हमें राज चलाने के लिये और देश की रक्षा के लिये फौज की जरूरत मालूम होती है। हम अपने राष्ट्र में सैनिक शक्ति का विकास करना चाहते हैं। सारी रचना भी उसीके अनुरूप करनी होगी। क्या ऐसी परिस्थिति में भी

अहिंसक समाज बनाने की श्रद्धा और आकांक्षा हमारे अंदर है ? यही बुनियादी सवाल है। मुख्य बात यह है कि हम अपनी श्रद्धा की गहराई जाँचें और पडतालें। अगर उत्कट श्रद्धा और दृढ निष्ठा होगी तो मार्ग अवश्य दिखाई देगा।

व्यक्तिगत जीवन से आरंभ

शंकरराव देव—हमको सोचना यह है कि गांधीजीकी दी हुई श्रद्धा जिनमें है वे सब मिलकर कोई काम कर सकते हैं या नहीं ? क्या उनमें वह ताकत है ? और क्या उनके लिये परिस्थिति अनुकूल है ? यह सवाल है। सरकार अपने मार्गपर चलेगी। अपने ढंगसे काम करेगी। उसे भला-बुरा कहना व्यर्थ है। अगर उसमें कोई दोष है तो वह, जैसा कि कुमारप्पाजीने कहा, हमारी कमजोरी का प्रतिबिंब है। जब तक हम अपने जीवन का नक्शा नहीं बदलते तब तक सरकारसे फौज और पुलिस हटाने को नहीं कह सकते। हिंसा और अहिंसा कोई भाववाचक चीजें नहीं हैं। वे सामाजिक रचना के परिणाम हैं। अहिंसक समाज में व्यक्तियों के पारस्परिक संबंध ही ऐसे होंगे कि पुलिस और फौज की कोई जरूरत नहीं रहेगी। गांधीजीने व्यक्तियों का जीवन अहिंसक बनाकर हमारे सामने नमूना रखा। साबरमती आश्रम में हमने सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि व्रतों को माननेवालों का जीवन देखा। अहिंसक समाज की स्थापना को अपने व्यक्तिगत जीवन का आदर्श मानकर आगे बढ़ने के लिये हम में से कितने लोग तैयार हैं ? जो तैयार हैं उनके संगठित होने में क्या हर्ज है ? जीवन में हिंसा पैदा क्यों होती है ? इसलिये कि हम असंयमी और भोगी हैं। हम अपने व्यक्तिगत जीवन में से ये दोष हटावें। इस तरह के व्यक्तियों की संख्या बढ़ावें, और उनको साथ लेकर संगठित रूपसे काम करें। यहाँ रचनात्मक कार्यक्रम आजाता है। सबसे पहले देखना यह है कि इस तरह की श्रद्धा रखनेवाले कितने व्यक्ति हैं। गांधीजीका व्यक्तिगत जीवनका आदर्श कौन कौन स्वीकार करता है। उसीका आविष्करण रचनात्मक कार्यक्रम है। इस रूपमें रचनात्मक कार्यक्रम को कौन मानता है ? इस अर्थ में वैयक्तिक जीवनके आदर्शको और रचनात्मक कार्यक्रम को जो जो व्यक्ति मानते हों उनका एक संघ बने तो किसीको क्या आपत्ति हो सकती है ? अपने निजी जीवन में अहिंसा का प्रयोग करना हमारा उद्देश्य हो। जहाँतक सामाजिक जीवनका संबंध है उसमें हम विनोबा की नीति से काम लें। कमसे कम हम अपने व्यक्तिगत जीवन में से हिंसा को हटाने की कोशिश करें। सामाजिक हिंसाके जो कारण हमारे व्यक्तिगत जीवन में मौजूद हैं उनको हटाने की कोशिश करें। इस तरह पहले हम अपने व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा का विकास करेंगे। और तब सब मिलकर सामाजिक जीवन में उसका विकास करने का प्रयत्न करेंगे। उसका साधन रचनात्मक कार्यक्रम होगा। रचनात्मक कार्यका आरंभ हम व्यक्तिगत दृष्टि से करेंगे। शुरू में हमारी दृष्टि व्यक्तिगत होगी। सामुदायिक या सामाजिक संयोजन के झगड़े में हम शुरू से नहीं पडेंगे। इस दृष्टि से अहिंसक प्रतिकार का सामुदायिक संगठन मेरी राय में आज ही नहीं हो सकता। उसके लिये उचित अवसर तब होगा जब कि हम अपने अपने व्यक्तिगत जीवन में अहिंसाका विकास करेंगे, और इस तरह का विकास करने में एक दूसरे को मदद पहुँचाने के लिये एक संघ या संगठन कायम करेंगे।

जे. सी. कुमारप्पा—मेरी दरखास्त इतनी ही है, कि हम एक कदम और आगे बढें। इन व्यक्तियों को यह दिखा देना चाहिये कि सामाजिक संगठन किस तरह किया जा सकता है? (अंग्रेजी से)

शंकरराव देव—हमारा रचनात्मक कार्यक्रम, हमारी सामाजिक क्रियाशीलता का साधन होगा।

बापू के सपने का भारत

आर्यनायकम्—जब मैंने तालीमी संघ का काम अपने हाथ में लिया उस वक्त बापूने मुझ से पूछा कि तुम्हारी श्रद्धा क्या है? क्या तुम यह समझते हो कि लोगों को महज़ एक उद्योग सिखाने के लिये मैंने शिक्षण का यह नया तरीका निकाला है? या यह अहिंसक समाज कायम करने का मेरा साधन है? यदि तुम्हारा यह विश्वास हो कि बुनियादी तालीम अहिंसक समाज की स्थापना का साधन है तो इस काम में रहो, नहीं तो उसे छोड़ दो।' बापूने अपने व्यक्तिगत जीवन के विकास के लिये आश्रम बनाया। व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से वह संपूर्ण चीज थी। सामाजिक जीवन की दृष्टि से भी उसी तरह की संस्था की आवश्यकता थी। ऐसी संपूर्ण संस्था की जरूरत हमेशा रही। हमारी रचनात्मक संस्थाओं में समग्रता की दृष्टि नहीं है। समूचा हाथी किसीने नहीं देखा। चरखा संघने हाथी का पाँव ले लिया। किसी ने कान ले लिया। किसी ने सूँड़ पकड़ ली। और सब अपनी अपनी अलग अलग खिचडी पकाने लगे। इन संस्थाओं में कोई पारस्परिक संपर्क या संयोग नहीं रहा। सेवाग्राम में हम अपने रोज़ के जीवन में भी आपस में अहिंसा का विकास नहीं कर सके। यह हमारे व्यक्तिगत जीवन का और हमारी संस्थाओं के जीवन का चित्र है। मैं तफसील में नहीं जाना चाहता। बापू का 'जो मेरे सपने का हिंदुस्तान' था उसे हम जबतक अपनी मंडली में भी चरितार्थ नहीं कर सकते तबतक सफलताकी कोई उम्मीद नहीं। हमें अहिंसा का प्रयोग पहले अपनी मंडली में करना चाहिये। हम अपनी अपनी गलतियाँ आपस में कबूल करें। अपनी आत्मा शुद्ध करें। तब आश्रम जीवन सफल होगा। आश्रम जीवन व्यक्तिगत विकास के लिये है। लेकिन हमें अपने सामाजिक प्रयत्नों में भी एकरूपता और समग्रता लानी होगी। चरखा संघ, ग्राम उद्योग संघ, आदि संस्थायें एक अंग को लेकर काम कर रही है। उन सब कामों का एकीकरण तालीमी संघ में होता है। बापू की मूल कल्पना यही थी। हमें जो नया समाज बनाना है उसका आधार तो बच्चे ही हो सकते हैं। उनमें नवजीवन है। बड़ी उम्रवालों की अपेक्षा उनमें कल्पना-शक्ति, ग्रहण-शक्ति, क्रिया-शक्ति अधिक होती है। अहिंसक समाज की असली बुनियाद आगे आनेवाली पीढ़ी है। उसे हमें तैयार करना है। इसमें सरकार से सहयोग, या सहायता मांगना हमारे लिये हमेशा हितकर नहीं होगा। सरकार कल अनिवार्य फौजी तालीम जारी करना चाहेगी। हम अपने स्कूल में फौजी तालीम दाखिल नहीं करने देंगे। सरकार हमारा स्कूल नहीं चलने देगी। मैं अपना स्कूल बंद होने दूंगा। लेकिन कोई समझौता नहीं करूंगा। अपने उसूलों के लिये अपनी और संस्था की मौत मंजूर करूंगा। उस बीचका कोई रास्ता नहीं है। अपनी शिक्षण संस्थामें मैं बापू के सपने के हिंदुस्तान को दूषित नहीं होने दूंगा, उनके शुद्ध दूध में समझौते का पानी नहीं मिला दूंगा। मुझे तो बापू के स्वप्न के भारत का निर्माण करना है; नई दिल्ली का नहीं।

(यहां विषय नियामक समिति की बैठक स्थगित हुई।)

११-३-४८ दोपहर के तीन बजेसे —

दोपहर को तीन बजेसे फिर चर्चा का आरंभ हुआ।

प्रफुल्लबाबू—मैं सबेरे से चर्चा सुन रहा हूँ। दो एक बातें मैं भी कहना चाहता हूँ। मेरी राय में हमारी व्यक्तिगत श्रद्धा का सवाल ही नहीं है। जिनका व्यक्तिगत विश्वास न हों उनके इकट्ठे होने की बात ही नहीं पैदा होती। लेकिन व्यक्ति के नाते विश्वास होते हुये भी जिनका सामुदायिक रूप से विश्वास न हो, उनके इकट्ठे होने से कोई फायदा नहीं। इसलिये संघ उन्हींका बन सकता है जिनका व्यक्ति के नाते विश्वास हो और सामुदायिक रूप से भी विश्वास हो। व्यक्ति के नाते हम बहुत बड़ी ऊँचाई दिखा सके हैं। हममें कमी समुदाय-शक्ति की है। अरविंद ने कहा है 'We have shown how high an individual can rise and how low a nation can fall :— (एक व्यक्ति कितना ऊँचा उठ सकता हैं और एक राष्ट्र कितना नीचा गिर सकता है यह हमने दिखा दिया है) यही हमारा राष्ट्रीय दोष है। इस ऐब को दूर करने के लिये सामुदायिक प्रयत्न की जरूरत है। इस तरह का प्रयत्न गांधी सेवा संघ में हुआ। लेकिन वह संघ तोड़ देना पड़ा। मालिकंदा में मेरी बापू से बात हुई। मैंने बापू से कहा कि हम संघ के सदस्य एक दूसरे से लड़ते रहे हैं। सहनशील नहीं रहे। ऐसी हालत में संघ तोड़ देना ही अच्छा। आज संघ बने ऐसा मेरा दिल है। लेकिन हमारी वही पुरानी एक दूसरे से लड़ने की आदत बनी रही, तो संघ बनाने से क्या फायदा? आजतक तो बापू एक कम से कम 'सिमेंटिंग फॅक्टर' सबको जोड़नेवाली शक्ति थे। जो कुछ वे कहते थे हम मान लेते थे। चाहे पूरे दिल से भले ही न मानते रहे हों, लेकिन व्यवहार में मान लेते थे। इसलिये काम चल जाता था। अब वह शक्ति नहीं रही। बापू जाते रहे। अब पारस्परिक प्रेम की बुनियादपर काम हो सकता है। आज प्रेम की बुनियादपर ही Co-ordination संस्थाओं के काम में एकरूपता-आ सकती है। हमें पहले यह देख लेना चाहिये कि क्या हमारे भीतर इस तरह का प्रेम है? कृपलानीजीने कुछ कठोर भाषा में एक सच बात कही। उन्होंने कहा, 'बापूने हमको आदेश दिया Love thine enemy अपने बैरीसे मोहब्बत करो। हम बैरीसे प्रेम करने में मित्र से प्रेम करना भूल गये। अब हमें पहले आपस में मोहब्बत का नाता कायम करना चाहिये। इस तरह के संगठन की जरूरत है। जिस प्रकार व्यक्तियों में एकता की जरूरत है उसी तरह हमारे जो रचनात्मक कार्य करने वाले अलग अलग संघ हैं, उनमें भी एक-सूत्रता लाने की जरूरत है। चाहे यह संघ अलग अलग रहें या एक ही समग्र संघ की शाखायें हों, उसमें मुझे कोई एतराज नहीं। मुख्य बात उनमें पारस्परिक संबंध और सामंजस्य है। नायकम्‌जी और कुमारप्पाने शिकायत की कि चरखा संघ, ग्राम उद्योग संघ, तालीमी संघ आदि में पारस्परिक सहयोग नहीं है। उनमें समग्र दृष्टि नहीं है। अगर चरखा संघ वाला कहे कि मैं खादी की तरक्की में लग जाऊंगा लेकिन मेरा अछूतोद्धार में विश्वास नहीं, या तालीमी संघ वाला कहे कि हाथ कागज महँगा पड़ता है, या ग्रामोद्योग वाला कहे कि बुनियादी तालीम में कोई दम नहीं तो हम कोई संगठित शक्ति पैदा नहीं कर सकेंगे। इन सब रचनात्मक संस्थाओंका उद्देश्य एक अहिंसक और

शोषणहीन समाज कायम करना होना चाहिये। उसके लिये उन सब की सम्मिलित शक्ति, मिलीजुली ताकत की जरूरत है। इस तरह का संगठन हम अवश्य बनावें।

तीसरा सवाल यह है कि कांग्रेससे हमारे संगठन का क्या संबंध हो? पहले आज़ादीका आंदोलन था तब हम अंग्रेजों के साथ लड़ते थे। कहते थे कि कँाग्रेस के नामपर (Lamp post) को भी व्होट दो! अब आज़ादी आ गई है। अंग्रेजों से लड़ने की बात नहीं रही। अब कँाग्रेस में सत्ता की राजनीति ज़ोर पकड़ रही है। मैं नहीं कह सकता कि दो साल के बाद कांग्रेस में रहूंगा या नहीं। जिस ढंग से कँाग्रेस चल रही है, उसे देखकर दुख हो रहा है। आगे कँाग्रेस की स्थिति और नीति देखकर हमें उस के लिये अपना रुख तय करना होगा। जिस समय जैसा मौक़ा होगा उस वक्त वैसी नीति हमको रखनी पड़ेगी। हमारा संघ Static नहीं Dynamic होगा। वह अप्रगतिशील नहीं, प्रगतिशील होगा। इसी दृष्टि से हम को कँाग्रेस के लिये अपना रुख समय समय पर तय करना होगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है, कि हम राजनीति से दूर रहेंगे। हमारी दृष्टिसे Life समग्र है, Whole है, जीवन समग्र है, समूचा है। हमें सत्ता का मोह न हो। उसके लिये सबकुछ न करें। लेकिन सेवा के लिये सत्ता लेनी पड़े तो लें। असेम्ब्ली में या दूसरी संस्थाओं में भी जाना पड़े तो जावें। राजनीति को अलग चीज न समझें। जीवन एक integrated whole है। और Politics को हम Isolate नहीं कर सकते। हम उसकी गंदगी में न पड़ें; लेकिन अपना मकसद हासिल करने के लिये अगर Politics में जाना पड़े तो जरूर जावें। असेम्ब्ली में जानेवाला नीचा और न जानेवाला बड़ा ऐसा न सोचें। जो जहाँ सेवा कर सके वह वहाँ सेवा करें।

इसके बाद हमें यह भी तय करना होगा कि हमारा सरकार के साथ क्या संबंध हो? यह भी सरकार की नीति पर निर्भर रहेगा। अगर सरकार हिन्दुस्तान को एक आला दर्जेका फौजी राष्ट्र बनाना चाहे तो हम उसके साथ सहयोग नहीं कर सकेंगे? मैं एक सायंटिस्ट की दृष्टिसे कहता हूँ, सिर्फ सिद्धान्त की दृष्टिसे नहीं, कि अगर हम 'मिलिटरायझेशन्' के चक्कर में पड़ेंगे तो हमें या तो अमेरिका के या रूस के हाथ में पड़ना पड़ेगा। हमारी आज़ादी खतम हो जायगी। हमें जितना व्होलटेज अॅटम् बम के लिये चाहिये, उतनी बिजली दस साल में भी हमारे यहाँ पैदा नहीं होगी। पेट्रोल तो हमारे पास एक हफ्तेका भी नहीं है। पचीस बरस में जो तैयारियाँ हम कर सकेंगे, उसे दो अॅटम बम खतम कर देंगे। इसलिये अनिवार्य फौजी तालीम यदि सरकार जारी करेगी तो हम उसका साथ नहीं दे सकेंगे। इस प्रकार सरकार के साथ हमारा संबंध सरकार की नीति पर निर्भर रहेगा।

हम पूँजीवादी समाज खतम करना चाहते हैं। उसका सही रास्ता खोजना और अपनाना होगा। पूँजीवादी समाज में धनवान और बुद्धिवान दो तरह के चूसनेवाले होते हैं। जबतक ये रहेंगे तबतक केवल उत्पादन की योजनाओं से काम नहीं बनेगा। आज सरकार कहती है, 'अधिक अन्न उपजाओ', यह ठीक भी है। लेकिन सिर्फ पैदावार बढ़ाने से क्या फायदा होगा? बंगाल में काफ़ी अन्न होते हुये भी अकाल पड़ा और लोग मरे। सिर्फ पैदावार बढ़ानेसे काम नहीं चलेगा। पैदावार किस तरह से बढ़ाई

जाय और असका उपयोग किस तरह होगा? इसका विचार भी करना होगा। जिसमें शोषण न हो ऐसी आर्थिक योजना की तालीम जनताको देनी पड़ेगी। अहिंसा का शिक्षण भी जनताको देना होगा। सरकार अगर दूसरी नीति अख्यार करे तो काँग्रेस भी सरकार के साथ रहेगी। क्योंकि सरकार काँग्रेस की है। ऐसी हालत में हमें शायद सरकारका और काँग्रेसका, दोनों का भी मुकाबला करना पड़े। इसके लिये हमें तैयार रहना चाहिये। ये सब बातें संगठन से ही हो सकती हैं। अब हमारे सामने सिर्फ काँग्रेसके पीछे चलते रहने की बात नहीं है।

हमने यह माना और समझा है कि दुनिया के लिये और कम से कम हिंदुस्तान के लिये बापूका रास्ता ही भलाई का रास्ता है। जो लोग सिर्फ दिमाग से बापू की बात में विश्वास करते हैं लेकिन अपनी जिंदगी में उसका अमल नहीं करते, ऐसे लोग हमारे किसी काम के नहीं हैं। देश में करोड़ों लोग बापू के पैरों पड़ते थे, लेकिन उनकी बातों पर अमल नहीं करते थे। उन सब का यह संगठन नहीं हो सकता। बापू की बातों में सच्ची श्रद्धा रख कर उन पर चलने वालों का संगठन होना चाहिये। ऐसे लोग चाहे मुट्ठी भर ही क्यों न हो, बहुत कुछ कर सकेंगे। आज बापू की जगह लेने वाला कोई एक आदमी हमारे पास नहीं है। इस लिये संगठन की जरूरत है। यह संगठन अहिंसक संगठन होगा। वह Volantary Organisation होगा। खुशी का संगठन होगा। ऐसे संगठन में Disciplinary Action का सवाल ही नहीं हो सकता। उसमें अनुशासन की कारवाई की जरूरत ही नहीं रहेगी। जैसा कि विनोबाने कहा, जिन लोगों का हमारे सिद्धान्त में विश्वास नहीं होगा या जो उन पर अमल नहीं कर सकेंगे वे अपने आप चले जायेंगे। उन्हें हमारे संगठन में रहने का मोह ही क्यों होगा? विनोबा की बात सही है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं, जो सिर्फ प्रतिष्ठा के लिये संघ में बने रहना चाहें। उनको हटा देना पड़ेगा। अहिंसक समाज में भी शायद कभी एकाध बार Minimum Voilence कम से कम हिंसा करने का मौका आ सकता है। उसी तरह अहिंसक संगठन में भी शायद एकाध मामले में कम से कम अनुशासन की कारवाई Minimum Disciplinary Action करनी पड़े। लेकिन यह अपवाद होगा। संगठन तो एक दूसरे के लिये मुहब्बत, विश्वास, और सचाई के आधार पर ही चलेगा। उसमें जो अनुशासन होगा वह नियमों का नहीं; दिलका, हृदयका, आत्माका होगा। जैसा कि आध्यात्मिक समाजों में होता है। गौरांग महाप्रभुने कहा था कि जो प्रभु को भजते हैं, वे मेरे प्राण हैं। गौरांग महाप्रभु बड़े कोमल हृदय के थे। उनका विश्वास आध्यात्मिक बंधन में था। फिर भी किसी मौके पर उन्हें अनुशासन की कारवाई करनी पड़ी। हम भी आपस में संकल्प करें कि जो आदर्श को भजते हैं, वे हमारे प्राण हैं। ऐसे व्यक्तियों का संघ कायम करें। इस वक्त देश का वातावरण अच्छा नहीं है। हमारे संगठित होने की जरूरत है। हमारी जो पांच छह संस्थायें हैं उनको शाखायें समझकर उनका भी एक संघ बनायें। उसका जिसे प्रमुख बनावें उस पर श्रद्धा रखें। देखे एक साल तक क्या नतीजा आता है! सच्चे दिल से एक होकर काम करें। एक दूसरे की कमियाँ प्रेम से बतलावें। मिलकर उन पर विचार करें। पीठ पीछे बुराई न करें। इस तरह की एक संमिलित समिति या मिलाफी समिति दस से पंद्रह तक आदमियोंकी कायम करें।

राजेंद्रबाबू--इस संबंध में जाजूजी कुछ विचार रखते हैं। क्या वे कुछ कहेंगे ?

जाजूजी—प्रफुल्लबाबू अपने भाषण में कई मुद्दे लाये हैं। अगर हम एकेक मुद्दा लें तो मैं कुछ कहूंगा।

धोत्रेजी—शंकरराव ने विचार के लिये कुछ मुद्दे लिख कर दिये हैं उन्हें मैं पढ़कर सुनाता हूँ। (श्री शंकररावजी के मुद्दे पढ़कर सुनाये।) ये सारे मुद्दे चार मुद्दोंमें आ जाते हैं। वे ये हैं। (१) हमारी श्रद्धा (२) हमारा संगठन (३) हमारी रचनात्मक संस्थाओं का एकीकरण (४) शासन-संस्था और कॉंग्रेस आदि दूसरी संस्थाओं से हमारा संबंध।

सरकार और हम

राजेन्द्रबाबू – हमें कोई प्रस्ताव तो करना नहीं है। मैं समझता हूँ अबतक जो चर्चा हुई है, उसका सार साफ है। इस चीज में कोई ज्यादा मतभेद नहीं कि हम एक अहिंसक समाज की नींव रखने की तरफ कदम बढ़ावें। इसमें भी मतभेद नहीं, कि हम अपनी हर चीज सरकार पर लागू नहीं कर सकते। सरकार को अपने रास्ते पर चलने दें, हम अपने रास्ते से जावें। सरकार की कार्यपद्धति और हमारी कार्यपद्धति में टक्कर आ जाय तो हम चुप बैठें या सरकार का मुकाबला करें, इसमें कुछ मत-भेद है। एक राय यह है कि जब तक हम शासन का भार संभालने को तैयार नहीं होते, तब तक हम सरकार को हमारे रास्ते पर चलने के लिये मजबूर नहीं कर सकते। इसलिये हमें अलग रह कर, सरकार के काम में रुकावट नहीं डालनी चाहिये। एक दूसरी स्थिति की कल्पना नायकमजी ने की है। वे कहते हैं कि अगर सरकार लाज़मी तौरपर फौज़ी तालीम जारी करके हमको मजबूर करती है तो टक्कर आही जाती है। ऐसी हालत में हम सरकार के रास्ते में रुकावट नहीं डालते, वह हमको हमारे रास्ते पर चलने से रोकती है। मैं समझता हूँ कि ऐसी परिस्थिति पैदा नहीं होगी। जो सच्ची निष्ठासे अहिंसा को धर्म के रूप में मानते हों, उन पर सरकार जबरदस्ती नहीं करेगी। एक तीसरी स्थिति भी हो सकती है जिसका जिक्र विनोबाजी ने किया। वह स्थिति निष्क्रिय तपस्या की है। जहां सरकार हमको मजबूर नहीं करती, लेकिन सारे देश और जनता को अपनी राहपर चलाती है, वहां हमें सरकार का विरोध करने के बदले तटस्थ हो कर तपस्या करनी चाहिये। हमारी यह नीति ऊपर ऊपर से देखने में तो निष्क्रियता की होगी, लेकिन असल में वह हमारी श्रद्धा और ताकत बढ़ावेगी। प्रतीक्षा और प्रार्थना भी सेवा का साधन माना गया है। अबतक की चर्चा में ये तीन-चार बातें साफ हो गई हैं। अब इनके बारें में चर्चा करने से चीज आगे नहीं बढ़ेगी।

श्रद्धा की व्याख्या

शंकरराव – केवल आत्मनिष्ठ विचार से अब कदम आगे नहीं बढ़ेगा। हमारी श्रद्धा है या नहीं इतना विचार काफी नहीं है। हमारी श्रद्धा क्या है, इसकी व्याख्या करनी चाहिये। सिर्फ श्रद्धा के बारे में एकवाक्यता है, इतना कह देना काफी नहीं है। उस श्रद्धा का स्वरूप स्पष्ट होना चाहिये।

राजेन्द्रबाबू—एक संघ बनाने का निश्चय अगर हम करें तो उसके रूप का विचार करना होगा। उसमें ये सारी बातें आ जावेंगी। फिर भी कोई सवेरे के विषय पर या इस विषय पर कुछ कहना चाहें तो कह सकते हैं।

शंकरराव—संघ के बारे में कल विनोबाने जो विचार प्रकट किये उन्हें आज वे फिर दोहरा दें तो चर्चा में मदद होगी।

बंधुभावना और बन्धभावना

विनोबा—कल मैंने जो कहा था असका थोड़े में खुलासा करता हूँ। मेरी व्यक्तिगत वृत्ति संस्थाओं के बंधन के कुछ प्रतिकूल रही। गांधी सेवा संघ से मेरा दिली सम्बन्ध रहा। मैं उसे सहयोग देता रहा। लेकिन कभी उसका बाकायदा सदस्य नहीं बना। मेरी इस वृत्ति के पीछे एक विचारधारा रही है। मैं बंधुभावना का कायल हूँ; लेकिन बंधभावना नहीं चाहता। 'व्यक्ति' और 'वाद' के नामपर साम्प्रदायिकता आ ही जाती है।

शस्त्र के विषय में किसी निर्णयपर पहुँचना आसान नहीं है। संसार में दयालु पुरुषोंने भी शस्त्र न लेनेका निर्णय नहीं किया। संघ के बारेमें भी मेरी कुछ ऐसी ही वृत्ति है। किसी तरह का निर्णय कर लेना मुश्किल है। कोई व्यक्ति संघ में न जावे अिस निर्णय पर नहीं आया हूँ। आता तो सबको संघ में जाने से मना करता।

जेल में मैंने अपनी वृत्ति की मर्यादा देखकर अपने लिये निर्णय किया कि मैं किसी संघ में नहीं रहूँगा। बाहर आनेपर बापू से कहा। उन्होंने मेरा निर्णय अपनी भाषा में रखा कि तुम सेवा करोगे, अधिकार से दूर रहोगे।

संघ का बन्धन

जब कोई संघ या मंडली बन जाती है तो सांप्रदायिकता का भय लगा रहता है। मैं समझता हूँ, इस दृष्टि से कुछ व्यक्तियों का संघों में से दूर रहना दोनों के लिये अच्छा होता है। हम जो संघ बनाना चाहते हैं वह सर्वोपरि होगा या सलाह देनेवाला होगा, उसे कोई अधिकार, वैधानिक सत्ता होगी या नहीं, यह सवाल कल मैंने उठाया था। जाजूजी का कुछ ऐसा खयाल था कि इस संघ का अध्यक्ष सब संघोंका अध्यक्ष हो, लेकिन ऐसा हुआ तो संघका निर्णय सलाह के रूप में नहीं होगा, वह लाज़िमी होगा। फिर उसमें अनुशासन भी होगा। न माननेवाले का ऐसे संघ में स्थान नहीं हो सकता। मतभेद होनेपर व्यक्ति को उसमें से हट जाना चाहिये। उसे दोनों स्वतंत्रतायें रहेंगी। एक तो संघ में न आनेकी और दूसरी मतभेद होनेपर हट जाने की। इन स्वतंत्रताओं को जो नहीं चाहता उसे संघ में रहकर निर्णय न माननेकी स्वतंत्रता नहीं रहेगी।

नाम के कारण सांप्रदायिकता का डर नहीं

जाजूजी– तीन चार संघोंके एकीकरण की बात जब सामने आई तब मैंने सोचा कि गांधी सेवा संघ का पुनरुज्जीवन कर सकें तो अच्छा हो। अब तो बापूजी के न रहनेपर इस बात की और भी जरूरत मालूम होती है। इसके खिलाफ यह एतराज उठाया जाता है कि कहीं इस तरह हम गांधीजी के नाम पर एक संप्रदाय खड़ा न करें। गांधीजीका नाम ले लेकर अपनी बात समाजमें चलाना ठीक नहीं होगा। मुझे यह एतराज ठीक नहीं मालूम होता। सांप्रदायिकता का डर मुझे नहीं है। हमारे सामने जो सवाल आते हैं उनके बारेमें सलाह देनेके लिये गांधीजीकी जगह एक संस्था की जरूरत है। अब एक व्यक्ति के बजाय अनेक व्यक्ति यह काम करेंगे। सिर्फ गांधीजीका नाम संस्थाके नामके साथ जोड़ देनेसे सांप्रदायिकता आनेका डर मुझे नहीं है। अब हमारी बुद्धि इतनी जड़ नहीं रह गई है कि पुराने जमाने की तरह हम गांधीजीके नामपर अपने मतलब के लिये एक संप्रदाय कायम कर लें। लेकिन जब विनोबा और किशोरलालभाई ने यह निर्णय दिया कि अब गांधीजी के नामपर कोई संगठन बनाना ठीक नहीं, तो मैंने बात मान ली। मेरी राय कायम है। लेकिन मुझे उनका निर्णय मंजूर है। गांधीजीका नाम छोड़कर हम एक संघ बनावें। लेकिन दूसरा सवाल यह है कि बनावें किसके बलपर?

बागडोर कौन लेगा?

जब विनोबा और किशोरलालभाई उसमें सक्रिय रूपसे दिलचस्पी न लें, तो वह कैसे चले? जिनपर हमारा भरोसा है वे ही अगर तैयार नहीं होते, तो यह बात बने कैसे? आखिर हमें समाजमें ही जाकर काम करना पड़ेगा। मैं सरकार या काँग्रेस की तरफ दृष्टि नहीं रख रहा हूँ। लेकिन समाजपर प्रभाव डालनेवाले व्यक्ति न होंगे तो संघ का काम आगे कैसे बढ़ेगा? इसी काम को अपने जीवन का प्रधान कार्य मानकर संघ का प्रमुख बनने के लिये कौन तैयार है? कोई बड़ाभारी आदमी अपने ज़िले में रहकर अपना मुख्य काम करता रहे और उसके साथ साथ इस काम को भी करना मंजूर कर ले, तो भी हमारा काम तरक्की नहीं करेगा। उन्हें इसी काम को मुख्य काम मानना होगा। हम व्यक्तित्व की बात भूल नहीं सकते। अबतक बापू थे। वे जो कुछ कहते थे उसका असर होता था। अब उनका काम कौन करेगा? पांच-सात व्यक्तियों को मिलकर उनकी जगह लेनी पड़ेगी। इन पांच-सात व्यक्तियों का एक मुख्य स्थान होना चाहिये। वही उनका Head quarters (सदर मुकाम) होगा। वे आते जाते भलेही रहें लेकिन उनके रहनेकी जगह वही होगी। नया संघ बनानेकी जो बात है उसके बारे में मेरा यह सुझाव है। यह एक अलग संघ होगा; जिसे हम मार्गदर्शन करनेवाला संघ कह सकते हैं।

रचनात्मक संघों का एकीकरण

अब दूसरी बात है रचनात्मक संस्थाओंके एकीकरण की। यह तो मानी हुई बात हैं कि इन संघों में कुछ न कुछ संपर्क और संयोग होना चाहिये। इस संबंध में दो तरह के विचार हैं। एक श्री जे. सी. कुमारप्पाजी का। उनकी योजना यह है कि मैजूदा संघों को तोड़ देना चाहिये। और उनकी जगह इन

सारी प्रवृत्तियों का एक समग्रसंघ कायम करना चाहिये। इन संघोंको तोड़ देनेके बाद आगे जो समग्र-संघ बनेगा उसका काम कहां तक ढंगसे और कार्यक्षमतासे चलेगा, इसकी स्पष्ट कल्पना मैं नहीं कर सका। उसे भी अलग अलग कामों के लिये अलग अलग शाखायें बनानी पड़ेंगी। इसलिये मैंने यह सोचा कि मौजूदा संघोंको तोड़ना कोई जरूरी बात नहीं। एकीकरण और संयोग जरूर चाहिये; लेकिन मौजूदा संघोंको तोड़ देनेकी जरूरत हो, तभी उन्हें तोड़ें। अन्यथा नहीं। उनको बगैर तोड़े भी अच्छी तरहसे एकीकरण हो सकता है। उनको कायम रखते हुये उनमें मिलाप हो सकता है। इस तरह के एक संयुक्त संघकी या समग्र-रचना-संघकी योजना मैंने बनाई है। (अपनीं योजना पढ़कर सुनाई)

हर संघ की मर्यादा

पहले बापूजी की सलाहसे इन सारे संघोंके लिये एक सलाहकर समिति बनाओ गई थी। बापूजी उसके अध्यक्ष थे और नरहरिभाई उपाध्यक्ष। लेकिन जब नरहरिभाई चले गये तब वह काम पड़ा रह गया। उस समितिमें एकीकरण की बात नहीं थी। एकीकरण की बात अब सामने आई है। इस तरह के एकीकरण की कहांतक जरूरत है, इसका अंतिम निर्णय तो वे संस्थाएँही करेंगी। हम लोग जो यहांपर बैठे हैं, वे भी अपनी अपनी राय जरूर दें, लेकिन आखिरी फैसला तो उन संस्थाओंकोही सौंपना चाहिये। रचनात्मक संस्थाओंके काम करने के तरीकेपर काफी टीका-टिप्पणी की गई है। चरखासंघ सबसे बड़ा है, इसलिये उसके बारेमें काफी बातें कही गईं। उसने यह नहीं किया, वह नहीं किया, इस तरह के कई आक्षेप किये गये हैं। हमारे सामने एकीकरण का जो सवाल है, उसकी दृष्टि से ये आक्षेप अप्रासंगिक हैं। उनमेंसे जो चरखासंघ के लिये लागू होते हैं, उनकी तहमें भी ग़लतफहमी है। जिस परिस्थिति में और जिन उद्देश्योंको लेकर चरखासंघ शुरू हुआ, उसमें समग्रताकी दृष्टि से काम होना मुमकिन नहीं था। चरखासंघ के काम से भी पहले खादी की बात आई। खादी को संगठित रूप देने के लिये चरखासंघ कायम हुआ। उसी तरह ग्राम उद्योग संघ, तालीमी संघ वगैरा बने। हरेकने अपना अपना काम किया। एक संघने दूसरे संघके क्षेत्रपर अतिक्रमण नहीं किया। दूसरे संघके काममें सक्रियरूपसे सहायता भी नहीं पहुँचाई। क्योंकि यह मुमकिन नहीं था। किसी हदतक ये संघ एक दूसरे के पूरक थे। लेकिन संपूर्णरूप से एक दूसरे के पोषक नहीं हो सके। क्योंकि यह बात संभव न हो सकी। उदाहरण के लिये तालीमी संघ के सूत की बात ले लीजिये। सवाल यह हुआ कि तालीमी संघ के सूत का क्या किया जाय? नायकमजी ने कहा कि वह सूत चरखासंघको खरीदना चाहिये। इसका मैंने विरोध किया। मेरा कहना था कि इसका भार सरकारपर है। बापूजीने भी मेरी बात का समर्थन किया। तब यह बात आई कि तालीमी संघके स्कूल चरखासंघही चलावे। लेकिन बापूजीने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि चरखासंघ सिर्फ खादीकाही काम करे। तालीम के काम के लिये जो दृष्टि और जिस तरह की बनावट चाहिये वह चरखासंघ के पास नहीं है। आज हमने तालीमी संघ में बुनियादी उद्योग कताई को माना है। लेकिन सब जगह और सब समय के लिये यह बात नहीं हो सकती। हम किसी जगह दूसरे किसी उद्योग को भी शिक्षणका माध्यम बना सकते हैं। तालीम का काम चरखा संघ की हैसियत से

बाहरका है। यही बात ग्राम उद्योगों के लिये भी लागू है। चरखासंघ अपना पैसा खादी के सिवा दूसरे कामों में नहीं लगा सकता। शुरू में इसी तरह की नीति और मर्यादा रखनी पड़ी। हरेक संघ का अपना अपना नपातुला दायरा बन गया। आज उसमें अलगपन और एकांतिकता आगई है। हर संघ का दायरा तंग और सख्त हो गया है। अब उसमें तबदीली करने का वक्त आ गया है। इसकी जरूरत सभी महसूस करने लगे हैं। इस संबंध में एक योजना जे. सी. कुमारप्पाजी की है और दूसरी मेरी। और जिनकी जो सूचनायें हों वे उन्हें पेश करें। और आप उनपर विचार करें।

लक्ष्मीबाबू—धीरेन्द्र बाबू के कुछ सुझाव हैं। वे बीमार हैं। इसलिये खुद नहीं आ सके। मैं उनके सुझाव पढ़ सुनाता हूँ। (श्री धीरेन्द्रबाबू मजुमदार की सूचनायें पढ़कर सुनाई।)

अलगपन की ज़रूरत

विनोबा—हम जब इन संघों के एकीकरण का विचार करते हैं, तो उनका थोड़ा पूर्वेतिहास भी याद रखना होगा। यह सच है कि बापूने सभी संस्थायें एकही विचारसे निकालीं। विचार की मूलभूत एकता, धारणाकी भीतरी एकता, जरूर थी। लेकिन शायद इन संघोंको एक हदतक एक-दूसरेसे अस्पृष्ट रखनेकी कल्पना भी रही होगी। हरिजन सेवक संघ के उदाहरण से यह साफ है। बापू चाहते थे कि हरिजन सेवक संघ में गैर-काँग्रेसी आवें और वे अधिक प्रमाण में आवें। काँग्रेसवालोंके पास यों ही बहुतसे काम पड़े हैं, इसलिये हरिजन सेवा के काम में जितने दूसरे लोग आवें उतनाही अच्छा। जो लोग हरिजन सेवाका काम करेंगे वे चाहे खादी पहनें या न पहनें, उनके लिये कोई शर्त नहीं थी। सरकारी स्कूलों और कालेजों पर जब बहिष्कार नहीं था उस वक्त भी उस तरह के शिक्षण का आदर नहीं किया जाता था। लेकिन बहिष्कार के जमाने में भी हरिजन सेवक संघ की तरफसे सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में जानेवाले हरिजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी जाती थी। हमारी वृत्ति कॉलेजों के बहिष्कार की थी। लेकिन फिर भी इस तरहकी छात्रवृत्तियाँ देना उचित समझा जाता था। गोसेवा संघ के बारेमें भी कुछ ऐसी ही नीति हो सकती है। अस्पृश्यता-निवारण, खद्दर, नई तालीम, आदि सारे कामोंको मिला देनेसे पहले हमें इस इतिहासका ध्यान रखना चाहिये। नई तालीम का भी अपना एक इतिहास है। एकीकरण की बात तो सुहावनी है। परंतु यह देखना होगा कि क्या इन कार्योंकी उन्नति के लिये उनको एक मर्यादा तक अलग अलग रखना भी आवश्यक नहीं है? आपके विचार के लिये यह बात मैंने पेश की है।

दूसरा पहलू

धोत्रेजी—विनोबाने जो कहा वह एक अंश में सही है। लेकिन उसका एक दूसरा पहलू भी है। हमने चाहा कि हरिजन सेवक संघ का काम गैर-काँग्रेसी लोग सम्हालें। लेकिन अनुभव यह हुआ कि जब काँग्रेसवालोंने वह काम किया, तभी हुआ। ग्राम उद्योग संघ का काम चलाने के लिये भी नये आदमी नहीं मिले। सारे संघों में अदल-बदल कर उन्हीं उन्हीं आदमियों से काम लेना पड़ रहा

है। जो काँग्रेसी कार्यकर्ता रचनात्मक संघों में आये उनके लिये यह नियम बनाना पड़ा कि वे राजनीति में और सत्याग्रह में भाग न लें। यह पहलू भी हमें ध्यान में रखना होगा।

तालीमी संघ हमारा संयोगबिन्दु

आशा देवी—तालीमी संघ का काम एक ऐसा काम है जिसमें इन सारे संघों के काम आ जाते हैं। जहां जहां तालीमी संघ का काम चलता है वहाँ समग्र ग्राम सेवा का आग्रह अपने आप आ जाता है। बुनियादी तालीम का स्वरूपही ऐसा है। मैं समझती हूँ कि इस एकीकरण का साधन तालीमी संघ हो सकता है।

जी. रामचन्द्रन्—क्या बापू के दिल में भी एकीकरण की यह कल्पना थी? क्या उन्होंने उसका कोई संकेत किया था? अब जब कि बापू नहीं रहे, एकीकरण का सवाल और भी अहम हो उठा है। बापू हमारे लिये एकीकरण के बिंदु थे। वे हम सबको मिला लेते थे। अब वह जिम्मेवारी उठाने की किसी की हिम्मत नहीं होगी। विनोबाजी शायद उस शर्त को पूरा कर सकें। दूसरा कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता। उनमें वह योग्यता है, लेकिन वे भी तैयार होंगे या नहीं, इसमें शक है। ऐसी हालत में जो काम बापू करते थे वह एक संस्थाही कर सकती है। मेरी राय में तालीमी संघ ऐसी संस्था हो सकती है। जाजूजी कहते हैं कि जिस काम का पैसा उसी काम में लगाया जाना चाहिये। इस तरह के कार्यांकित (इयर-मार्क्ट) फंडों के बारे में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। सरकार एक काम के लिये निर्धारित पैसा दूसरे कामों में लगा रही है। हम भी ऐसा कर सकते हैं। यह सवाल तफसील का है। मुख्य बात यह है कि रचनात्मक संघों में एकता कायम करनेवाली संस्था कौनसी हो सकती है। पूना में जो प्रौढ़शिक्षण परिषद हुई, उस समय बापू के साथ चर्चा हुई। एक सुझाव यह था कि चरखा संघ, ग्राम उद्योग संघ, जैसी संस्थाओंको प्रौढ़शिक्षण का काम करना चाहिये। क्योंकि यह भी रचनात्मक कार्य ही है। बापू इसके खिलाफ थे। उन्होंने यह कहा कि 'ये संस्थायें अपना-अपना काम कर रही हैं। प्रौढ़शिक्षण उनकी कक्षा में नहीं आता। वह तालीमी संघ कर सकता है। क्योंकि तालीमी संघ में सारे रचनात्मक कार्यों की परिपूर्णता है। उस संघ का काम सारी रचनात्मक संस्थाओं में जान डालना है। नई तालीम में मेरी सारी रचनात्मक प्रवृत्तियों का मिलाप होता है। वह मेरी रचनात्मक संस्थाओं का संयोग-बिंदु है। नई तालीम में सारे रचनात्मक कार्यक्रम का समावेश हो जाता है और उसमें नई दृष्टि और नया जीवन भी आ जाता है। मेरी सारी उत्पादन की योजना की वह प्राणस्वरूप वस्तु है। मेरी रचनात्मक योजनाओं की वह आत्मा है'। इसमें बापू का संकेत हमें मिलता है। उन्होंने नई तालीम को संयोग-बिंदु माना है। जहाँ जहाँ नई तालीम पहुँचती है वहां खद्दर आ ही जाती है। ऐसा कोई स्थान नही कि जहां नई तालीम हो और अस्पृश्यता-निवारण न हो। या ग्राम उद्योगों को उत्तेजन न मिलता हो। इसलिये मेरी राय में तालीमी संघ को ही हमें अपने एकीकरण का अधिष्ठान बनाना चाहिये। (अंग्रेजी से)

शंकरराव—इस चर्चा का क्या उद्देश्य है, समझ में नही आया।

राजेन्द्र बाबू—तालीमी संघ के रहते हुये रचनात्मक संघों के एकीकरण के लिये किसी नये संघ की जरूरत है या नहीं, यह चर्चा का विषय है। रामचन्द्रनजी की राय में ऐसी कोई नई संस्था बनाने के बदले तालीमी संघ को ही उस तरह का रूप दे देना बेहतर होगा।

पहली बात पहले

शंकरराव—मैं समझता हूँ हम पहली बातों का विचार पहले करें। पहले यह तय करें कि हमें गांधीजी के सिद्धान्तों को माननेवालों का एक संगठन बनाना है या नहीं? मौजूदा रचनात्मक संघों का एकीकरण किस प्रकार किया जावे, यह दूसरा सवाल है। इन दोनों प्रश्नों को मिलाना नहीं चाहिये। जब ये संगठन बन जावें तो उनका सरकार के साथ और काँग्रेस के साथ कैसा संबंध हो, यह तीसरा प्रश्न। पहली बात का पहले विचार करें, बाद की बात का बाद में।

बापूकी लोकसेवा संघ की कल्पना

प्यारेलालजी--मुझे भी ऐसाही लगता है। एक नये संघ की स्थापना और रचनात्मक संघों का एकीकरण ये दो अलग अलग सवाल हैं। बापूकी लोक-सेवा संघ की कल्पना और एकीकरण की कल्पना, ये दो अलग अलग कल्पनाएँ थीं। लोक-सेवा संघ की योजना काँग्रेस के लिये बनाई गई थी। उनको यह डर था कि काँग्रेस जिस तरह आज चल रही है इसी तरह चलती रही, तो वह निःसत्त्व, और बेजान हो जायेगी, पहले की काँग्रेस की छाया-सी बन जायगी। काँग्रेस आज सत्ता की लड़ाई में पड़ गई है। इस वजहसे वह अपनी कमाई हुई ताकत खो रही है। सत्ता की होड़ में काँग्रेस के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे। इसलिये वे काँग्रेसका रूप बदलकर उसे इस संकट से बचाना चाहते थे। वे उसको ऐसी बनाना चाहते थे, जिससे वह राज्यसत्ता को बल दे सके। पहले की काँग्रेस जिस तरह का काम करती थी वह आजकी सरकारें कर रही हैं। लेकिन काँग्रेस की लड़ाई का जो तरीका था, उसकी जो भूमिका थी, वह हिंदुस्तान सरकारका तरीका नहीं है। काँग्रेस की शक्तिका आधार नैतिक बल था। नैतिक प्रतिष्ठा ही उसकी विशेषता थी। अब हम यदि उस रास्तेको छोड़कर दुनियाकी दूसरी ताकतों की तरह हिंसाके मार्गपर चलेंगे तो हमारी कोई इज्जत नहीं रहेगी। दूसरोंकी तराजू में हमको तोला जायगा। और हम उनके मुकाबले में बिलकुल एक तीसरे दर्जे की ताकत साबित होंगे। हमारी जो संसार में इज्जत थी वह मिट्टीमें मिल जायगी। इसलिये बापूने काँग्रेसको सत्ताकी राजनीतिसे अलग रखकर सरकारको नैतिक बल देनेवाली संस्था बनाना चाहा। उनकी लोकसेवा संघकी योजना का यही हेतु था। लेकिन किसी कारण काँग्रेसने उसे नहीं लिया। लोकसेवा संघकी बुनियादी चीज काँग्रेस ग्रहण नहीं कर सकी। न सही। मगर काँग्रेसवालोंने उसे मंजूर नहीं किया, तो हम उस काम को अपने हाथमें ले लें। हम बापूजीकी प्रणाली के प्रतिनिधि समझे जाते हैं। हमें सोचना चाहिये कि लोकसेवा संघकी कल्पनाका अमल करने के लिये हम क्या कर सकते हैं। हमारे सामने जो बड़ी बड़ी समस्यायें हैं, उनको हल

करनेकी कोशिश सरकार अपने ढंग से करती है। हम एक तरह से केवल तटस्थ दर्शक से बन गये हैं। हम कितनाही बड़ा संगठन क्यों न बनावें, अगर इस परिस्थितिमें किनारे बैठकर चुपचाप ताकनेवाले ही बने रहेंगे, तो समाजपर हमारा कोई असर बाकी नहीं रहेगा। और हमारे सारे सिद्धान्त किसी काम के नहीं साबित होंगे। देशके सामने आये दिन जो मसले पेश होते हैं, उनको हल करने का हमारे पास अगर सरकार से बेहतर तरीका हो तो, लोगोंमें हमारी बात का आदर होगा। और हमारे संग उनकी इज्जत बढ़ेगी।

'फील्डवर्क' की जरूरत

मैं देखता हूं कि हमारे सामने जो बड़ी-बड़ी समस्यायें हैं उनको हल करने की कोशिश में सरकार हार गई है। अपने आपको लाचार पा रही है। मिसाल के तौर पर अन्न की समस्या ले लीजिये। राजेन्द्रबाबू, जयरामदासजी जैसे आदमी, जो लोक-सेवा संघ के सबसे बड़े प्रतिष्ठावान और निष्ठावान सदस्य हो सकते हैं, अन्नमंत्री होकर भी कुछ नही कर पाते। उन्हें उसी पुराने सरकारी यंत्र से काम लेना पड़ता है। सरकारी कर्मचारी उसी पुरानी लीकमें चलते है। उस दलदल से बाहर नहीं निकल पाते। इसीलिये समाजवादी अधीर हो रहे हैं।

सरकार के पास यह काम कराने के लिये मशीनरी भी नहीं है। हमारा संघ ऐसा बन सकता है। चाहे हम एक नया लोकसेवक संघ बनावें या हमारी रचनात्मक संस्थाओंका एकीकरण करें। मुझे संतोष है। या हम एक ऐडहॉक कमिटी बना लें, जो अन्न-संकट-निवारण का काम अपने हाथ में ले ले। अन्न प्रश्न के बारेमें मेरा अपना अनुभव बहुत काम का हो सकता है। दूसरी संकट-समितियों की तरह की एक संकट-समिति बनाकर हम कोई एक क्षेत्र पसंद कर लें। वहां का अन्न-संकट निवारण करनेकी कोशिश करें। इसमें यह सरकार हमारी मदद करेगी। आज तक हमने कल्पनायें और योजनायें बहुत कीं; लेकिन फील्ड वर्क नही किया। अब हमें अपनी संस्था के सदस्यों को (Technical knowledge) शास्त्रीय ज्ञान देकर फील्ड वर्क (प्रायोगिक कार्य) करना सिखाना चाहिये। इस तरह से हम चाहें तो हम हजारों आदमियोंको भुखमरीसे बचा सकते हैं। एक यह काम है।

घरमें आग लगी है

दूसरा सवाल पाकिस्तान के कारण पैदा हुआ है। पाकिस्तान तो दिल्ली में पड़ा है। वहां मानो हम पाकिस्तान को बुला रहे हैं। शरणार्थी हमारे आदमी हैं। उन्होंने जो कुछ सहा है, उससे उनके सिर फिर गये हैं। उनपर बदलेका भूत सवार है। 'मसजिदोंको तोड़ दो', 'खूनका बदला खून से लो', इस तरह के नारे वे लगाते हैं। लेकिन साथ साथ ऐसी बातें करते हैं, जो सुनी नहीं जातीं। पहले वे मुसलमानों के साथ ज्यादतियाँ करते थे। लेकिन आज उनकी रक्षा करनेवालों की मा बहिनों की इज्जत भी, उनके सबब से खतरे में है। दिल्ली के हिंदू कहते हैं, इनसे हमारे मुसलमान पड़ोसी अच्छे थे। हमारी जान-माल को इनसे ज्यादा डर है। इनसे स्त्रियोंको ज्यादा डर है। यह एक ऐसा

मसला है जिसकी तरफ से हम बेफिक्र नहीं रह सकते। घरमें आग लगी है। हम बैठे बैठे देख नहीं सकते। हमें जहां जहां आग सुलग रही है, उन हिस्सों में जाकर काम करना चाहिये। इस तरफ हम में से किसी का ध्यान नहीं गया।

बापूकी विशेषता

बापूकी एक विशेषता थी। वे किसी भी परिस्थिति में मजबूर और निष्क्रिय नहीं रहते थे। नवाखाली में नंगे पांव कूद पड़े। मानो महासागर में कूद पड़े। आगे, आगे, आगे ही बढ़ते चले गये। हर कदम के साथ गहरे पानी में बढ़ते गये। उनकी यह विशेषता हमको भी अपनानी चाहिये। हम अगर हेज़िटेट करते रहेंगे, हिचकते रहेंगे, कैलक्यूलेट करने में, हिसाब लगाते रहने में वक्त बरबाद करेंगे, तो हमेशा के लिये मौका खो देंगे। हमें अब यह निश्चय कर लेना चाहिये कि या तो हम यह समस्या हल करेंगे या मर मिटेंगे। 'Do or Die,' 'करो या मरो' का और क्या मतलब हो सकता है? मैं वहां नवाखाली में अकेला रहता हूं। चाहे जब मारा जा सकता हूँ। वहाँ के लोगों के बीच में जाता हूँ। उनसे बातें नहीं कर सकता। मुझे उनकी भाषा नहीं आती। उनके काम में शामिल होकर ही उनके साथ संपर्क कर सकता हूँ। वे लोग खेती करते हैं। मैं खेती नहीं जानता। अब खेती करना सीख रहा हूँ। अगर पहले से सीख लेता तो इस वक्त बहुत कुछ कर सकता। उन लोगों को कपड़ा बनाना सिखाता हूं। इस तरह उनकी रोजमर्रा की जिंदगी में शामिल होने की कोशिश करता हूं। यही नई तालीम का तरीका है। बापूका यह कहना बिलकुल ठीक है कि नई तालीम में सब बातें आ जाती हैं। विनोबाने विश्व-रूप-दर्शन के बारेमें इसी तरहकी बात कही थी। हमारे हर छोटे छोटे काम में विश्वकी सारी बातें आ जाती हैं। जब हम इस तरहका काम उठा लेंगे, तो हमें इकट्ठा होकर सोचनेकी जरूरत होगी। हर प्रश्न के विशेषज्ञों की जरूरत होगी। हम अपने बीचमेंसे ऐसे शास्त्र जाननेवाले टेक्निशियन पैदा करने लगेंगे। हमारी रचनात्मक संस्थाओं में नई जान-सी आ जावेगी।

सजीव होकर काम करें

आजकी परिस्थिति में सजीव होकर काम करनेका यही तरीका हो सकता है। हमें एक बेजान संगठन कायम नहीं करना है। मूल बात यह है कि जनताको ही हम अपना भगवान मानें। नर-नारायण की सेवा को ही अपना मुख्य धर्म मानें। उसी में खप जावें। जो जो संकट में पड़े हों उन्हें अपना कुटुंबीय मानें। जहां संकट हो वहां हर आदमी दौड़ जाये। हम हर बात में इस वृत्ति से काम लें, तो हमें इस तरह बैठकर कृत्रिमरूपसे किसी संघका निर्माण नहीं करना पड़ेगा। जब हम संकट-निवारण के लिये इकट्ठे होंगे तो अपने आप एक साथ मिलकर सोचेंगे और मिलकर काम करेंगे। अपने आप संघ बन जावेगा। केवल बौद्धिक चर्चा में पड़ेंगे तो भौंरोंकी तरह घूमते रहेंगे।

संगठन की जरूरत

आचार्य जुगलकिशोरजी—हम सभी महसूस करते हैं कि हमारे कामों में संगतिकरण की और एकीकरण की जरूरत है। वह कैसे हो? नई तालीम के जरिये हो, या और किसी तरह हो,

यह बादमें सोच लें। लेकिन रचनात्मक कार्यकर्ताओं को एक-दूसरे से मिलकर सलाह-मशवरा करते रहना चाहिये। इसलिये उनका एक संयोगी संघ कायम होना जरूरी है, जो रचनात्मक कार्य करने-वालोंको सलाह दे, सहायता दे, और उन्हें मिलाये रखे। उसी तरह बापू की जगह शक्ति के भंडार का निर्माण करना भी आवश्यक है। पहले गांधी सेवा संघ इस तरह का काम करता था। वही काम अब करना है। अगर गांधी सेवा संघ का पुनरुज्जीवन किया जा सके तो अवश्य करना चाहिये। बापूकी हत्याके बाद हम यहां इकट्ठा हुए हैं। सारा हिन्दुस्तान हमारे इस सम्मेलन की तरफ देख रहा है। दूसरे लोग यह जानने के लिये उत्सुक हैं कि यहां हम क्या निर्णय करते हैं, अब बापूके बाद हम कौनसा कदम उठाते हैं, बापू की मृत्यु के बाद उनका काम उसी अहिंसक तरीके से चलाने का कोई रास्ता हमें बतलाना चाहिये। दुनिया और अपने भाइयों के सामने अपना कुछ निर्णय हमें रखना चाहिये। हम बापूजी के अभाव की पूर्ति तो नहीं कर सकते। लेकिन हममें से हरेक में वह ताकत कमोबेश मात्रा में आ सकती है, जो बापू में थी। हमें अपनी थोड़ी-थोड़ीसी ताकत जुटाकर उनका काम आगे बढ़ाने की तजवीज करनी चाहिये। इस दृष्टिसे मैं संगठन की आवश्यकता महसूस करता हूँ।

कॉंग्रेस और राजनीति

लोकसेवा संघ की कल्पना बापूजीने कॉंग्रेसके सिलसिले में की थी। वह चाहते थे कि कॉंग्रेस पार्टी-पॉलिटिक्स से निकलकर सामाजिक, आर्थिक और नैतिक क्षेत्र में आ जावे। अभी हमें सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्वराज्य प्राप्त करना है। उनका यह खयाल था कि कॉंग्रेस की जो प्रतिष्ठा इन पच्चीस–तीस वर्षों में रही है, उसे बनाये रखने के लिये कॉंग्रेस पार्टी-पॉलिटिक्स से हट जावे। राजनैतिक क्षेत्र में कॉंग्रेस किस हदतक और किस तरह का काम करे, यह पूछने का मौका नहीं मिला। अगर कॉंग्रेस राजनैतिक क्षेत्र से बिलकुल हट जाय तो उस क्षेत्र में किसे काम करना चाहिये, यह सवाल भी उनसे पूछा नहीं जा सका। शायद उनका यह खयाल था कि कॉंग्रेस अगर जन-तंत्र की सामाजिक, आर्थिक, और नैतिक भूमिका का निर्माण करेगी तो राजनैतिक पार्टियाँ अपने आप बन जायेंगी। और उन पार्टियों का रूप भी आज की पार्टियों से अधिक शुद्ध होगा। उनकी यह राय थी कि मौजूदा राजनैतिक वातावरण को शुद्ध करने के लिये कॉंग्रेस को सत्ता की राजनीति से हट जाना चाहिये। कॉंग्रेस ने पूरी तरह उनकी बात नहीं मानी। कारण यह था कि आज कॉंग्रेस की सरकारें काम कर रही हैं। उन सरकारों का समर्थन करने वाली कोई न कोई राजनैतिक संस्था होनी चाहिये। वह संस्था कॉंग्रेस ही हो सकती थी। क्यों कि उसीने सरकारें कायम की हैं। कोशिश यह रही कि लोकसेवक संघकी दूसरी बातें कॉंग्रेस में आजावें। कॉंग्रेस अपनी तरफ से अपनी मर्यादामें यह कोशिश जारी रखेगी। फिर भी ऐसी संस्था की जरूरत है, जो संपूर्ण रूपसे लोकसेवक संघ बन सके। एकीकरण का काम अलहदा है। यह लोकसेवक संघ पार्टी-पॉलिटिक्स से अलग रह कर व्यापकरूपका राजनैतिक काम करे। वह गांवमें जा कर जनतामें प्रवेश पावे और एक पॉलिटिकल पार्टी न बनकर पॉलिटिकल-फोर्स बने। राजनैतिक दल नहीं, राजनैतिक शक्ति का रूप ले। उसका सरकार पर नैतिक प्रभाव

अवश्य पड़ेगा। काँग्रेस अपने आपको कितना ही क्यों न सुधारे, इस तरह के संघ की जरूरत रहेगी। उसका काँग्रेस से या रचनात्मक संस्थाओंसे कोई संघर्ष नहीं आ सकता। रचनात्मक संस्थायें चाहें तो लोकसेवा संघ से संबंधित रह सकती हैं। वे उसकी विशेषज्ञ संस्थायें होंगी। संघ उनसे सलाह और मार्गदर्शन लेता रहेगा और देता भी रहेगा। लेकिन उनपर कोई नियंत्रण नहीं रखेगा। उन संस्थाओंपर संघ का कोई कानूनी काबू नहीं होगा। मतलब यह कि हमें दोनों तरह के संगठनोंकी आज जरूरत है। बापूके पश्चात् एक राजनैतिक और नैतिक शक्ति कायम करनी है।

संगठन के बारे में एकमत

राजेन्द्रबाबू—मैं समझता हूँ हम इस प्रश्न की काफी चर्चा कर चुके हैं। इस संबंध में बहुत-कुछ एकमत है कि कोई एक ऐसी संस्था बने जो अहिंसात्मक समाजरचना का ध्येय रखकर काम करे। और उसके दरम्यान में और भी काम करे। विनोबाजी ने कहा कोई चुस्त संस्था बनाने में साम्प्रदायिकता का डर है। जहां तक हो सके हमें उससे बचना है। क्योंकि साम्प्रदायिकता से संस्था बेजान बन जाती है। उससे बचने के लिये हम कोई योजना बनावें। हम इस प्रश्न को दूसरी दृष्टि से देखते हैं। आज तक हम जो रचनात्मक कार्य करते आये हैं, वह सब बापू की प्रेरणा और मार्गदर्शन से हुआ है। चरखा संघ, ग्रामउद्योग संघ, तालीमी संघ की स्थापना अलग अलग स्थिति में हुई। हरेक का अलग अलग इतिहास है। जैसे जैसे जरूरत हुई, बापूजी बतलाते गये और हम करते गये। हरेक काम की जरूरत उस समय की परिस्थिति में प्रकट होती गई। बापूजी उसे पहचानते गये और उस तरह की संस्था की स्थापना करते गये। अब बापूजी नहीं है। परिस्थिति भी बदल गई है। एक तरफ बहुत कुछ अधिकार हाथ में आ गया है और दूसरी तरफ भीतर और बाहर से राज पर खतरे आ रहे हैं। ब्रिटिश राज को हटाना भर हमारा मकसद नहीं था। जिन ध्येयों को लेकर हम एक विशिष्ट प्रकार के समाज की स्थापना करना चाहते थे, वह काम करना अभी बाकी है। यह काम हम किस तरह कर सकेंगे, इस संघ का इस काम में किस तरह का रुख हो, क्या वह सरकार की शक्ति में अपनी शक्ति मिला दे, या स्वतंत्र रूप से अपना काम करता रहे, ये सारे सवाल हमारे सामने आये। उनपर हमने चर्चा की। और करीब करीब इस नतीजेपर पहुँचे कि इस तरह का अपने ढंग से काम करनेवाला एक संघ बने।

नैतिकता की रक्षा : तुरन्त का काम

हम एक दूसरी बात आप लोगों के सामने रखना चाहते हैं। हमारा ध्येय तो अहिंसक समाज की रचना है। उसकी भूमिका बनाना हमारा सब से पहला काम है। उसके लिये समाज में नैतिकता के मूल्य स्थापित करने हैं। लेकिन हमारी राय में हमारे सामने तुरन्त का सवाल नई रचना का नहीं है। तुरन्त का सवाल समाज की नैतिकता की हिफाजत का है। नैतिकता का जो कुछ थोड़ा-बहुत पैमाना समाज में था, उसे बचाना है। हमारे समाज में जो नैतिक बल था, नैतिकता की जो रीति या परिपाटी थी, उससे भी हम गिरते जा रहे हैं। दूसरे देशों के नैतिक आदर्शों में भी ह्रास हो रहा है।

लड़ाई के जमाने में धन कमाने की वृत्ति इस कदर बढ़ी कि मामूली नैतिक स्टैण्डर्ड भी नहीं रह गया। दूसरे देशों के मुकाबले में हमारा तो और भी ज्यादा नैतिक पतन हो रहा है। कुछ इनेगिने आदमी नैतिकता में बहुत श्रेष्ठ भले ही माने जाते हों, लेकिन सारे समाज में नैतिकता की कोई परिपाटी नहीं रह गई है। प्रामाणिकता का कहीं पता नहीं रह गया है। ऐसी भावना हो गई है कि समाज में कोई आदमी ऐसा नहीं जो खरीदा नहीं जा सकता, जिसे हम पैसे देकर काम नहीं करा सकते। यह तो लोभवृत्ति की बात हुई। क्रूरताका भी कोई ठिकाना नहीं रहा। देश में इधर जो घटनायें घटीं उनमें हमने नैतिकताका कोई भी नियम नहीं पाला। हमने स्त्रियोंको, बूढ़ोंको और बच्चोंको भी नहीं छोड़ा। उनपर भी हाथ उठाये, जो कुछ नहीं कर सकते थे, जो मासूम और असहाय थे। यहाँ तक हमारा पतन हुआ। बदले के लिये ही क्यों न हो, लेकिन हमने अपनी इन्सानियत को छोड़ दिया। पहले तो दिल्लीमें और दूसरी जगह कहते थे कि मुसलमानों को काटो, उनको लूटो, मारो! लेकिन जब मुसलमान हट गये, तो अब क्या हाल है? अगर मुसलमान सामने नहीं हैं, तो जो सामने हैं, उन्हींको काटो, उन्हींको मारो। यह होना ही था। जो शरणार्थी आये, उन्होंने पाकिस्तान के मुसलमानों का गुस्सा यहां के मुसलमानों पर निकाला। एक का गुस्सा दूसरे पर निकालने की आदत लग गई। अब मुसलमान सामने नहीं हैं, तो हमपर गुस्सा निकालते हैं। हमारा पैसा छीन लेते हैं। डाका डालते हैं। औरतों को सताते हैं। कोई आदमी इन बुराइयों को रोकना चाहता है तो शरणार्थी उसपर गुस्सा करते हैं। दूसरे लोग उससे नाराज होते हैं। ऐसी भयानक परिस्थिति है। हमारे सामने सवाल यह नहीं है कि आगे के लिये किस तरह की समाज-रचना का प्रयत्न करें। बल्कि यह अंदेशा है कि इस अपूर्ण मनुष्य समाज में जो थोडीसी नैतिकता थी, उसे भी हम बचा पावेंगे या नहीं। यही सवाल सरकार के सामने है। यही हमारे सामने है। हमारी जो संस्था बनेगी, उसे सबसे पहले इस में कूदना है। इसमें वह कुछ कर सकेगी तो वह जमेगी, वरना हवा में रहेगी। दिल्ली में फसाद हो और हम चरखा चलाते रहें, या नई तालीम का काम करते रहें, यह काफी नहीं है। जब घर में आग लग रही है, तब पहला काम यह हो जाता है कि हम उसे बुझावें। जो संघ आप कायम कीजिये, उसका पहला काम यह हो। 'अॅडहॉक कमिटी' की सूचना में बहुत कुछ तथ्य है। हमारे सामने दो तरह का काम है। एक तो यह कि जहां आग लग रही है वहां उसे बुझाना और जहां नहीं लगी है वहां उसे रोकना। हमें अगर अपने अस्तित्व का समर्थन करना है, तो दोनों तरह के कामोंकी योजना तुरन्त करनी चाहिये।

मूलभूत कठिनाई

धोत्रेजी—नया संघ बनाने की बात तो सर्वमान्य-सी हो गई है। लेकिन एक मौलिक प्रश्न रह गया है। यह सब काम कौन सम्हालेगा? हम देखते हैं कि हमारे सारे नाटक उन्हीं उन्हीं पात्रों के होते हैं। चरखा संघ और ग्राम उद्योग संघ के ही कार्यकर्ता इधर उधर होकर नये नये संघ बनते हैं। संघ बनाने की कल्पना तो ठीक है लेकिन उसका बोझ कौन उठावेगा?

नये आदमी क्यों नहीं आते ?

राजेन्द्र बाबू—हां, यह सवाल तो है। नये आदमी आनेका स्रोत बहुत दिन से पतला पड़ गया है। और अब तो सूख चला है। औरोंको नये नये आदमी मिलते हैं और हमको क्यों नहीं मिलते ? हमारा रास्ता सुख का और आराम का पहले भी नहीं था और अब भी नहीं है। दूसरों का रास्ता भी चैन और आराम का नहीं है। फिर भी हमारे बीच नये आदमी क्यों नहीं आते ? शायद नये आदमियों को हमारी चीज नहीं भाती। उसमें उन्हें काफी जोशका सामान नहीं दिखाई देता। वे उसमें पराक्रम के लिये काफी मौका नहीं देखते। क्या यह सच है ? हमें सोचना होगा। या फिर हम खुद भी अपने काम के साथ एकजीव नहीं हो सके हैं। हमारा सारा दिल उसमें नहीं है। यह भी सोचने की बात है। आज हम में भेद पड़ रहे हैं। यह हमारी कमजोरी तो है। लेकिन जो कुछ इने-गिने मजबूत निष्ठा रखनेवाले आदमी हैं, उन्हींकी संस्था बनी, तो भी वह चंद दिनोंकी ही होगी। उनमें से बहुतोंकी अवस्था अधिक हो गई है। अगर नये आदमी न आये तो हमारी संस्था कितने दिन चलेगी ? इसलिये यह सोचने की बात है कि नये आदमी क्यों नहीं आते। और वे किस तरह आवेंगे।

राधाकृष्ण बजाज—आप इसका क्या कारण समझते हैं ?

राजेन्द्र बाबू—हमारा कार्यक्रम लोगोंको अपील नहीं करता, यह एक कारण हो सकता है। दूसरा कारण यह है कि हमने उसको इस तरह नहीं चलाया कि लोगोंपर असर पड़े। बापू की जो दृष्टि थी उसे उनके साथियोंने पूरी तरह नहीं अपनाया। बापू और बापू के साथियों का भेद सन' तेईस से ही शुरू हुआ। कई रचनात्मक कामवाले भी कौन्सिलवाले हो गये। जब हमारी अपनी निष्ठाही इस तरह डांवाडोल और ढीलीढाली रही, तो हमारे काम का प्रभाव दूसरोंपर कैसे पड़ता ? यह भी एक कारण है कि नये नये लोग आकर्षित नहीं हुये।

नई प्रेरणा की शक्ति का अभाव

प्यारेलालजी– हमारे काम में जायका लानेवाला नमक-मसाला काफी मात्रा में नहीं है।

किशोरलाल भाई—यह बात ठीक नहीं है कि कोई नये लोग आते ही नहीं। बापू के पास आखिर तक नये नये तरुण आते ही रहे। बापू में वह ताजापन और ताकत थी जिससे तरुणों को आकर्षण होता है। वह नित्य नई प्रेरणा देने की शक्ति हम में नहीं है। जिस हदतक हम में वह ताजगी होगी उस हद तक हमारे पास भी नये नये आदमी आयेंगे। बापू की ताजगी से आकर्षित होकर वे उनके जाल में फँसते थे। आज विनोबा के पास नये नये लोग आते हैं। काका के पास आते हैं। मेरे पास भी आते हैं। हम उन्हें पकड़ते नहीं, बल्कि फेंक देते हैं। इसलिये यह बात नहीं कि नये आदमी बिलकुल ही नहीं आते।

तीन कारण

लेकिन एक हदतक यह सच भी है कि नये नये लोग काफी तादाद में नहीं आते। दूसरी संस्थाओंके लिये उन्हें जो आकर्षण है वह हमारे लिये नहीं हैं। इसके तीन कारण हैं।

एक हमारी तपश्चर्या जो एक बार हो चुकी सो हो चुकी। उससे आगे हम नहीं बढ़े। पुरानी पूंजीपरही काम चला रहे हैं। नई तपस्या नहीं है। इसलिये नया आकर्षण भी नहीं।

दूसरा कारण यह है कि जमानेके साथ परिभाषा बदलती रहती है। नई परिभाषा अपने साथ नया आकर्षण लाती है। बापूसे पहले रचनात्मक कार्यकी संस्था नहीं थी। सर्वेंट्स आव इंडिया सोसायटी सामाजिक क्षेत्रमें काम करती थी। लेकिन १९०८ से लेकर १९१० के दरमियान राजनैतिक विचार-प्रणाली, परिभाषा, दृष्टि, बिलकुल बदल गई। सर्वेंट्स आव इंडिया के लिये कोई आकर्षण नहीं रह गया। ऐसे वक्तपर बापू सामने आये। उनकी भाषा लोगोंके दिमागमें समाने लगी। अब जमाना मार्क्सवाद और समाजवादका है। अब दूसरी परिभाषा आकर्षक नहीं लगती। अब हमें अपने विचार उस परिभाषामें रखने होंगे। तभी वे लोगोंकी समझमें आवेंगे। जमाने के साथ परिभाषा बदलनी चाहिये। भाषाके भेदसे वस्तुमें भेद होता हो ऐसी बात नहीं है।

तीसरा कारण यह है कि हमारे पास जितना चारित्र्यबल चाहिये, उतना नहीं है। हमारा चारित्र्य जितना ऊँचा रहेगा उतनाही हमारा असर पड़ेगा।

तपोबल और चारित्र्यबल की कमी

विचित्रनारायण शर्मा —— आज नई परिभाषा का जमाना है, ऐसा आपने कहा। लेकिन यह सिर्फ भाषाभेदही है, या वस्तु भेदभी है ?

किशोरलाल भाइ—समाजवादी और मार्क्सवादियों के दिल में वस्तुभेद भले ही हो, लेकिन हम तो सिर्फ उनकी परिभाषा लेते हैं। सिर्फ परिभाषा से वस्तुभेद नहीं होता। ईश्वर के लिये हम ईश्वर शब्द काममें लावें या सत्य कहें, तो सिर्फ नाम का फर्क है, वस्तु का नहीं। भक्तिमार्ग और वेदान्तमार्ग की परिभाषा में फर्क है लेकिन दोनों की उपास्य वस्तु एक ही है। लेकिन परिभाषा का कारण तो एक कारण है। मुख्य कारण तो यह है कि हमारा तपोबल कम हो गया है, और चारित्र्यबल जितना चाहिये उतना नहीं है।

(इसके बाद विषय-नियामक समिति ने संघ की रूपरेखा का मसविदा बनाने के लिये पंद्रह सदस्यों की एक समिति मुकर्रर की। इस समिति को हिदायत दी गई कि वह कल सबेरे की बठक में संघ की रूपरेखा का मसविदा पेश करे।)

मसविदा-समिति की बैठक

११-३-४८ की रातको ८ बजे के बाद मसविदा-समिति की बैठक हुई। जिसमें संघ के नाम, उद्देश्य, सदस्यों की शर्तें और मुख्य मुख्य नियमों के बारे में ता० १२ मार्च की विषय-नियामाक समिति की बैठक के सामने रखने की कुछ बातें तय हुईं। (परिशिष्ट संख्या १ देखिये)

इसके बाद इस बात की चर्चा हुई कि इस सत्याग्रह मंडल का कामकाज चलाने के लिये कार्य-समिति की शकल क्या हो ? कृपलानीजी का सुझाव था कि रचनात्मक संघों की जो मिली-जुली कमिटी बनेगी उसीको सत्याग्रह मंडल की कार्यकारणी माना जाय। एक सुझाव यह भी पेश हुआ कि रचनात्मक संस्थाओं की मिलापी कमिटी में जो संस्थायें शामिल होंगी उनमें से सत्याग्रह मंडल भी एक हो। शंकरराव देव का कहना था कि रचनात्मक संस्थाओं में मिलाप करने का काम और सत्याग्रह मंडल के प्रबंध का काम, ये दोनों बिलकुल अलग अलग काम समझे जावें। इन्हें मिलाना ठीक नहीं। दोनों में मेल और अविरोध रहे। लेकिन दोनों को एक न किया जावे। काफी बहस के बाद कोई निश्चित फैसला नहीं हुआ। आखिर यह तय पाया गया कि सत्याग्रह मंडल के संगठन की जिम्मेदारी शंकरराव को सौंपी जाय।

विनोबा के सुझावों में एक यह भी सुझाव था कि मंडल के सदस्य के पास उसकी अपनी कोई व्यक्तिगत या निजी या कौटुंबिक जायदाद नहीं होनी चाहिये। इसपर काफी चर्चा हुई लेकिन इसके बारे में कोई हद या नाप बनाना गैर मुमकिन समझा गया। इसलिये वह बात छोड़ दी गई।

विषय-नियामक समिति की बैठक

ता. १२-३-४८ को आठ बजे सवेरे फिर विषय-नियामक समितिकी बैठक शुरू हुई।

धोत्रेजी--कल शामकी तजवीज के अनुसार जो मसविदा-समिति कायम हुई थी, उसकी रातको बैठक हुई। उसने विषय-नियामक समिति के विचार के लिये कुछ सुझाव तैयार किये हैं। वे सुझाव आपको पढ़कर सुनाये जायेंगे। उनकी चर्चा अब आप करें। अबतककी चर्चा का नतीजा यह है कि हम संघ बनानेका फैसला करीब करीब कर चुके हैं। अब सोचना यह है कि इस संघका मुख्य कौन होगा ? रचनात्मक संघोंकी संमिलित समिति से या मिलापी संघसे उसका क्या तालुक होगा ? काँग्रेस से और सरकारसे क्या संबंध होगा ?

भीतरी एकता

विनोबा--कल आप लोगोंके सामने निजी तौरपर कुछ खयालात मैंने रखे थे। अधिक विचार करनेपर सबके विचार के लिये सब के सामने एक बात रखनेकी इच्छा हुई। सब लोग चाहते हैं कि हमारा एक ब्रदरहुड या बंधुत्वसंघ, हो। अगर अंदरिनी ब्रदरहुड--भीतरी बंधुत्व--न हो, तो कोई फायदा नहीं। अंदरसे ब्रदरहुड है, फिर भी कोई बाहरी रूप हो, ऐसी ख्वाहिश हो सकती है। इसमें कोई बुराई नहीं। लेकिन वह कोई ऐसी चीज न बने जिससे हमारे मकसदको ही हानि पहुँचे। हमारे अंदर भेद पैदा करनेवाली, फ़िरके पैदा करनेवाली, उलझनें पैदा करनेवाली, कोई चीज़ न हो। मिलापी संघ तो हो। वह सब संघों के एकीकरण के लिये होगा। उसके बारेमें कोई बहस नहीं। वह तो बने। उसके रूपकी चर्चा कर लें। उसके विषय में मैं नहीं कह रहा हूँ। उसका विचार उन उन संघों के संगठनकर्ता कर लें।

फ़ेहरिश्त न हो

लेकिन दूसरा जो बंधु संघ बनाने की बात है, अुसके बारे में मेरी ये सूचनाअें हैं। वह विचारों में और भावनाओं में अेक हो। वह किन अुसूलों को मानता है यह साफ़ हो। अुसमें जो लोग दाखिल हों अुनसे किस तरह के बरताव की अपेक्षा है, अिस बारेमें कमसे कम नियम हों। अुन नियमों को माननेवाले जो भी हों, वे सब उस के सदस्य हैं। उनकी फ़ेहरिश्त की भी ज़रूरत नहीं। क्यों कि अगर फ़ेहरिश्त बने तो मुश्किल पैदा होती है। कोई कहे कि मैं अिसमें आने के योग्य हूँ, तो उसकी लियाक़त जाँचने की बात आयेगी। फ़ेहरिश्त के साथ दूसरोंको 'जज' करनेका, उनकी जाँच-पड़ताल करनेका, ख़तरा पैदा होता है। यह बात फ़िरकाबन्दीकी तरफ ले जानेवाली है। जो समझते हैं कि हम इसके सदस्य हैं, वे सदस्य हैं। वे अपनी अपनी जगह काम करते रहें।

एक मेला हो

तब पूछा यह जायगा कि फिर इस संघका क्या काम? यह क्या करे? साल में एक मुकर्रर तारीखपर एक मेला कराया जाय। उसकी जगह भी मुकर्रर हो। जो अपने को सदस्य मानते हैं वे मेला में आवें। उनके आने-जाने, रहने-ठहरने, खाने-पीने का कोई अिन्तजाम हम नहीं करेंगे। मेलेंमें, यात्राओंमें, जैसा अिन्तजाम होता है वैसा हो। कार्यक्रम कताई, सफाई आदि का हो। सब अपना अपना चरखा, अपना अपना झाड़ू और ग्राम-सफाई के दूसरे औजार लेकर आयें। सब मिलकर प्रार्थना करें। भाषण रखने हों तो रख सकते हैं। और कोई कार्यक्रम न रख सकें तो अकेली प्रार्थना काफ़ी है।

इससे हमारी ताक़त बढ़ेगी। इसमें वे खतरे नहीं हैं जो इस संघको मिलापी संघकी शाखा वगैरह बनानेसे पैदा होते हैं।

अपरिग्रह—व्रत

सदस्यों के लिये बहुत कम नियम हों। लेकिन जो नियम हों वे बिलकुल साफ़ साफ़ हों, जिससे आचरण करनेवालों को स्पष्ट कल्पना हो जावे। संघ में जो आना चाहे उसके पास कोई प्राइवेट प्रापर्टी—खानगी संपत्ति—न हो। व्यक्तिगत संपत्ति भी परिमित हो। एक मनुष्य के लिये जो लाज़िमी हो उससे अधिक वह न रखे। संघका सदस्य अपरिग्रह-व्रत पालनेवाला हो।

सबकी अपनी भी कोई सम्पत्ति न हो यह हमारा उसूल होगा। संघ के पास इतना कोष है, बैंक में उसकी इतनी रकम है, यह तो बिल्कुल नहीं होना चाहिये। उसके भीतरी उसूल के अनुरूप बाहर से भी वह पूरा अपरिग्रही हो। अगर उसका कोई दफ्तर होगा, वहाँसे हिदायतें निकलेंगी, तो सारे खतरे पैदा हो जायेंगे। इससे संस्था परिग्रही बन जाती है। उसमें खराबियाँ पैदा हो जाती हैं। ये संक्षेप में मेरी सूचनाएँ हैं। मूलभूत सूचना तो यह है कि बाहरसे एक होने लिये हमें पहले अन्दर से एक होना चाहिये।

सदस्यों में संपर्क कैसे होगा ?

राजेन्द्रबाबू—आपका मतलब यह है कि जहांतक हो सके नियम कमसे कम हों। फेहरिश्त न रखने का मन्शा यह है कि एक-दूसरेको जज करनेका, याने एक दूसरे के बारे में भली-बुरी राय देने का, मौका न आवे। जो अपने को सदस्य कहे वह अपने आप सदस्य हो जाता है। मुकर्रर तारीख और जगहपर अपने आप लोग आवेंगे और चले जायेंगे। न कोई निमंत्रण होगा न प्रबंध। यहीं मेला होगा। यह सब तो हमारी समझ में आता है। लेकिन इस तरहसे अपनी मर्ज़ीसे बने हुये सदस्य जहांतहां बिखरे रहेंगे। अपनी अपनी समझके मुताबिक अपनी अपनी जगह काम करते रहेंगे। उनका कोई एक-दूसरे के साथ संबंध भी होगा या नहीं ? वे अपनी अपनी मर्जीसे काम करते रहेंगे, तो एक दूसरे के खिलाफ भी जा सकते हैं। एक दूसरे से परामर्श करने की या सलाह-मशविरेकी कोई योजना हम करेंगे या नहीं ?

विनोबा—जो इस तरह का संबंध रखना चाहें वे मेले में आवें। वहां वे आकर चर्चा और विचार भी कर सकते हैं। सलाह देने के लिये 'हरिजन' की तरह का कोई अखबार भी चला सकते हैं। उसमें लोग अपने अपने खयाल लिखें। सबके विचारों में एकता होना जरूरी है। जिसकी जो गलती हुई हो वह उसे मेले के समय जाहिर कर दे, तो सुधार हो सकता है। इस तरह अपने अपने ढंग से काम करने पर इन बिखरे हुअे कार्यकर्ताओं को अगर संगठित होने के लिये संघ बनाने की जरूरत मालूम हुई, तो अपने आप संघ बन जावेगा। हमें आज बैठकर कृत्रिमरूप से एक संस्था का निर्माण नहीं करना चाहिये। जगह जगह जब कई संस्थायें खुल जायेंगी और उनके भीतर से जब एक केंद्रीय संस्था की मांग पैदा होगी, तब संघ बनाने के लिये अवसर होगा।

राजेन्द्रबाबू—स्पष्टता के लिये मैंने यह सवाल किया था। जहां तक विचार का सवाल है, वह तो बिना संस्था के हो सकता है। लेकिन प्रत्यक्ष काम का जहांतक संबंध है, अलग अलग फैले हुयें कार्यकर्ताओं का अगर एक-दूसरे के साथ कोई मेल न हुआ, तो एक तरह की अव्यवस्था पैदा हो जायगी।

विनोबा—जो रचनात्मक काम करनेवाले हैं, उनके लिये मिलापी संघ बनावें। वे सब अपने अपने काम के जानकार होंगे। उनकी सलाह और मार्गदर्शन के लिये रचनात्मक संस्थाओं का जो मिलापी संघ बनेगा, वह काफी है। मैं, वह जो दूसरा संघ बनाने की बात है, उसके बारे में कह रहा हूं। उस बंधु-संघ का कोई विधान न बने, कोई रजिस्टर न हो।

ज़ाकिर साहब—विनोबाजी का मतलब यह है कि जो 'ब्रदर हुड' हम बनाने जा रहे हैं, उसकी कांस्टिट्यूशन लूस याने ढीली-ढाली और लचीली हो।

एक व्यावहारिक मुश्किल

राजेन्द्रबाबू—यह तो ठीक है। लेकिन हमारी एक व्यावहारिक मुश्किल है। मान लीजिये हम खादी का काम करते हैं। लेकिन चरखा संघ में नहीं हैं। फिर भी हम इस संघ के सदस्य तो

होही सकेंगे। अब अगर चरखा संघ से हमारा मतभेद हो, तो विरोध पैदा होगा। अभी तो यह बंधन है कि चरखा संघ की खादी के सिवा और खादी खादी ही नहीं है। लेकिन आपके इस नये संघ में रहकर भी हम अपनी अलग खादी बना सकते हैं। उसमें यह बंधन नहीं रहेगा। तब यह विरोध पैदा होगा।

ज़ाकिर साहब—विनोबाजी की चीज खुद तो अच्छी है। लेकिन सवाल यह है कि वह काफ़ी कहां तक होगी। वह ढीली और फैली हुई होने के कारण अपनी जगह पर अच्छी है। और एक चुस्त संगठन से ज्यादा काम की भी है। मगर राजेन्द्रबाबू की जो मुश्किल है उसमें भी काफी जोर है। ऐसी हालत में अगर हम लोक-सेवक संघ जैसा एक संघ कायम करें तो क्या हर्ज है?

सुंदरलालजी—मेरी समझ में राजेन्द्रबाबू की मुश्किल ठीक नहीं है। उनकी इस कठिनाई का हल मिलापी संघ में है। मिलापी संघ अपने कायदे रखेगा। वह सारे रचनात्मक कार्यों को एक सूत्र में बांध सकता है। एक संगठन के रूप में आप जितना बांधना चाहते हैं, वह मिलापी संघ करेगा। लेकिन यह जो भाईचारा हम कायम करना चाहते हैं वह जितना 'लिक्विड', पतला या द्रवरूप रहे उतना ही अच्छा। आप कुछ नियम तो रखना ही चाहते हैं, जैसे अपरिग्रह का नियम, ये इखलाकी याने नैतिक नियम होंगे। उन नियमों को मानने और पालनेवाले ही सदस्य होंगे। उनके लिये इखलाकी या नैतिक बंधन काफी होंगे। इस तरह के जो आपके सदस्य होंगे वे अप्रमाणित खादी आदि के चक्कर में पड़ेंगे ही कैसे? इस तरह के एक शिथिल या ढीले संगठन का तजुर्बा हम एक साल तक तो करें।

विकेन्द्रीकरण की तरफ़ रुख हो

मंजरअली सोख्ता—जो बात विनोबाजी ने कही है, वाकई वह सोचने की चीज है। अबतक हमने जो संगठन किये वे सब केंद्रित संगठन थे। यहां का चरखा संघ सारे हिंदुस्तान में हर जगह की खादी-उत्पत्ति को नियंत्रित करता रहा। म० गांधी के आखरी विधान में हमें इस बात का संकेत मिलता है कि इस ढंग से काम करने से कोई फायदा नहीं हुआ है। अब हमको केंद्रीकरण से बाज़ आना चाहिये। अब जहां तक हमारी तहरीक पहुंची है, उसका रुख विकेंद्रीकरण की तरफ है। अब स्थानीय चीजों को उभरने का मौका देना चाहिये। जहां की चीज का वहीं विकास हो। वह अपने ढंग से चले और पनपे। दुश्वारी यह है कि इस तरह से किसी का किसी से मेल नहीं रहेगा। एक इधर चला एक उधर चला। इसको कैसे हटावें? दिक्कत तो है। लेकिन किसी एक खास जगह से हुक्म देकर यह कठिनाई हल नहीं हो सकती। हम देखते हैं कि चरखा संघ के खिलाफ बग़ावत की भावना ज़ोर पकड़ रही है। अब हमारी कोई प्रवृत्ति केंद्रित तरीकेपर न जम सकेगी न पनप सकेगी। हमें अब स्थानीय कार्यकर्ताओं की सद्बुद्धि और समझदारी का भरोसा करना चाहिये। उनसे कहना चाहिये कि भाइयो, हिलमिलकर काम करो। अगर स्थानीय कार्यकर्ताओं में सद्बुद्धि नहीं है, तो ऊपर की हुकूमत से भी कोई फायदा नहीं हो सकता। हमें इस वक्त हर जिले को या

तहसील को स्वतंत्रता दे देनी चाहिये। अगर कोई चाहे तो अपना एक स्थानीय लोकसेवक संघ बना ले। हमने अबतक यह चीज कर के नहीं देखी। अब उसका तजुर्बा लेना चाहिये। विनोबाजी ने जो नक्शा रखा वह दर असल निर्दोष है। अगर आप कोई केंद्रीय चीज बनाना ही चाहें तो उसे खास बातों के लिये महदूद रखें।

यह सब कौन करायगा?

जाजूजी—मेला अगर एक ही जगह होगा तो उसमें दूर दूर के लोग आ नही सकेंगे। क्या जगह जगह मेले लगें तो अच्छा नही होगा? खादी की जो बात कही गई वह इसमें नहीं आती। इस वक्त हम रचनात्मक काम के एकीकरण की बात नहीं कर रहे हैं। विनोबा का कहना है कि बंधु-संघ के लिये कम से कम नियम हों। मेले की बात मैं पसंद करता हूं। लेकिन सवाल यह है कि यह मेला कौन करायेगा? काम किस के जरिये होगा? मिलापी संघ करेगा या लोकसेवक संघ? लोकसेवक संघ की बात जाकिरसाहब ने इसीलिये छेड़ी है। कोई काम करनेवाली संस्था तो बनानी ही होगी। मुझे नियमों की चिंता नहीं है। प्रमाणित और अप्रमाणित खादी के झगड़े का भी डर नहीं है। जो लोग हमारी विचार-सरणी को मानकर इस नये संघ में शामिल होंगे, वे कुछ कम से कम नियमोंका तो पालन करेंगे ही। इसलिये वे मिलापी संघ के खिलाफ नहीं जावेंगे। मिलापी संघपर यह आपत्ति उठाई गई कि वह विकेंद्रीकरण के प्रतिकूल है। लेकिन विकेंद्रीकरण में भी जगह जगह रचनात्मक कार्य के स्थानीय केंद्र तो होंगे ही? उनके काम में मदद कौन पहुंचायेगा? उन्हें नये विचार और नई प्रेरणा किससे मिलेगी? देश भर में जगह जगह जो रचनात्मक काम करना है उसका आयोजन और प्रबंध कौन करेगा? यह सवाल केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण का नहीं है, बल्कि संगठित रूप से कार्य करनेका और अलग अलग केंद्रों में सामंजस्य स्थापित करनेका है।

नियम कम से कम हों

विनोबा—मेरी दरखास्त यह है कि सारे सवाल मुझही से न पूछे जायँ। हम सब लोग अपने अपने विचार कहें। मैंने जो कुछ कहा, अपने विचारोंकी सफाई के लिये कहा। मैं तो बंधुत्व संघ या भाई-चारा-संघ की बात कह रहा हूँ। इस संस्था के नियम कमसे कम हों। लेकिन साफ हों। मतलब, संख्यामें कम हों, लेकिन उनके मानी के विषय में कोई संदेह न रहे। ये नियम अच्छे से अच्छा मार्ग दर्शन करेंगे। किसी फ़तवादेनेवाली संस्था की जरूरत नहीं है। जो लोग कुछ कहना या सुझाना चाहते हों उनके लिये एक अखबार चलावें। या देश में जो हजारों अखबार चल रहे हैं, उनमें अपने अपने विचार लिखें। नियमों का अर्थ करनेका अधिकार किसीको नहीं दिया जाय। हरेक अपनी बुद्धि के मुताबिक नियमों का अर्थ करे।

प्रमाणित और अप्रमाणित खादी

मिलापीसंघ की बात दूसरी है। रचनात्मक कार्य के विषय में एक हदतक उसका मत प्रमाण माना जावेगा। लेकिन फिर भी प्रमाणित और अप्रमाणित खादी का सवाल हल नहीं होगा। शायद

काँग्रेस कल यह तय करले कि हमारे काम के लिये हाथ का कता हुआ और हाथ का बुना हुआ कपड़ा काफी है, हमें चरखा संघ के सिक्के की (मुहरकी) जरूरत नहीं है। चरखा संघ सिर्फ जीवन वेतनवाली खादीपरही अपनी मुहर लगावेगा। लेकिन काँग्रेस के लिये मिलापी संघ को सच्ची, हाथकी कती और हाथकी बुनी हुई खादी को भी प्रमाणपत्र देना पड़ेगा। इस तरह हम अपनी अड़चनें दूर कर सकते हैं। उसके लिये मिलापी संघ काफी है। मेरी यह स्पष्ट राय है कि हम लोकसेवा संघ बनाने के चक्करमें न पडें। काँग्रेसने अपनी तरफ से लोकसेवा संघ बनने की सचाई से कोशिश की। जैसा कुछ लोकसेवा संघ बन सकता था, वैसा बना। जैसा बापू चाहते थे वैसा नहीं बना, यह सच है। लेकिन अब हमें अलग लोकसेवा संघ नहीं बनाना चाहिये।

क्या यह काफ़ी होगा ?

अब रहा जाकिर साहब का सवाल। वे पूछते हैं कि जिस तरह का भाईचारा हम बनाना चाहते हैं, वह अपने में अच्छा होते हुए भी क्या काफी होगा ? इसको आपही सोचें। काँग्रेस रहेगी, हमारा मिलापी संघ रहेगा, काँग्रेसकी अलग अलग स्थानीय पंचायतें रहेंगी, उनकी सदस्यता की शर्तें भी होंगी। काँग्रेस की दृष्टि से शराबी और मिलका कपड़ा पहननेवाला एक समान होंगे। यह बहुत बड़ी बात है। रहा-सहा काम हमारे मेले से होगा। काँग्रेस है, मिलापी संघ है। अब इन दोनों के अलावा एक तीसरी संस्था की क्या जरूरत है ? मिलापी संघका विधान आप बनालें, लेकिन इस भाईचारेको ऐसाही रहने दें। मेलोंकी संख्या के बारेमें भी पूछा गया है। मेला एकही हो या एकही जगह हो, ऐसी कोई बात नहीं है। मेले चाहे जितने, अलग अलग जगहोंपर, हो सकते हैं।

दो तरह के सदस्य हों

ज़ाकिर साहब—विनोबाजीकी यह राय है कि लोकसेवक संघ के बारेमें काँग्रेसने जो किया है, वही काफी मान लिया जावे। लोकसेवक संघ अब अलग कायम न करनेकी जो सलाह है वह पुख्ता है। मेलोंकी तादाद के बारेमें जाजूजीने जो पूछा उसके जवाब से भी हमें तसल्ली होनी चाहिये। विनोबाजीने यह कहा कि मेले एकसे ज्यादा भी हो सकते हैं। और 'लोकल' याने स्थानीय मेले भी हो सकते हैं। अब एक और बात रह जाती है। आपके जो नियम होंगे, उनमें अगर अपरिग्रह का नियम होगा तो बहुत कम और बहुत अच्छे आदमीही आपके संघ में शामिल हो सकेंगे। यह तो गिने-चुने आदमियों की—मानो जो इस जमीन का नमक होंगे—उन्हींकी बिरादरी बनेगी। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इस बिरादरी में दो तरह के सदस्य हों ? एक वे जो कि कठिन नियमों का पालन कर सकते हैं और दूसरे वे जो कि उस तरफ बढ़ना चाहते हैं।

शंकरराव—अब तो हम संघ के रूप की चर्चा करने लगे। इस बात की चर्चा करके एक मसविदा बनाने के लिये कल हमने एक कमिटी मुकर्रर की थी। उस कमिटीने एक ढांचा बनाया है, जिसका जिक्र धोत्रेजीने शुरूमें किया। मेरी सूचना है कि पहले उसे पढ़कर सुनाया जाय।

मगनभाई देसाई—मेरे मनमें एक मुश्किल है। हम गांधी सेवा संघका पुनरुज्जीवन नहीं करना चाहते। हमें डर है कि गांधीका नाम लेने से साम्प्रदायिकता आ जायेगी।

छोटाव्रत और बड़ाव्रत

सिर्फ नाम दूर कर देने से हम संप्रदाय से नहीं बच सकते। जैसा कि अभी ज़ाकिर साहब ने कहा, हमारे भाईचारे में दो तरह के व्रत होंगे। एक छोटाव्रत और एक बड़ाव्रत। कुछ-कुछ महायान और हीनयानकी चाल पर। यह काफी डर रखने की बात है। सारे संप्रदायों की जड़ में इसी तरह की भावना काम करती है। हमारे रचनात्मक कार्य में राजनैतिक कार्य आ सकता है या नहीं, यह सवाल है। अब तक हम रचनात्मक कार्यों के रूप में ही अपने देश का राजद्वारी तंत्र चलाते आये हैं। पहले अंग्रेजों का राज था। राजनीति का उद्देश्य अपने देशपर कब्ज़ा पाना था। उसका तरीका रचनात्मक काम, सत्याग्रह, वगैरह था। विधायक काम करनेवालों की छोटी छोटी जमातें तो बन ही गईं। अब उसी सिलसिले को आगे चलाने में ख़तरा है। आज देश पर कब्जा हमारा है। सरकार भी हमारी है। इसलिये तेज का बिंदु सरकार है। उसको हमें सम्हालना है या नहीं ? आज हमारी भूमिका क्या है ? काँग्रेस ने सरकारें बनाई हैं, इसलिये वह राजनीति से अलग रहकर लोक-सेवक संघ नहीं बन सकी। लोक-सेवक संघ बनने की कोशिश में काँग्रेस ने जो कुछ किया है, उससे अधिक हम क्या चाहते हैं सो कह दें। एक अलग संघ बनाकर परिस्थिति में एक और उलझन पैदा न करें। लोक-सेवक संघ ही हमारा बंधु-संघ हो। दूसरा संघ बनावेंगे तो संप्रदाय की बू अवश्य आयगी।

काका चाहते हैं कि हम अहिंसक प्रतिकार की शक्ति बढ़ावें। विनोबा निष्क्रिय चिंतन और तपस्याकी बात कहते हैं। मैं दोनों को मानता हूं। जब अहिंसक प्रतिकार की शक्ति का विकास करने के लिये समय और साधनों की अनुकूलता हो तो वैसा प्रयत्न जरूर करें। लेकिन जब इस प्रकार की अनुकूलता न हो, तो शांत होकर किनारे बैठकर चिंतन करें और तपस्या करें। मैं इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं पाता। हम दूसरी संस्थाओं में रहकर भी ये दोनों बातें कर सकते हैं। मेरा इतना ही कहना है कि हम अपनी एक अलग चुनिंदा लोगों की जमात बनाकर एक संघ न बनावें। अलग संघ बनाने से हमारा एक सांप्रदायिक गिरोह बन जायगा।

व्यापक भूमिका की ज़रूरत

किसी एक जगह साल में एकबार या अनेकबार बड़े पैमाने पर मेला कराने में भी मुझे कोई आपत्ति नहीं। इस तरह का बड़ाभारी जमाव होने से कोई नुकसान नहीं होगा। लेकिन जगह जगह छोटे छोटे मेले होंगे तो एक संप्रदायसा बन जायगा। व्यापक भूमिका से हमारा नुकसान नहीं होगा, लेकिन छोटी भूमिका से हम लोगों में शास्त्रार्थ की प्रवृत्ति ही बढ़ेगी। इस प्रकार के शास्त्रार्थ से कोरा पांडित्य बढ़ेगा। नैतिक शक्ति या चारित्र्य-बल बढ़ने की बात दरकिनार रह जायगी। हमें शास्त्रार्थ और सांप्रदायिकता से बचकर विचारों के विकास की भूमिका पर आना है। विचारों के विकास के लिये,

विचारों का लेन देन होना चाहिये। विचार देने का काम शिक्षण है। हम शिक्षण के बारेमें सुस्त रहे। राष्ट्रीय शिक्षण की उपेक्षा ही की। इसलिये नये नये आदमी नहीं आते।

स्वराजनीति और रामराजनीति

जब गांधी सेवा संघ कायम किया तब भी यही बात थी। उस वक्त सत्याग्रहके विकासका सवाल था। सत्याग्रही शिक्षणकी तरफ हमने ध्यान नहीं दिया। देशने सत्याग्रहको एक शस्त्र के रूपमें अपनाया, लेकिन उसको सिद्धान्तके रूपमें माननेवालोंकी एक छोटीसी जमात रह गई। उस वक्त भी हमने कॉंग्रेस नहीं छोड़ी। देशकी राजनीति से अलग नहीं रहे। तब स्वराज्यका सवाल था, अब रामराजका सवाल है। सरकार भी एक बड़ी भारी संस्था है। हम उसकी तरफसे उदासीन नहीं रह सकते। या तो हम उसे हाथमें लेलें, या उसके विरोधक बनें। रामराज्य कायम करनेके लिये रचनात्मक काम करनेवालोंको कॉंग्रेसपर और सरकारपर अपना असर डालना होगा। नहीं तो अपनी अलग खिचड़ी पकानेवाली एक जमात बन जायगी।

विशिष्टता और अलगपन का भय

पच्चीस सालके अनुभवसे हमारी एक प्रकृति बन गई है। हमारी अपनी संस्थायें हैं। पैसा भी है। इसलिये हम अपने आपको दूसरोंसे कुछ अलग समझने लगे हैं। समाजवादी मित्रोंकी तरह हममें भी एक विशिष्टता की और अलगपन की भावना आगई है। इसी भावनामें से सांप्रदायिकताका आरंभ हुआ करता है। मेरी रायमें हमारे लिये सही रास्ता यही है कि हम अपनी कोई अलग जमात न बनाकर लोगोंको रामराजके मूलभूत सिद्धान्तों का सप्रयोग शिक्षण दें। सरकार कैसे चलावें, व्होट मांगने और देनेकी सच्ची रीति कौनसी है, रामराजका नागरिक किन गुणोंसे बनता है, आदि बातोंका शिक्षण लोगोंको दें, यही सच्चा काम है। इसमें अगर सरकारका सामना करना पड़े तो हमारा कोई कसूर नहीं होगा। लेकिन कुछ सख्त नियम और कठिन व्रत रखकर एक छोटीसी बिरादरी बनाकर अपना पृथक अस्तित्व न रखें। अब हमें सारे देशका सवाल हल करना है। अपना छोटासा फिरका बना लेना खतरनाक होगा।

शंकरराव—मैं फिर कहता हूं कि यह सारी चर्चा एक तरह से बेबुनियादसी हो रही है। हमारे सामने कोई प्रत्यक्ष वस्तु हो तो उसके आधार पर कुछ सुनियंत्रित चर्चा होगी। कल जो कमिटी बनी थी, उसकी मेहनतका भी कुछ सदुपयोग होगा। इसलिये मेरा सुझाव है कि कलकी कमिटीने जो एक रूपरेखा बनाई है, वह हमारे सामने रखी जाय।

दादा धर्माधिकारीने मसविदा समिति की बनाई हुई रूपरेखा पढ़कर सुनाई।

मुख्य व्यक्ति कौन हो ?

कमलनयन बजाज—कलकी और आजकी सारी चर्चा जहां आकर टकराती है, वह समस्या यह है कि मुख्य व्यक्ति कौन हो ? यह तो स्पष्ट है कि विनोबा ही हो सकते हैं। लेकिन उनका समावेश किसी संस्था में नहीं हो सकता। हम उन्हें बांध नहीं सकते। सत्य और अहिंसाको यदि हम निरपवाद

और विशुद्ध रखना चाहें, तो हम शरीर-धारण भी नहीं कर सकते। शुद्ध सत्य और शुद्ध अहिंसा निराकार है। शरीर-धारण के साथ वे साकार और मर्यादित हो जाते हैं। शरीर-धारण में थोड़ी-सी हिंसा अनिवार्य है। शुद्ध सत्य और अहिंसाका कोई संघ नहीं बन सकता। लेकिन अल्पतम हिंसाके डरसे भी हम संघ न बनावें, यह ठीक नहीं होगा। अनिवार्य हिंसा सहकर हम संघ क्यों न बनावें?

समूहशक्ति की विशेषता

संगठन के बिना अकेला व्यक्तिअपने जीवन में जितनी हिंसा करेगा, उतनी समूह में रहकर नहीं करेगा। समूह में रहकर हम एक दूसरें से बल पायेंगे। समूह-शक्ति की यही विशेषता है। विनोबा, किशोरलाल भाई जैसे जो व्यक्ति अकेले रहकर अपने भीतर सत्य और अहिंसा की शक्ति बढ़ा सकते हैं, उनके लिये संघकी जरूरत नहीं है। जो अकेला रहकर भी ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, आदि व्रतों का पालन करने का सामर्थ्य रखता हो, उसे संघकी आवश्यकता मालूम नहीं होगी। लेकिन जो लोग गांधीजी की बातों को विचारों से मानते हैं परंतु कर नहीं पाते, उनके लिये, मेरे ऐसे लोगों के लिये, संघकी जरूरत है। हम किसी समूह में रहेंगे, तो एक-दूसरे से शक्ति और प्रेरणा पायेंगे।

हमारी दरखास्त

इसलिये विनोबा, किशोरलाल भाई से मेरी दरख़ास्त है कि आपको हमारी आवश्यकता भलेही न हो, लेकिन हमको आपकी जरूरत है। देश भारी संकटमें पड़ा है, उसे उबारने के लिये आप जैसों की जरूरत है। आप हमेशा के लिये हमारे बंधनमें न पड़ना चाहें तो एक सीमा बांध दें, समयकी मर्यादा बतलावें, जिन शर्तों पर आप यह भार उठा सकते हैं वे शर्तें रखें। हम उनका विचार करेंगे। लेकिन सवाल यह है कि आज की हालतमें आप देश को पार लगावेंगे या नहीं?

सदस्यता

शंकरराव—विनोबा कल्से आज एकदम आगे बढ़े हैं। कल वे संघ बनाने की बात ही सुनने को तैयार नहीं थे। आज कमसे कम संघकी जरूरत तो महसूस करते हैं। इसमें कौन आ सकता है या नहीं आ सकता, यह सवालही नहीं है। जो समझता है कि मैं आ सकता हूं वह आ सकता है।

दादा धर्माधिकारी—जब आप सदस्यताकी कोई परख या बाहरी नियम नहीं रखते तो कौन सदस्य बन सकता है और कौन नहीं बन सकता, यह हरेक के ईमान पर छोड़ देते हैं। लेकिन जो लोग ईमानदार होंगे वे विनयशील भी होंगे। वे अपना नाम आपके पास भेजनेमें हिचकिचायेंगे। नतीजा यह होगा कि आपका रजिस्टर कोराही रहेगा। इस तरह विनोबाकी कल्की और आजकी भूमिकामें मैं ज्यादा फर्क नहीं देखता।

स्वामी आनंद—इतनाही नहीं विनोबाकी कल की और आज की भूमिका एकही है। भाषा में थोड़ा-बहुत फर्क भलेही जान पड़ता हो।

जे. सी. कुमारप्पा—इस तरह के ढीले-पोले संगठन से कुछ भी सिद्ध नहीं होगा। अधूरे दिलसे काम करने से कोई फायदा नहीं।

संगठन का सहारा ज़रूरी

माना कि संगठन में थोड़ी बहुत हिंसा आही जाती है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि संगठन से हिंसा बढ़ती है। समाज के कुछ अंग ऐसे होते हैं जिन्हें संगठन की जरूरत होती है। जिसे चलने के लिये लाठी के सहारे की जरूरत होती है, वह लंगड़ा होता है। वह अपने पैरोंपर खड़ा नहीं हो सकता। इसलिये लाठी के साथ परावलंबन आही जाता है, यह बात सच है। लेकिन बच्चे को सहारा देकर चलाने में हम उसे लंगड़ा नहीं बनाते; बल्कि चलाना सिखाते हैं। उसी तरह अहिंसा के लिये जो संगठन बनेगा, वह हमको अहिंसापर चलना सिखायगा। संगठन एक तरहका सहारा है। जिनको उसकी जरूरत हो उनके लिये संगठन बनाना चाहिये। जो लोग अपने व्यक्तित्व का संगठन कर रहे हैं, उनके लिये सामुदायिक प्रयत्न की आवश्यकता है।

ढीलेपन से अराजक बेहतर

सामुदायिक प्रयत्न सुव्यवस्थित और सुनियंत्रित होना चाहिये। इस तरह के ढीले-ढाले भाईचारे से तो मैं अराजकता पसंद करूंगा। शिथिल व्यवस्था से अनवस्था कहीं अच्छी है। मैं चाहता हूं कि हम जरा धरतीपर पैर रखकर बातें करें। अगर हम संगठन की जरूरत समझते हैं, तो हमको जिस तरह के संगठन की आवश्यकता है उसी तरह का संगठन बनाना चाहिये। (अंग्रेजी से)

ज़ाकिरसाहब—हमारे सामने सिर्फ एक ढीले-ढाले भाईचारे कीही बात नहीं है। तीन चीजें हैं। एक तो लोक-सेवक संघ यानी कॉंग्रेस, दूसरा मिलापी संघ और तीसरा यह भाईचारा।

राजनीति टहलनी जैसी

जे. सी. कुमारप्पा—हम पहली और दूसरी चीज को सम्हाल लें। तीसरी अपने आप बन जावेगी। बापू की यह मनशा थी कि राजनीति रचनात्मक कार्य की टहलनी बनेगी। रचनात्मक संस्थाओं में सरकार से बिना मांगे मदद पाने की सामर्थ्य होनी चाहिये। बापू चाहते थे कि कॉंग्रेस राजनीतिसे परहेज रखे। उनकी लोक-सेवक संघ की योजनामें राजनीति की भूमिका गौण है। उसका स्थान दोयम है। उसका उपयोग भी दूसरे दर्जे का है। बापू के जानेके बाद लोक-सेवक संघही हमारे लिये 'बापू' हो जाता है। वह जीवन के हर क्षेत्र में, यानी राजनीतिमें भी, हमारा मार्गदर्शन करता है। लेकिन हमसे सरकार बनाने को नहीं कहता। हम सत्ताकी अभिलाषा नही करेंगे। बल्कि सरकारको हम से ताकत मिलेगी। सरकार की सत्ता का स्रोत हमारी संस्था होगी लोक-सेवक संघ के कई महकमे होंगे। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक। हमारे रचनात्मक संघ इन्हीं विभागों में शामिल होंगे। (इस के बाद कुमारप्पाजीने अपनी योजना और सदस्यताकी प्रतिज्ञा-पत्र पढ़कर सुनायी।)

(अंग्रेजी से) (देखिये परिशिष्ट ३)

ज़ाकिर साहब—इस योजना में आपने एक बड़े संगठन की और विशेषज्ञों के कार्यकारी मंडल की कल्पना की है। लेकिन ज्यों ही आप एक बड़ा संघ बनाने जायेंगे, आप विशेषज्ञों की कार्यकारिणी नहीं बना सकते।

कृपलानी—आप 'फंकशनल कॅबिनेट' नहीं बना सकेंगे।

जे. सी. कुमारप्पा—आप पहले मेरी योजना पर विचार करें। हम इस कठिनाई का हल बाद में सोच लेंगे।

क्या हम संगठन चाहते हैं ?

पं० सुन्दरलाल—बापूकी चीज़ नीचेसे ऊपर आनेवाली थी। आपकी योजना में माहिरोंकी मंडली होगी। इसमें ज्यादा खतरा है। आप माहिरोंकी मंडली कायम नहीं रख सकेंगे। जहां चुनाव आया और चीज टूटी।

ज़ाकिर साहब—तो चुनाव की बात छोड़ दीजिये। अबतक बापू नामजद करते थे, अब मौजूदा संघोंमें से आप कार्यकारी मंडल नामजद कर दीजिये।

जे. सी. कुमारप्पा—मौजूदा संघ बेकार साबित हुए हैं। अब वे काम नहीं कर सकते। मैंने उनको दूसरी शकल में कायम रखा है। तफसील का विचार हम बाद में करते रहेंगे। पहले सिद्धान्त निश्चित कर लें।

प्रफुल्लबाबू—कलकी चर्चा में हमने करीब करीब यह तय कर लिया था कि एक संघ बनाया जाय। आज एक ऐसा संगठन सुझाया गया है, जो नहीं के बराबर होगा। वह इतना पतला और महीन होगा कि उसका पताही नहीं चलेगा। कुमारप्पाने एक संगीन और चुस्त संगठन की योजना पेश की है। हमें पहिले यह तय कर लेना चाहिये कि आखिर हमें संगठन चाहिये या नहीं चाहिये ? हरेक संस्थामें थोड़ीसी हिंसा होती ही है। मानवीय जीवन, हमारा केवल अस्तित्व भी, कुछ अंश में हिंसायुक्त ही है।

पं० सुन्दरलाल—विनोबाने जो सुझाव किया है वही बहुत कारगर है।

ज़ाकिर साहब—विनोबाजीने दो चीजें कही हैं। जो रचनात्मक संघ मौजूद हैं उनको ज्यादा कारगर बनाया जावे। उनकी ताकत बढ़ाने के लिये और आपस में संबंध कायम करने के लिये एक मिलापी संघ बनाया जावे। इसके सिवा विनोबाने एक भाईचारेकी नई तजवीज रखी है। जिसको वह नियमोंसे जकड़कर सख्त और सँकरा नहीं बनाना चाहते। इन दोनों तजवीजोंमें कोई टक्कर नहीं है। क्या इनके अलावा भी विनोबाकी और कोई तजवीज है ?

अण्णासाहब दास्ताने—हमारी चर्चा तो कोल्हूकी तरह गोल गोल चक्कर काटने लगी है। मैं कहता हूँ कि कल हम जहांतक पहुंच चुके हैं, उससे आज आगे बढ़ें। संघ की शकल की जो रूपरेखा कमिटीने हमारे सामने रखी है, उसकी चर्चा करें। चाहे तो उसमें कोई हेर-फेर करें। जहां जरूरत हो घटावें-बढ़ावें।

बापू की मिशन की पूर्ति

मंज़रअली सोख्ता— जबतक पूरी तस्वीर हमारे सामने न हो, तबतक चर्चा बेकार है। बुनियादी सवाल यह है कि महात्मा गांधी की जो 'मिशन' थी, उसको हम किस तरह पूरा करें। स्वराज हासिल करना उनकी मिशन थी। उनकी मनशा का स्वराज्य अबतक कायम नहीं हुआ है। हमें उनकी मिशन पूरी करनी है। जबतक वे मौजूद थे तबतक वे अपनी मिशनकी पूर्ति के लिये कदम बढ़ाते गये। एक एक कदम रखते गये। और हम उनकी मदद करते रहे। अब हमको अपने लिये सोचना होगा। इसके लिये किस तरह का संगठन उपयोगी हो सकता है, यह सोचनेकी चीज़ है।

राजेन्द्रबाबू—इन बातोंकी बहस हो चुकी है। और यह तय हुआ है कि एक संगठन बने। अब उसकी शक्ल क्या हो, यह सवाल हमारे सामने है।

मंज़रअली सोख्ता—मगर साथ साथ यह भी देखना होगा कि मौजूदा संस्थाओंमें से ऐसी कौन कौनसी संस्थायें हैं, जो अपने अपने ढंगसे गांधीजीकी मिशन पूरी कर रही हैं। क्या सरकार कर रही है? क्या काँग्रेस कर रही है? पहले हम अपना प्रोग्राम तय करें। तब इस बातका फैसला कर सकेंगे। पूरा चित्र हमारे सामने होना चाहिये। हम रचनात्मक काम किस इरादेसे करेंगे? अहिंसक प्रतिकार की तालीम कैसे देंगे? असेम्ब्लियोंमें जायेंगे तो किसलिये जायेंगे? ये सारे अमली सवाल हैं। इन सवालों को पहले सोच लीजिये, इनकी निस्बत अपना प्रोग्राम तय कर लीजिये। यह भी आज तय कीजिये कि उस प्रोग्राम का कितना हिस्सा हम फौरन पूरा करेंगे। तब आप अपने संघकी सूरत-शकल का नक्शा बना सकेंगे।

विनोबा—कल यह तय हुआ था कि पांच रचनात्मक संघोंका एक मिलापी संघ बने। और उसके अलावा एक नया भाईचारा-संघ बने। उस निर्णय को मानकर मैं आज आगे बढ़ा हूं। उस भाईचारे-संघ की शकल मेरे खयाल से क्या हो, यह मैंने आज आपके सामने रखा है।

शंकरराव—जिस तरह का भाईचारा-संघ विनोबा चाहते हैं, उसीकी रूपरेखा हमने बनाई है। उसपर आप विचार करें।

रामराज की बुनियाद के लिए विनोबा की योजना काफ़ी है

श्रीमनजी—क्या दोनों संघोंका समावेश एकही योजना में नहीं हो सकता?

किशोरलालभाई—मेरे खयाल से जो सबसे बड़ी व्यावहारिक चीज हो सकती है, वह विनोबाने रखी है। हमको रामराज्यकी स्थापना करनी है। याने एक अमन-शांतिमय समाज कायम करना है। रामराजकी रचना के हमारे बुनियादी सिद्धान्त क्या होंगे, इसके बारेमें मार्गदर्शन की जरूरत हो सकती है। हममें जो खास बड़े बड़े आदमी हैं, उनसे इस तरह का मार्गदर्शन हमको मिल सकता है। रामराजकी स्थापना के लिये हमको फिरके और धर्म तथा मजहब के झगड़े खतम करने हैं। इन

झगड़ोंको तोड़ने का सबसे अच्छा तरीका कौनसा हो सकता है, इसके बारेमें सलाहकी आवश्यकता रहेगी। उसी प्रकार आर्थिक रचना के हमारे बुनियादी उसूल क्या होंगे? विकेंद्रीकरण पर अमल किस पद्धति से किया जायगा? उत्पादन का नक्शा कैसा होगा? यंत्रीकरण का महत्त्व किस प्रकार से कम किया जायगा?—इन सारी बातों में मार्गदर्शन की गुंजाइश है। इस प्रकार सिद्धान्त और विचार के बारेमें मार्गदर्शन किया जा सकता है। हरेक गांव उन सिद्धान्तोंके मुताबिक अपना अपना छोटासा स्वराज चलावे। स्वराज चलाने में हर रोज़ जो अडचनें आवेंगी, जो सवाल पेश होंगे, उनके बारेमें गांव खुद सोचे। दिल्लीसे मार्गदर्शन पानेकी आशा न रखे। सिद्धान्त और विचार के बारेमें मार्गदर्शन उसे मिलता रहेगा। उसके लिये विनोबा की योजना काफ़ी है। विनोबाने संघका जो स्वरूप बतलाया उसका काम यह होगा कि हम सैद्धान्तिक या व्यावहारिक बातोंपर एक दूसरे को सलाह-मशविरा दें। नुक्ताचीनी भी करें; लेकिन कोई फ़तवा न निकालें।

विचार-दान करनेवाला संघ

सिद्धान्त और विचार देना एक काम है। और प्रत्यक्ष व्यावहारिक शिक्षण देना दूसरा काम है। ग्राम उद्योग, खादी आदि के विषयमें प्रत्यक्ष शिक्षण देकर काम कराने के लिये चरखा संघ आदि संस्थायें हैं। वे नये नये कार्यकर्ता तैयार करें। अपना एक मिलापी संघ बनाकर अपने कामों में एकता पैदा करें। लेकिन विनोबाने जो नया संघ बतलाया उसकी भूमिका दूसरी तरह की है। वह सैद्धान्तिक या व्यावहारिक पहलुओं के बारेमें, पूछनेपर या अपने आप भी, सलाह देगा। जरूरत होनेपर नुक्ताचीनी भी कर सकता है। लेकिन फ़तवा निकालना उसका काम नहीं होगा। विनोबा, जाजूजी, कुमारप्पाजी, काकासाहब, नायकमजी, किशोरलाल, अपने अपने विचार बतलावेंगे; लेकिन वे विचार किसी के लिये बंधनकारक नहीं होंगे। जिसकी मर्जी हो वह उन विचारों पर चलेगा। जिसकी मर्जी न हो, नहीं चलेगा। यह विचार-प्रदान करनेवाला संघ होगा। जो लोग इतना इतना माननेवाले हों, वे उसमें आ सकते हैं। इसके सिवा और कोई नियम नहीं होगा। जो नहीं आना चाहते वे बाहर रहेंगे - बापूकी की राय के बारेमें कृपलानी, विनोबा, काका की और मेरी अलग अलग रायें हो सकती हैं। वे हमारी अपनी अपनी रायें होंगी। उतनेमें से कोई बापूकी राय नहीं मानी जायगी। हममें से किसी की राय कोई माने या न माने, इससे हमें सरोकार नहीं। कार्यकर्ता अपनी अपनी जगह संघ बनावें। वहां वे एक एक या अनेक कार्य करें। यह जो नया भाईचारासंघ बनेगा, उसमें आने के लिये किसी पास की जरूरत नहीं रहेगी। जो लोग अमुक अमुक बातों में विश्वास करते हैं, वे चाहें तो अंदर आ सकते हैं।

सात लाख लोकसेवक संघ

कॉंग्रेस और लोकसेवक संघ की रचना में मूलभूत फ़र्क़ है। कॉंग्रेस बंबई में साठ-बासठ साल पहले बनी। धीरे धीरे फैली। कॉंग्रेस की कार्यकारिणी समिति या अखिल भारतीय समिति स्थानीय कमिटियों को बना सकती है और बिगाड़ सकती है। ये सब कमिटियां ऊपर से बनती हैं।

लोकसेवक संघ में ऊपर से कुछ नहीं बनाया जाता। सेवाग्राम का लोकसेवक संघ और नालवाडी का लोकसेवक संघ स्वतंत्र रह सकते हैं। वे दोनों चाहें तो मिलकर अपनी एक कमिटी बना सकते हैं। पांच संघ चाहें तो अपनी कमिटी बना सकते हैं। इस तरह देश में सात लाख लोकसेवक संघ या एक लाख लोकसेवक संघ बन सकते हैं। विनोबा की योजना के अनुसार जगह जगह इस तरह के लोकसेवक संघ बनने की गुंजाइश है। लेकिन कोई केंद्रीय संस्था बनाकर इस तरह के संघों का संचालन और नियंत्रण करने की बात नहीं है। यह चीज आज व्यावहारिक भी नहीं है।

हरेक अपना लीडर

हम अपनी सर्वसाधारण भूमिका के विषयमें सिद्धान्त और विचार दे सकते हैं। हमको यह तय कर लेना चाहिये कि हम किस तरह का समाज चाहते हैं। सिर्फ हिंदुओंका समाज चाहते हैं, जातपांत रखना चाहते हैं? या सबका एक समाज बनाना चाहते हैं? हम जिस तरह का समाज चाहते हों, उसी तरहके हमारे विचार और बुनियादी सिद्धान्त होंगे। ऐसे समाजकी रचनाके लिये उन सिद्धान्तों के अनुसार अपनी अपनी जगह कार्यकर्ता काम करेंगे। उसमें कभी कोई भूल होगी, तो जिसपर विश्वास होगा, उसकी बात मानेंगे। विनोबाका, जाजूजीका, काकाका, या कृपलानीका निर्णय मंजूर करेंगे। कभी इन सबकी राय एक होगी, कभी अलग अलग होगी। कार्यकर्ता अपनी अपनी श्रद्धाके अनुसार एक की या अनेकों की राय मानेंगे। हम अमुक एक आदमी को अपना लीडर नहीं बना सकते। विनोबा या कृपलानीजी अपनी खुशीसे बनने को तैयार हो जावें तो बात अलग है। लेकिन अपनी खुशीसे तैयार होने पर भी, उनकी कोई माने तभी वे लीडर हो सकते हैं। ऐसी हमारी स्थिति है। इस स्थिति में हरेक कार्यकर्ता अपनी अपनी जिम्मेवारी पर काम करे।—कुछ कुछ १९४२ की तरह। आज हरेक अपना लीडर है। हम एक संघ बनाकर बहुत तो हमारे क्या विचार हैं, इतना ही मोटे रूप में नमूद करें। चाहें तो प्रचार के लिये छोटीसी समिति बना लें। या हरेक अपने अपने ढंगसे स्वतंत्ररूपसे प्रचार करे।

जाजूजी की तजवीज अधिक व्यवहार्य

रचनात्मक संघोंके एकीकरण के बारे में जाजूजीने जो सिद्धान्त रखे हैं, वे ज्यादा व्यवहार्य हैं। मौजूदा संघोंको मिटाकर एक नया संघ बनाने से भाईचारा कायम नहीं होगा। अलग अलग शाखाओंमें पाकिस्तानी वृत्ति ज़ोर पकडेगी। हमारे यहां जिस प्रकार मुस्लिम वृत्ति और हिंदूवृत्ति में झगडा हो गया, उसी प्रकार अलग अलग काम करने वाली शाखायें झगडा करके अलग हो जावेंगी। इसलिये मौजूदा संघोंमें सहयोगकी वृत्ति पैदा करके उनका एकदूसरे से संबंध कायम करने की जाजूजीकी योजना अधिक श्रेयस्कर और व्यवहार्य है। कुमारप्पाजीकी योजनामें यह मान लिया गया है कि वर्तमान रचनात्मक संस्थायें मिट जायेंगी। लेकिन इसमें बहुत संदेह है। एक संस्थामें से अनेक संस्थायें बनने का डर ज्यादा है। इस दृष्टिसे जाजूजीकी तजवीजही अधिक व्यवहार्य है। सब संस्थाओं का एक अध्यक्ष और उपाध्यक्ष रहे और उन संस्थाओं को प्रांतिय स्वायत्तताकी तरह अपना अपना काम चलाने की आज़ादी रहे।

कमिटी के मसविदे की चर्चा

शंकरराव—विनोबा की योजना में और हमारी कमिटी की योजना में, दोनों में संघों की जरूरत तो मंजूर कर ही ली गई है। संघ के सदस्यों की स्थिति क्या होगी, इसके बारेमें फर्क है। जो बातें हम चाहते हैं, उन्हें हमनें अपनी बंधु-संघ की रूपरेखा में पेश किया है। संघ बनने पर उसका काम किस तरह से चलाया जावे, इसके बारेमें मतभेद हैं।

पं० सुंदरलाल—कार्य-संचालन के लिये कार्य-समिति की जरूरत को अगर आपकी योजना में से हटा दें, तो विनोबा की योजना बन जाती है।

शंकरराव—विनोबा की योजना में भी मेला, अखबार चलाना आदि बातें हैं। उनके इंतजाम के लिये कार्यसमिति की जरूरत तो फिर भी रहेगी। कमिटी की योजना में भी कार्य-समिति केवल व्यवस्था के लिये है।

(दादा धर्माधिकारी ने योजना का ढांचा दुबारा पढ़कर सुनाया।)

पं० सुंदरलाल—आपकी इस योजना में लाखों आदमी नहीं आ सकते। आप उनसे कई बातों में विश्वास करने की मांग करते हैं। इनमें कई बातें ऐसी हैं जिनमें हरेक का विश्वास नहीं हो सकता। आप आसान शब्दों में थोड़ीसी बातें रखेंगे, तभी यह चीज लाखों आदमियों के काम की होगी।

विचित्रबाबू—अगर आप कम से कम बातें रखेंगे तो भी उनको लोग पूर्णांशमें थोड़े ही बरत सकते हैं।

पं० सुंदरलालजी—यह तो माना, लेकिन इसमें कुछ बातें ऐसी हैं, जो नहीं होनी चाहिये। बापूजी के ऊंसूल ऊँचे हैं। उनके कार्यक्रम की सारी बातें मैं मंजूर नहीं कर सकता। मैं अपनेको पापी समझता हूं। मिसाल के तौरपर इसमें एक बात गोसेवा की भी है। इसके बारेमें मतभेद हो सकता है।

(योजनाकी भाषापर सुंदरलालजीने यह ऐतराज किया कि वह बहुत मुश्किल है। और उसमें संस्कृत शब्दोंकी भरमार है। रुपरेखा का आसान भाषामें तर्जुमा करने का जिम्मा उन्होंने लिया।)

जाजूजी—एक बात साफ कर देना चाहता हूं। मौजूदा रचनात्मक संस्थाओं के एकीकरण के बारेमें हम अपनी राय दें। लेकिन हमारा निर्णय उन संस्थाओं के लिये बंधनकारक नहीं हो सकता। रचनात्मक संघोंके प्रतिनिधि बैठकर जब फैसला करेंगे तभी उनके एकीकरण के विषय में निर्णय होगा।

(ग्यारह बजे चर्चा स्थगित।)

विषय-नियामक समिति की बैठक

ता० १२-३-'४८ तीसरे प्रहर चार बजे से

मसविदे की भाषा

ता० १२-३-'४८ को तीसरे पहर चार बजेसे फिर चर्चा का आरंभ हुआ। सब से पहले पं. सुंदरलालजीने कमिटीके ढांचे का आसान भाषा में तर्जुमा पढ़कर सुनाया। तर्जुमे में मूल ढांचेका अर्थ ज्यों-का-त्यों रखा गया था। इस वक्त की बैठक में मौलाना अबुल कलाम आझाद भी हाज़िर थे। उन्होंने ड्रॅफ्ट की भाषा में कुछ सुधार सुझाये, जो सुंदरलालजीने तुरन्त मंजूर कर लिये।

प्रफुल्लबाबू—मैंने दोनों ड्रॅफ्ट ध्यान से सुने हैं। भाषाकी दृष्टिसे भी मैं समझता हूँ पहला, कमिटीवाला, ड्रॅफ्ट ही ज्यादा अच्छा ड्रॅफ्ट है। हम लोग जैसी भाषा समझते हैं, वैसी उसमें है।

कारवाई का सारांश

(अब तक की कारवाई का खुलासा शंकररावजीने सुनाया।)

शंकरराव—अबतक की कारवाई का खुलासा मौ० साहब के लिये थोड़ेमें सुनाता हूं। इस संमेलन के सामने सवाल यह था कि गांधीजीके जीवन-सिद्धांत और उनके कार्यक्रम को माननेवाले अब आगे क्या करें? बापू के जीते-जी जो संमेलन होते थे उनका भी यही मकसद होता था। लेकिन उस वक्त के संमेलनों में हमको उनकी रहनुमाई का फायदा मिलता था। अब हमको अपने लिये सोचना है। काफ़ी बहस और चर्चा के बाद यह राय पक्की हुई कि गांधीजी के विचारोंको माननेवालों का एक संघ कायम किया जाय। गांधीजी के सिद्धान्तोंको माननेवाले और रचनात्मक कार्य करनेवाले लोग यहांपर इकठ्ठा हुए हैं। वे सब मिलकर इस नतीजेपर पहुँचे कि हमलोगोंका एक संघ बने। विनोबा ऐसा मानते हैं कि संघमें अहिंसा दूषित हो जाती है। अहिंसा की दृष्टिसे संघ का जो अधिक से अधिक निर्दोष स्वरूप हो सकता है, वह विनोबाने आज बतलाया। उसपर सबेरेसे विचार हो रहा है। संघ की शकल किस तरहकी हो, इसके बारेमें एक छोटीसी कमिटी मुकर्रर की गई थी। उसने एक ड्रॅफ्ट बनाया। उस ड्रॅफ्ट की भाषा सुंदरलालजी को कुछ अटपटीसी लगी। इसलिये उन्होंने उसका आसान भाषा में तर्जुमा किया, जो अभी आपको पढ़कर सुनाया गया। किशोरलालजी भी एक ड्रॅफ्ट लिखकर लानेवाले थे, वह भी आपके सामने आयेगा। यह संघ बनाने के बारेमें यहांतक बात पहुँची है। हमारा दूसरा सवाल चरखा संघ, ग्राम उद्योग संघ आदि के एकीकरण का है। उस संघ से यह बिलकुल अलग चीज है। मौजूदा रचनात्मक संघोंको मिलाने के बारेमें दो तरहकी तजवीजें हैं। एक जे. सी. कुमारप्पाजीकी, जिसमें यह कहा गया है कि मौजूदा संघोंको तोड़कर उनकी जगह एक नया संघ बनाया जाय, जो अलग अलग महकमे बनाकर सारे रचनात्मक काम करे। दूसरी तजवीज श्री जाजूजी की है जिसमें मौजूदा संघोंको बनाये रखकर उनका एक फेडरेशन बनाने की बात है। इन तजवीजोंपर बहस हो रही है। यह जो मिलापी संघ होगा इसकी चर्चा तो हम यहां करेंगे। लेकिन फैसला रचनात्मक संघों के नुमाइंदे बैठकर करेंगे।

(मौ० साहब के कहनेसे सुंदरलालजीने फिरसे अपना ड्रॅफ्ट पढ़कर सुनाया।)

बापू की जगह एक बीचकी कमिटी

मौ० साहब— तीस जनवरी से यह चीज बारबार मेरे सामने आ रही है कि जिन कामोंमें बापूने हाथ डाला था, उनकी असली जान बापूकी हस्ती थी। अब वह नहीं रहे। उनकी रूह मौजूद है। लेकिन जिस्म नहीं। अब हमें कोई ऐसा तरीका ईजाद करना है, कोई ऐसा ढंग अख्त्यार करना है, जिसमें बापूकी जिंदगी की जो दौलत है वह बरबाद न हो, बल्कि बढे। हमें कोई ऐसी तरकीब निकालनी चाहिये जिससे हम उनकी दौलत को बचाकर रखें। दूसरे संघोंका सवाल हम उनपर छोड़ दें। मौजूदा संघ आपसमें बैठकर सोच लें कि उनका काम मेल-मिलापसे आगे किस तरह बढ़ सकता है। लेकिन यह जो दूसरी चीज, एक नया संघ बनाने की, हमारे सामने आई है वह सबसे ज्यादा जरूरी है। बापूजी के रास्तेपर चलनेवालों के लिये बीच का जो बंधन था वह बापूकी हस्ती थी। उनके सबब से हमारा आपसमें एक-दूसरेसे ताल्लुक था। यह जो बीचका बंधन टूट गया है उसे कैसे जोड़ा जाय? एक छोटीसी बीचकी कमिटी बनाई जाय जो यह देखे कि मुख्तलिफ काम किस तरह चल रहे हैं। अब बापूके जैसी हस्ती हमें नहीं मिलेगी। उनकी जगह यह बीचकी कमिटी लेगी, जो आज अलग काम करनेवाले शख्सोंके लिये एक बंधनका काम करेगी। मौजूदा रचनात्मक संघों को मिलाने की बातका फैसला उन संघोंके मुख्त्यार करेंगे।

राजेन्द्रबाबू— मौलाना, इन बातोंपर गौर हो चुका है। एक नया भाईचारा कायम करने के बारेमें यह तय हुआ कि ऐसा भाईचारा बने। उसके रूपके बारेमें कमिटीने जो ड्रॅफ्ट बनाया, वह आपके सामने है। उसके निस्बत विनोबाजी कुछ खास खयालात रखते हैं, जो उन्होंने सबेरेकी बैठक में जाहिर किये। दूसरा सवाल मौजूदा रचनात्मक संघोंको इकट्ठा करनेका है। उसके बारेमें दो तजवीजें हैं। एक तो यह कि मौजूदा संघोंको बंद करके सारे कामोंके लिये एक नया संघ बनाया जावे। दूसरी यह कि इनको बंद न करके उनको मिलानेवाली एक बीचकी कमिटी बनाई जावे, जो खुद अलग रहकर भी इन संघोंमें मेल कायम कर सकेगी।

हमारे बीच बन्धन पैदा करनेवाला संगठन हो

मौ० साहब—मैं इस दूसरी राय का हूं। हम इन संघों को बंद न करें। उन सब को इकट्ठा करनेवाली एक बीच की कमिटी हो, जो इनसे अलग रह कर भी इन में जान डालती रहे। लेकिन असली चीज तो वह दूसरा संघ है, जिसकी चर्चा यहां हो रही है। वही इन सब कामों में जान डाल सकेगा। बापू की सबसे बड़ी देन इन्सान की ख़िदमत है। वह अपनी उम्रभर इन्सान में भाईचारा पैदा करने के लिये कोशिश करते रहे हैं। इसी भाईचारे के लिये दुनिया आज भूखी-प्यासी है। बापू के बहुत-से काम हैं। उन सब की तह में इन्सान की ख़िदमत की नीयत थी। बापू की याद में आप खादी का काम, तालीम का काम, दस्तकारियों का काम कितना ही क्यों न बढ़ावें, उनकी यादगार में कुछ भी क्यों न करें, आम इन्सान की ख़िदमत का खाना जबतक नहीं भरेंगे, तबतक हम

उनके रास्ते पर चलनेवाले नहीं होंगे। इन्सान इन्सान में मेलजोल और भाईचारा कायम करने की सख्त जरूरत है। इसलिये ये दोनों काम हम को करने चाहिये। मौजूदा रचनात्मक संस्थाओं को नजदीक लानेवाली एक बीच की चीज हो, जो तमाम संघों के कामों की निगरानी करे। दूसरी चीज़ सब के लिये है। इन्सान की खिदमत के बापूजी के जो उसूल थे, उनकी जो खास तदबीर थी, उसके लिये एक संगठन बनाना है। एक ऐसा संगठन जो हमारी रहनुमाई करे, हम को मशविरा दे, हमारे बीच में एक बंधन पैदा करे।

शंकरराव—मौजूदा रचनात्मक संघ काँग्रेस ने कायम किये हैं। उन के बारे में कोई फैसला करने से पहले शायद काँग्रेस से पूछ लेना जरूरी होगा। खुद उन संघों से भी पूछना पड़ेगा।

मौलाना साहब—यह तो ज़ाब्ते की बात हुई। हम को तो उसूल की बात सोचनी है। और काम बढ़ाने के तरीके की। खैर, पहले हम भाईचारा-संघ के रूप की चर्चा कर लें।

विनोबा की राय

पं० सुन्दरलालजी—दोनो ड्रॅफ्टों पर विनोबा की राय जानने की जरूरत है। अबतक जितनी तजवीजें आई हैं, वे सब उनके हाथ में देकर उन पर उनकी राय जान लेनी चाहिये।

प्रफुल्लबाबू—विनोबा का यह सुझाव है कि संघ के सदस्योंके पास कोई निजी संपत्ति न हो। और न संघ ही किसी तरह का द्रव्य-संचय करे। अगर ये शर्तें मंजूर की गईं तो संघ का काम ही किसी तरह चलेगा?

विनोबा—भाईचारा-संघ का जो ड्रॅफ्ट है, वह पूरा नहीं है। उसमें कुछ कुछ मोटी मोटी बुनियादी बातों का उल्लेख है। भाईचारा-संघ के बारेमें मेरा सुझाव ये हैं: —

(१) इसकी कोई फॉर्मल मेम्बरशिप, बाजाब्ता सदस्यता, नहीं होगी। जो अपने को सदस्य मानते हैं, वे सदस्य होंगे। हम उनका कोई इम्तहान नहीं लेंगे। हम जो उसूल जाहिर करेंगे, उनको माननेवाले सदस्य होंगे। वे चाहेंगे तो मेले में आजावेंगे। अपनी मर्जी से शामिल होनेवालों का यह संघ होगा। इस तरह के मेलों से हमारी ताकत ही बढ़ेगी।

(२) उसके पास पैसा न हो। इसके लाखों-करोड़ों मेंबर हो सकेंगे, जिनमें भाईचारे का रिश्ता होगा। हमारी योजना में पैसे की कोई जरूरत ही नहीं होनी चाहिये।

(३) यह कोई फतवा निकालनेवाला संघ न हो। देश के सामने जो सवाल हैं उनपर वह अपनी राय दे। दूसरों को सलाह भी दे सकता है। लेकिन उसकी सलाह या राय किसी के लिये बंधनकारक न हो।

(४) चौथी बात नाम के बारेमें। नाम का प्रश्न गौण है। फिर भी मुझे 'सत्याग्रह मंडल' वगैरा नामों की बनिस्बत 'सर्वोदय समाज' नाम अच्छा लगता है।

(५) पांचवीं बात अपरिग्रह की शर्त की है। हमने देखा है कि कई जबरदस्त परिग्रही व्यक्ति भी बापूजी के अनुयायी होने का दावा करते हैं। सत्य और अहिंसा के नामपर भारी से भारी परिग्रह रखते हैं और करते हैं। यह कुछ बात असंगतसी है। इसलिये मैंने सोचा कि अपरिग्रह की शर्त होनी चाहिये। जिसके पास परिग्रह है, वह अपने आपको उसका ट्रस्टी समझे और अब परिग्रह बढ़ाने की बात न सोचे।

रिश्ता जोड़नेवाली पतली लकीर

मौलाना साहब—जब आप कोई संघ बनाना चाहते हैं, तो उसकी कोई न कोई शकल तो होगी ही। उसका कुछ न कुछ आकार तो जरूर होगा। आप मेंबरशिप की कोई कसौटी नहीं रखेंगे, यह तो ठीक है। लेकिन जो हमारी चीजों को मानते हैं और उनका प्रचार भी करते हैं, उनमें कोई रिश्ता तो कायम करना ही होगा। यह रिश्ता, यह नाता, बतलानेवाली पतली से पतली लकीर तो रखनी ही चाहिये। आप नाम का लिखना भी नहीं चाहते। तब तो उसकी कोई शकल ही नहीं रहेगी।

राजेन्द्रबाबू—उनको मेले में मिलने का मौका मिलेगा। क्या इतना बंधन काफी नहीं है?

मौलाना साहब—नहीं। मेले का रूप कुछ और तरहका होता है। उसमें जमघट होता है। हम एक-दूसरे को जान भी नहीं पाते। किसी तरह की जिम्मेवारी महसूस नहीं करते। अपना अपना नाम लिखानेवाले पर एक तरह का बोझ आ जाता है। उसे ऐसा लगता है कि मैं दूसरों के साथ बँध गया हूं। इस तरह का कोई बंधन न हो तो वह एक बिखरी चीज हो जाती है। उसमें एक-दूसरे के साथ कोई लगाव पैदा नहीं होता।

विनोबा—इसीलिये तो मेले की योजना है।

दिवाकर—अगर कोई फेहरिश्त न रही, तो हमें यह पता कैसे चले कि फलाना फलाना इसमें है। कई लोग ऐसे भी होंगे जो हमारे सदस्य तो अपने आपको समझेंगे, लेकिन मेले में नहीं आ सकेंगे।

राजेन्द्रबाबू—हमारे जो सदस्य होंगे, उनके नाम हमारे अखबारमें या दूसरे अखबारोंमे समय समयपर आते रहेंगे।

रजिस्टर, फंड, दफ्तर, चाहिए

मौ० साहब—कहीं न कहीं नाम तो आया। यह बंधन तो हुआ कि मेरा नाम इस बिरादरी में है। मुझे यह बंधन चाहिये। इसलिये रजिस्टर का रखना ज़रूरी है। और फंड, दफ्तर, वगैरह भी रखनेकी ज़रूरत होगी। मेला कौन बुलायगा? मेलेका खर्च कैसे होगा? इसके लिये दफ्तर और पैसा भी चाहिये। जहां संगठन हुआ, कि फंड का सवाल किसी न किसी शकल में आही जाता है।

ठक्कर बाप्पा——मैं मौलाना साहब से सहमत हूं। बंधन के बिना संगठन हो ही नहीं सकता। मेरा मत है कि सदस्यताकी योग्यताकी शर्तें होनी ही चाहिये। नाम के बारेमें और सब नामोंकी अपेक्षा मैं 'गांधी सेवा संघ' नाम पसंद करता हूं। 'सर्वोदय संघ', 'लोक सेवक संघ' आदि नाम भ्रम पैदा करेंगे। पहले गांधी सेवा संघ नाम था। वह लोकप्रिय होगा। उसमें गलतफ़हमी की गुंजाइश नहीं है।

'जरायम पेशा'

इस ड्रॅफ्ट में जो रचनात्मक काम गिनाये गये हैं, उनमें से सोलहवें के बारेमें मुझे ऐतराज है। उसमें जरायमपेशा जातियोंका जिक्र है। वह 'आइटम' हटा दिया जावे। जरायमपेशा व्यक्ति होते हैं। कोई जरायमपेशा जाति है ही नहीं।

फंडकी ज़रूरत

तीसरी बात। फंड के बिना दुनियामें कोई काम नहीं चलता। ज़रूरत के लायक फंड रखना और जमा करना भी चाहिये।

तीनों योजनाओंका एक साथ विचार करें

कृपलानीजी—हम कल से चर्चा कर रहे हैं, लेकिन कदम आगे नहीं बढ़ रहा है। घूम फिरकर फिर उसी जगहपर आ जाते हैं। अभी हमने कुमारप्पा की योजना पर विचारही नहीं किया है। मैं समझता हूं कि हमारे सामने जो तीन योजनायें हैं, उन तीनोंका इकट्ठा विचार करें, तो किसी नतीजेपर पहुँचेंगे। नहीं तो कोई नतीजा नहीं निकलेगा। हमारे सामने कुमारप्पा की योजना है, जाजूजी की योजना है और यह ड्रॅफ्ट है। इन तीनोंको हम मिला दें। और एक संमिलित योजना बना लें।

कुछ ढीला-सा संगठन

यह जो भाईचारा-संघ की योजना है, उसमें एक लूस आर्गनाइज़ेशन की, ढीले संगठन की, कल्पना है। वह बहुत ज़रूरी है। किसी जमाने में हिंदु और मुसलमानों के बारेमें भी ऐसाही नियम बना दिया गया था। जो कहे मैं हिंदू वह हिंदू और जो कहे मैं मुसलमान वह मुसलमान। उसी तरह जो कहे मैं सत्य और अहिंसा में विश्वास करता हूं, वह हमारा सदस्य समझा जाय। हम उसके लिये कोई थर्मामिटर न लगायँ। ऐसा कोई नाप हमारे पास है भी नहीं। हमने यह देखा है कि दुनियामें अच्छे और बुरे इन्सान सभी तरह के लोगोंमें पाये जाते हैं। बहुत-से शराबी भी अच्छे होते हैं। और कभी गुस्सा न करनेवाले भी बाज़ दफ़ा खून कर डालते हैं। अच्छे आदमी किसी खास गिरोह या जमात में पाये जाते हों, ऐसी कोई बात नहीं। जो कहते हैं कि हम बापूजी के उसूलोंको मानते हैं, उनका एक ढीलासा संगठन बना लें। पुराने जमाने में हमारी काँग्रेस भी ऐसीही थी। सालमें एक दफा मिल लेना काफ़ी होगा। सिर्फ मिलना भी काफ़ी हो सकता है। यह कोई मिशनरी ब्रदरहुड नहीं है। एक 'लूस ब्रदरहुड' होगा। इसलिये हम विनोबा की बात मंजूर कर लें।

यह सारा इन्तजाम कौन करे ?

अब दूसरा सवाल यह है कि यह सारा इंतजाम कौन करे ? हमारी रचनात्मक संघों का जो एक फेडरेशन बनेगा वह करे, या तालीमी संघ करे, या फिर हम इस भाईचारा-संघ के लिये एक अलग अध्यक्ष या मंत्री मुकर्रर करें ? मेरी राय यह है कि जाजूजी की योजना के मुताबिक जो फेडरेशन बनेगा, वह रचनात्मक संस्थाओं का फेडरेशन भी एक चुस्त संस्था न हो। उसमें वह कड़ापन नहीं आना चाहिये, जो इन संस्थाओं के कामों में आगया है। इसलिये उसका कोई अध्यक्ष न बनाया जाय। एक मंत्री या संयोजक से काम चला लें, जैसा कि समाजवादी और साम्यवादी पार्टियां कर रही हैं। इन रचनात्मक संस्थाओं का आज जो रवैया है, उस में तब्दीली की जरूरत है। वे अपने अपने तंग दायरे में से बाहर नहीं निकलतीं। चरखा संघ, ग्रामउद्योग संघ, तालीमी संघ का आपस में कोई मेलजोल नहीं है। इनमें लचीलापन और प्रगतिशीलता लाने के लिये इनका फेडरेशन बनाने की जरूरत है, जो इनको एकमें बांधे। लेकिन उनमें किसी तरहकी 'रिजिडिटी,' -कट्टर पन- पैदा न होने दें।

इस तरह हम दो योजनाओंको मिला लेते हैं। भाईचारा-संघके लिये कोई अलग कार्यकारिणी, या मंत्री, या संयोजक मुकर्रर नहीं करते। सिर्फ मेले कराने का और रजिस्टर रखने का काम रहेगा। वह, हम रचनात्मक संघों के फेडरेशन को सौंप देते हैं।

कुमारप्पा की योजना

अब रही कुमारप्पा की योजना। इसको भी हम शामिल कर सकते हैं। हमें कोई न कोई कार्यक्रम तो अपने सामने रखना ही होगा। कुमारप्पा ने कार्यक्रम की एक तख्ती बनायी है। उन की टेबल में जो कार्यक्रम दिया है, उसे हम पूरा करें।

मैं कह चुका हूं कि हम कोई अखिल भारतीय मिशनरी समाज नहीं बना सकते। ईसाइयों की मिशनरी सोसाइटियों की तरह का, या रामकृष्ण मिशन की तरह का, मिशन हम नहीं बना सकते। उस के लिये जो सामान चाहिये वह हमारे पास नहीं है। कुमारप्पा के नक्शे में हर तरह के कार्यक्रम हैं। स्वास्थ्य के कार्यक्रम हैं, शिक्षण के हैं, रोगियों की शुश्रूषा के हैं। सभी तरह के हैं। उन कार्यक्रमों को पूरा करने के लिये देहातों में जहां तहां छोटे छोटे केंद्र बनें। ये केंद्र स्वतंत्र हों, स्वनियंत्रित, 'सेल्फ-रेग्युलेटिंग' हों। वहां के कार्यकर्ताओं में एक-दूसरे से प्रेम हो। वे सत्ता की राजनीति से दूर रहें। ये हमारी 'सेल्स' होंगी। इस तरह की सेल्स या केंद्र बढ़ते चले जावें। एक एक जिले में फैल जावें। फिर एक प्रांत में फैल जावें। तो हमारे जिले के केन्द्र और प्रांतीय केंद्र बन जावेंगे। उन की बुनियाद पर एक पुख्ता अखिल भारतीय संगठन बन सकेगा। लेकिन हम ऊपरसे एक संगठन बनाकर जगह जगह केंद्र कायम करें और फिर उन का नियंत्रण और देखभाल करने का जिम्मा अपने ऊपर लें, यह उलटा काम होगा। उस में भाईचारे के बदले बगावत और झगड़े होंगे।

हम बूढ़े और कठिन हो गये हैं

कोई सख्त और चुस्त संगठन बनाने की ताकत अब हममें नहीं है। हम खुद अब बूढ़े और सख्त हो गये हैं। हम बदल नहीं सकते। जबतक नया खून नहीं आयगा, तबतक कोई जानदार चीज बन नहीं सकेगी। इसी लिये हम एक ढीला संगठन बना लें। साल छह महीनेमें मेले या संमेलन हों। रचनात्मक संघोंका जो मिलापी संघ बनेगा, वह यह काम करे। यह मिलापी संघ सलाह-मशविरा दे। लेकिन हरेक केंद्र स्वतंत्र हो। उसके काम में किसी तरह से दखल न दिया जाय। शायद उन्हींमें से कोई 'जीनियस' या विभूति पैदा हो जाय। इस तरह छोटे छोटे संगठनोंमें से एक 'सूपर ऑर्गनाइज़ेशन', वरिष्ठ संगठन, पैदा होगा। आज नहीं हो सकता। आज -'को ऑर्डिनेशन', याने परस्पर संपर्क और सहयोग, अवश्य हो। इस तरह से मैंने कुमारप्पा, शंकरराव और जाजूजीकी योजनाओंमें 'को-ऑर्डिनेशन', याने सामंजस्य, सुझाया है। हम समन्वयका आरंभ यहीं से करें। इसको ठीक-ठाक रूप देनेके लिये एक छोटीसी कमिटी बनावें।

बापूका मिशन

मौ० साहब—बापूका मिशन इन्सान की खिदमत था। उस मिशन और उसूल को लेकर उनके माननेवाले अगर कोई चीज बनायँगे तो वह खुद-ब-खुद ऑलइंडियाही नहीं, बल्कि 'ऑलवर्ल्ड', हो जायगी। सिर्फ हिंदुस्थानकी ही नहीं, सारी दुनिया की हो जायगी। इस मानी में नहीं कि उसमें सारे सूबोंके या तमाम मुल्कों के आदमी होंगे। बल्कि इस मानी में कि यह चीज किसी खास जगह की या किसी खास हल्के की नहीं होगी। मेरी राय में चंद आदमियों की एक 'सेण्ट्रल बॉडी' (केंद्रीय संस्था) तो होनी चाहिये, जो फतवा नहीं निकालेगी। क्यों कि उससे सारा काम चौपट हो जायगा।

बापूकी स्मृति साकार हो या निराकार ?

मौ० सत्यनारायणजी—बापू के बाद उनकी हस्ती, या उनकी स्मृति कह लीजिये, साकार रूपमें रहे या निराकार रूपमें रहे, इस बात का विचार हम लोग कर रहे हैं। बापूने खुद साकार काम किया। उन्होंने अपने विचारोंको और भावोंको संस्थाओंका आकार दिया। इस वक्त जितने संघ या संस्थायें अलग अलग काम कर रही हैं, उनको अपने अपने ढंगसे काम करनेकी पूरी आज़ादी होनी चाहिये। वे जहां चाहें मिलकर भी काम करनेके लिये आज़ाद हैं। यहां उन संघों के सदस्य मौजूद हैं। वे अपने लिये आप निर्णय कर लें। यह बात हम उनपर छोड़ दें।

एक छोटी-सी समिति हो

यह जो दूसरा संघ हम बनाने जा रहे हैं, उसका मसविदा हमारे सामने है। असली बात यह है कि बापूके न रहने से जो खाई बन गई है, उसकी पूर्ति कैसे करें। बापू के अभावकी पूर्ति के लिये, बड़ी तादाद में आदमी लेकर, एक संस्था बनाकर, उसका रजिस्टर रखनेकी, सदस्यताकी, शर्तें रखनेकी, जरूरत

नहीं है। इस तरह हम एक डीलडौल में बड़े आकारवाली संस्था भलेही बनालें, लेकिन वह बापूका काम नहीं चला सकेगी। बापू हमारे लिये सलाह और मार्गदर्शनका काम करते थे। वह काम करनेवाली संस्था हमें चाहिये। इसके लिये मेरी सूचना यह है कि हम अपनेमें से जिनको श्रद्धेय और आदरणीय मानते हैं, ऐसे पंद्रह चुने हुये व्यक्तियोंकी एक छोटीसी कमिटी बना दें, जो हमारे लिये बापूकी जगह लेगी। बापू के काम कैसे आगे बढ़ाये जा सकते हैं, उनके मिशनकी पूर्ति किस तरह हो सकती है, आदि के बारेमें वे सोचें और सुझावें। फिलहाल एक साल के लिये पंद्रह लोगोंकी कमिटी हो। एक साल के बाद, अगर जरूरत हुई, तो उनकी संख्या बढ़ा दें।

मेले का स्वरूप

इस कमिटीके सुझावों के मुताबिक काम करनेवालों को साल-छह महीनेमें एक बार मिलनेका मौका मिले। इसलिये मेला जरूरी है। मेलेमें अमली तौरपर काम करनेवाले आवेंगे। अपने पिछले काम का ब्यौरा और तज़रबा एक दूसरे के सामने रखेंगे। दूसरोंके तज़रबेसे सीखेंगे और सबक लेंगे। सब मिलकर संसारकी हालत का विचार करेंगे। और सोचेंगे कि संसार के मसले बापूजी के तरीकों से किस तरह हल हो सकेंगे। ये पंद्रह आदमी वहां मौजूद होंगे, जो दिशासूचन और मार्गदर्शन करेंगे। वे कोई फ़तवा नहीं जारी करेंगे। लेकिन उनके शब्दोंमें वज़न होगा। कार्यकर्ता उनकी सलाह और मार्गदर्शन चाहेंगे।

पन्द्रह गिनेचुने आदमी

मुझे विश्वास है कि हममें से पंद्रह आदमी जरूर ऐसे निकलेंगे जिनकी बात सारा देश बिना हिचकिचाहटके मान लेगा। ये पंद्रह आदमी हमारी संस्थाओंका मार्गदर्शन करेंगे और हमारे कार्यकर्ताओंका भी। हम इस संमेलन में सिर्फ पंद्रह व्यक्तियोंकी यह एक कमिटी मुकर्रर कर दें। कोई नया सर्वोदय संघ, लोकसेवक संघ या गांधी संघ बनाया जावे या नहीं, इसका फैसला भी उसी कमिटीपर सौंप दें।

कृपलानीजी की योजना

कृपलानीजी——सत्यनारायणजी की यह बिलकुल नई योजना है। इससे पहले जाजूजी, कुमारप्पाजी और शंकररावजी की योजनाओंको इकट्ठा करनेवाली मेरी योजनाका विचार होना चाहिये। मेरी तजवीज 'सिन्थेटिक', सबको जोड़नेवाली, है।

राधाकृष्ण बजाज——कृपलानीजीकी व्यावहारिक सूचना क्या है? मौजूदा रचनात्मक संघोंके एकीकरण के बारेमें अबतक जो कोशिशें हुईं, उनका थोडासा हाल किशोरलाल भाई या विनोबा सुनावें, तो विचार करनेमें आसानी होगी।

किशोरलाल भाई——जो कोशिशें हुई उनके फलस्वरूप जाजूजी और कुमारप्पाजीने एकीकरण की दो अलग अलग योजनायें बनाई। कृपलानीजीकी योजनामें उन दोनोंका मिलाप है। उसमें जाजूजीका सिद्धान्त है और कार्यक्रम कुमारप्पाजी का है।

कृपलानीजी—हाँ। मेरे सुझाव का यही सार है। सारे रचनात्मक संघ अपने काम और क्षेत्र में स्वतंत्र हों। उन सब का एक 'फेडरेशन' या संयुक्त संघ हो। और यह जो संयुक्त संघ होगा वह कुमारप्पाजी का कार्यक्रम स्वीकार करे। और वही 'फेडरेटेड बॉडी' या संयुक्तसंघ नियत समय पर सर्वोदय समाज के मेलों का आयोजन और प्रबंध करे, उसका रजिस्टर रखे और उसके हिसाब-किताब सम्हाले। फेडरेशन का सिद्धान्त जाजूजी का, कार्यक्रम कुमारप्पा का, और उसी में शंकरराव के संघ के संचालन का प्रबंध। इस तरह मेरी योजना में तीनों की बात आजाती है। आप इस मिलापी तजवीज को मंजूर करें।

योजनाओं को मिलाना ठीक नहीं

कोंडा वेंकटपय्या—जिन दो बातों का हम विचार कर रहे हैं, उन को अलग अलग रखें। एक बात यह है कि कोई ऐसी संस्था या समिति हो जिस की सलाह महात्माजी को माननेवाले सब लोग ले सकें। दूसरी बात, आज बहुतसी संस्थायें मौजूद हैं; अब इन संस्थाओं को एकत्र होकर एक समग्र संस्था के रूप में काम करना चाहिये। मेरी राय में पहली और दूसरी चीज़ को मिलाना नहीं चाहिये। वह संस्था या समिति जो महात्माजी की जगह लेगी, बड़ी नहीं होनी चाहिये। वह एक छोटीसी समिति हो, जिस के लिये लोगों के दिल में श्रद्धा हो और जिस की बात कार्यकर्ता ध्यान और आदर से सुनें। यह संस्था महात्माजी की तरह हमारा मार्गदर्शन करेगी। वह उन की जगह तो नहीं ले सकती और न उन की कमी को पूरा कर सकती है। लेकिन आज की परिस्थिति में ऐसी संस्था उपयोगी साबित हो सकती है।

दूसरी संस्था जो श्री कुमारप्पा की योजना के अनुसार अलग अलग संघों का एकीकरण करेगी, वह एक फेडरेशन की तरह की होगी। अब तक विदेशी सरकार थी। रचनात्मक कामों में सहायता पहुँचाने की उम्मीद हम उस सरकार से नहीं कर सकते थे। अब हमारी सरकार है, इसलिये वह हमारे रचनात्मक कामों में सहायता करेगी। लेकिन संभव है कि सरकार की तरफ से हमारी आशा के अनुसार मदद न मिले। इसलिये एक ऐसी संस्था की जरूरत है, जो अलग अलग चलनेवाली रचनात्मक संस्थाओं में एक-सूत्रता कायम करे और उनका मार्गदर्शन करे। आज की सरकार भी यह सब करने में असमर्थ है। ये दो संस्थायें अलग अलग होनी चाहिये और उनका विचार हम को अलग अलग करना भी चाहिये।

(अंग्रेजी से)

राजेन्द्रबाबू—कृपलानीजीने इन दोनों योजनाओंको मिला देनेकी जो तजवीज पेश की है, उसपर अपने अपने विचार प्रकट करें।

दिवाकरजी—मेरी राय में अलग अलग संघों के एकीकरण की बात और है; उसपर विचार अवश्य हो। लेकिन दूसरी बात बिलकुल अलग तरह की है। गांधीजी के विचारोंको माननेवाले आदमी सब तरफ बिखरे हुए हैं और अपनी अपनी जगह अपनी अपनी मतिके अनुसार काम कर रहे हैं। उन सबको

इकट्ठा करनेवाली और एक सूत्रमें बाँधनेवाली किसी संस्थाकी ज़रूरत है। मैं समझता हूँ इन दो बातोंको मिलाया नहीं जा सकता।

जाजूजी की तजवीज़

कृपलानीजी---जाजूजी की तजवीज़में वह चीज़ है।

डा. जाकिर हुसैन---जाजूजी अपनी तजवीज़ बता दें तो ठीक होगा।

(जाजूजीने अपनी तजवीज़ पढ़कर सुनायी)

जाजूजी---अपनी योजना समझाते हुये श्री जाजूजीने कहा, "आज चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ, हिंदुस्तानी तालीमी संघ, अपने अपने दायरेमें अलग अलग काम कर रहे हैं। इन सबको मिलानेवाला एक संघ हो, जिसे आप सम्मिलित संघ कह सकते हैं। इस संघमें अलग अलग संस्थाओंके जितने प्रतिनिधि होंगे, उनके तिहाई या चौथाई सदस्य बाहरसे लिये जा सकते हैं।

सारी संस्था अधिक से अधिक पचहत्तर लोगोंकी हो--इससे कुछ कम या अधिक। बाहरके सदस्य भी तिहाई या चौथाई की जगह आधेतक लिये जा सकते हैं। आज शिकायत यह है कि हमारे रचनात्मक संघ अलग अलग काम करते हैं। वे मिलकर काम नहीं करते। इसलिये इन सबको मिलानेवाला एक संघ हो और उस संघ का एक अध्यक्ष रहे। सम्मिलितसंघके जो निर्णय होंगे उनपर अमल कराने की जिम्मेवारी अध्यक्ष पर होगी। यानी वह एक तरहका एक्जिक्यूटिव आफिसर होगा। सम्मिलितसंघके निर्णय सभी संघ अमलमें लायेंगे। जो निर्णय सब संघोंके लिये लागू होंगे, ऐसे सभी सामान्य निर्णय बहुमतसे किये जायँ। जो विशेष निर्णय किसी खास संघके लिये ही लागू हों, उनके लिये दो-तिहाई बहुमत का नियम हो। हरेक संघका मंत्री दूसरे संघकी कार्यकारिणीका सदस्य हो, जिससे इन संस्थाओं का एक-दूसरी के साथ सीधा संबंध रहे। यह सम्मिलित संघ के विषयकी बात हुई।

पंद्रह आदमियों की समिति बनाना मुश्किल

बापूकी जगह लेने के लिये पंद्रह सदस्यों की कमिटी बनाने की जो बात है, वह मुझे मुश्किल मालूम होती है। ऐसे पंद्रह आदमी मुकर्रर करना कोई आसान काम नहीं है। अिन पंद्रह आदमियोंको कौन चुनेगा और किसतरह चुनेगा? हमारे सामने कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं है। पंद्रह आदमी हम मुकर्रर भी कर दें, तो भी यह कौन कह सकता है कि अुनकी बात सब लोग मानेंगे। अधिकसे अधिक वे सलाह दे सकेंगे। अगर हम सब मिलकर विनोबाको ही मानलें, तो पंद्रह की भी जरूरत नहीं रहेगी। कुमारप्पाजी का कहना है कि हमको बड़े पैमाने पर काम करना चाहिये। कृपलानीजी चाहते हैं कि हम लोकसेवक संघके नमूने पर काम करें। लेकिन मेरी रायमें अुतनी ज्यादा ताकत आज हममें नहीं है। हम कलसे अिस प्रश्न की चर्चा कर रहे हैं। नतीजा यही निकाला है कि एक अमूर्त और ढीलासा संघ बने। लेकिन वह सम्मिलितसंघ से अलग तरहका होगा। सम्मिलितसंघ इस दूसरे संघके लिये अैलान निकालना, मेले बुलाना आदि काम कर सकता है।

तीन सवालोंपर राय बनावें

शंकरराव देव—हम घूम-फिरकर फिर उसी मुकामपर पहुँच जाते हैं, जहाँ से बहस शुरू हुई थी। इसलिये किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाते। कृपलानीजीने एक तजवीज हमारे सामने रखी है। उस को लेकर आगे चलें। गांधीजी के सिद्धान्तों को माननेवाले लाखों-करोडों आदमी हो सकते हैं। उन के सिद्धान्तों पर चलनेवालों की संख्या भी काफी बड़ी हो सकती है। ये लोग अपने अपने क्षेत्र में व्यक्तिगतरूप से काम कर रहे हैं। उन के लिये एक ढीले-से संगठन की योजना हम करना चाहते हैं। जो लोग किसी न किसी संघ के मातहत काम करते हैं, उन के लिये सम्मिलितसंघ काम दे सकता है। लेकिन जो किसी संघ में नहीं हैं, उनका संगठन भी तो होना चाहिये। कुमारप्पाजी ने जो ढाँचा बनाया है, उस काम को हम कहाँ तक हाथ में ले सकते हैं, इस में मुझे शक है! मेरी समझ में हम को तीन सवालोंपर अपनी पक्की राय बना लेनी चाहिये—एक, एक ऐसा संगठन बनाना जिसमें गांधीजी के विचारों को माननेवाले सभी व्यक्ति शामिल हो सकें। यह एक सामान्यसंघ हो। दो, मौजूदा रचनात्मक संघों में सहयोग और मेल कायम करने के लिये एक को-ऑर्डिनेटिंग बॉडी-सहयोग कारिणी संस्था, बने। तीन, आयंदा हमारा प्रोग्राम क्या हो?

कृपलानीजी—हमारे पास ये रचनात्मक संस्थायें हैं। ये आपसमें मेल करने के लिये अपना एक मिला-जुला संघ बना ही रही हैं। मैं कहता हूँ, उसीसे हम अपना काम ले लें। एक बनीबनायी चीज़से काम ले लेने में सहूलियत है। यह सब कैसे हो सकता है, असका विचार करने के लिये अेक छोटीसी कमिटी मुकर्रर कर दी जाय, तो हमारे सामने कुछ स्पष्ट सूचनायें आ सकती हैं।

असली प्रश्न कुछ जटिल-सा

जयप्रकाश नारायण—सुबहसे जो कुछ बहस सुनी उस से कुछ साफ़ नहीं हुआ। मेरी समझ में हमारे उद्देश्य भी स्पष्ट नहीं हैं। इसलिये कोई फैसला साफ़ नहीं हो रहा है। एक बात तो यह है कि पहले से जो संघ काम कर रहे हैं, उनका एकीकरण हो। यह ज़रूरी है। अगर बापूजी हममें होते तो वह अिन सबमें एकीकरण कराते। सभी संघ उनका मार्गदर्शन मानकर काम करते। उनकी जगह अब एकीकरण करनेवाला संघ होगा। इस तरह इस सवाल का हल कठिन नहीं है। बापूके बाद भी संघोंका एकीकरण कर लेना आसान है। मेरा मतलब यह है कि दूसरे सवाल के मुकाबले में यह सवाल छोटा है। दूसरा सवाल यह है कि बापूजीके आदर्शों और सिद्धान्तोंको माननेवाले किस तरह अिकठ्ठा हों। उनका कोई संगठन हो या न हो? असल में इस प्रश्न को हमें सोचना है। यह प्रश्न कुछ जटिल-सा है। इसके बारेमें हमने विनोबाजी तथा शंकररावजी से सुना। एक बात पर दोनोंने ज़ोर दिया कि जो लोग बापूजीके सिद्धान्तोंको मानते हैं और उनका आचरण करते हैं, उनमें कुछ परस्पर सम्पर्क रहे। कुछ मार्गदर्शन भी मिलता रहे। शंकररावजी संगठन भी चाहते हैं। विनोबाजी सिर्फ़ एक मेलेकी बात करते हैं। इसलिये बात कुछ स्पष्ट नहीं होती। हमारे सामने दो-तीन तजवीजें हैं।

इन सब तजवीजोंको मिलाकर एक सिंथेटिक प्रॉपोजिशन—समन्वयात्मक प्रस्ताव—बनायें बगैर काम नहीं चलेगा। आज जितने रचनात्मक संघ काम कर रहे हैं उनका एकीकरण तो करना ही चाहिये लेकिन ये संघ आज जितने हैं उतने ही रहें, यह कोई नहीं मानता। इन संघोंके सिवा भी और रचनात्मक काम हो रहे हैं, होने भी चाहिये। उन सबको एक बन्धनमें बांधनेके लिये एक संस्थाकी ज़रूरत है।

एक संगीन, ठोस और चुस्त संगठन चाहिए

लेकिन बापूजीके सिद्धान्तोंको माननेवाले व्यक्तियोंके लिये अगर एक दूसरा संघ बने, तो संघर्ष होगा। आये दिन इन दोनों संघोंमें मतभेद होंगे। इससे शक्तिका अपव्यय होगा और कार्यनाश होगा। विनोबाजीका सुझाया हुआ ढीलसा ब्रदरहुड या भाईचारा अपनेमें अच्छा है। लेकिन वह हमारे काम को बढ़ानेवाला औज़ार नहीं हो सकता। हमको नये नये लोगोंको इकट्ठा करना है। विनोबाजी कहते हैं कि संग्रह नहीं करना चाहिये। वह धनसंग्रह और साधन-संग्रहकी बात कह रहे हैं। लेकिन जन-संग्रह तो करनाही होगा। जबतक इसमें नये नये नवयुवक शामिल नहीं होंगे, तबतक इस काम में जान नहीं आयेगी। इसके लिये ढीले और लचीले संगठन से काम नहीं चलेगा। एक ठोस और चुस्त संगठन बनाना होगा। उसके काम के लिये बाकायदा धनसंग्रह करना होगा, साधन भी जुटाने होंगे। आज बहुतसे—एक्स्ट्रा गव्हर्नमेंटल—गैरसरकारी—काम लोगोंके द्वारा कराने हैं। ये काम आज दूसरे लोग अपने अपने ढंगसे करते हैं। हमको अपने सिद्धान्तोंके मुताबिक और अपने तरीकेसे इन कामोंको कराना है। एक संगीन संगठन के बिना यह कैसे हो सकता है? इस विषय में हमको निश्चित निर्णय कर लेना चाहिये। अगर हमारा यह इरादा है कि बापूजी के विचारोंको माननेवालोंकी तादाद बढ़ती रहे और देशमें उनके तरीके से काम हो, तो फिर यह वॉलंटरी और दुस-खुशीके और ढीलेढाले--संगठन की बात छोड़ देनी होगी।

कोई अधिकारी समिति हो ही नहीं सकती

तीसरी बात, महात्मा गांधीजीने जो कहा उसका मतलब लगाने के लिये पंद्रह अधिकारी व्यक्तियोंकी एक समिति बनानेंके बारेमें है। मेरी रायमें यह बात बेकार है। गांधीजीके विचारोंका मतलब लगानेका कुछ खास व्यक्तियोंको किस बिनापर अधिकार दिया जा सकता है? ऐसी कोई अधिकारी समिति हो ही नहीं सकती। गांधीजीके विचार सबकी सम्पत्ति हैं। उनका अर्थ लगानेका सबको समान अधिकार है। लोग अपनी अपनी शक्ति और वृत्तिके अनुसार अर्थ लगाते रहेंगे। उन्हें आप कैसे रोक सकते हैं?

दो आत्यन्तिक विचार

हम काम की बात सोचें। आज दो तरहके एक्स्ट्रीम—आत्यंतिक—विचार है। एक विचार तो यह है कि अब अपनी सरकार हो गयी है, इसलिये सब कुछ सरकारही करे। इस विचार में बहुत बड़ा

दोष है। कोई सरकार रचनात्मक संयोजन का कार्य पूरी तरह नहीं कर सकती। कुछ लोगोंको स्वतंत्र-रूपसे खोजबीन, फील्डवर्क और प्रयोग करने पड़ते हैं। ऐसे कुछ काम हैं जो सरकार के क्षेत्रसे बाहर के हैं। उन कामों में जनता को सक्रिय दिलचस्पी होनी चाहिये। गांधीजी की पद्धति के अनुसार जनताद्वारा काम करनेवालोंका एक व्यापक और मजबूत संगठन चाहिये। हरेक क्षेत्र में काम करनेवालों के लिये अध्ययन और शिक्षण का प्रबन्ध होना चाहिये। खोज और शोध की सुविधा होनी चाहिये। आज जो संगठन स्वतंत्ररूप से काम कर रहे हैं, उन सबको बांधनेवाले बापूजीके विचार होंगे।

तीन प्रश्न

मतलब यह है कि हमें इन तीनों प्रश्नोंको मिलाकर एक संयुक्त योजना बनानी चाहिये। ये तीन प्रश्न इस प्रकार हैं:--

एक, बापूजी के विचारोंको माननेवाले व्यक्तियोंको इकट्ठा करना और नये नये व्यक्तियोंको दाखिल करनेका आयोजन करना।

दो, बापूजी के विचारोंका अर्थ करना, उस सम्बन्ध में पूछे जानेवाले प्रश्नोंका उत्तर देना।

तीन, अपने अपने क्षेत्रमें काम करनेवाली रचनात्मक संस्थाओंका एक सम्मिलितसंघ बनाना।

आपकी हालत हनुमानजी जैसी

इनमें से दूसरे प्रश्नके बारेमें मैं कह चुका हूँ कि बापूजीके विचारोंका अर्थ लगानेवाली कोई अधिकारी समिति हो ही नहीं सकती। अब रहे दूसरे दो सवाल। इनके लिये दो अलग अलग संस्थायें बना देंगे, तो काम अधूरा रह जायेगा और शक्ति नष्ट होगी। मैं आप लोगोंसे कह देना चाहता हूँ कि आप लोग जो बापूजी के साथ काम करते अये हैं, उनमें अद्भुत शक्ति है। आप उसे जानते नहीं हैं। हम जानते हैं। आपकी हनुमानजी जैसी हालत है। आपकी शक्ति बहुत है। सिर्फ याद दिलानेकी जरूरत है। आप अपनी शक्तिका प्रयोग इस मौकेपर मज़बूती के साथ करें। मैं कृपलानीजीकी इस बातका समर्थन करूंगा कि हमारे सामने जो दो तजवीज़ें पेश हैं उनको मिलाकर एक नयी तजवीज़ पेश करनेके लिये एक छोटीसी कमिटी बना दी जाय, जो कल सवेरे अपनी रिपोर्ट पेश करे।

राजेन्द्रबाबू--अगर यह कमिटी आज रातको बैठे, तो कल सवेरे जवाहरलालजी के सामने हम अपना प्रस्ताव रख सकेंगे।

(कमिटी कायम हुई)

चर्चा स्थगित

उपसमिति की बैठक

ता. १२-३-'४८ की रातको आठ बजे

सदस्यता की शर्त

सबसे पहले शंकररावजीने प्रस्तावित संघके बारेमें चर्चा शुरू की।

शंकरराव—मैं चाहता हूँ कि इस संघ में ऐसे सब लोगोंका समावेश हो, जो गांधीजीके सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं। जो कोई यह कहे कि मैं गांधीजीके सिद्धान्तों को मानता हूँ, उसका इतना कह भर देना सदस्यता के लिये काफी है। हम और कोई शर्त या कसौटी नहीं रखना चाहते।

नाम क्या हो?

कृपलानीजी—नामके बारेमें मेरा यह खयाल है कि इसे लोक-सेवक संघ नहीं कहना चाहिये। हम या तो उसका नाम गांधीसेवा संघ रखें या सर्वोदय संघ।

'सर्वोदय' और 'संघ' शब्द

काकासाहब कालेलकर—'सर्वोदय' शब्द बापूका अपना खास शब्द है। उन्होंने रस्किन की 'अन टु दिस लास्ट' पढ़कर उसका अनुवाद किया। उस अनुवादका नाम उन्होंने 'सर्वोदय' रखा है। इसलिये 'सर्वोदय' शब्द बापूजी की विशेष भूमिकाका द्योतक है। लेकिन 'संघ' शब्द में वह बात नहीं है। उसमें सांप्रदायिकताकी बू है। बौद्ध सम्प्रदाय में एक खास मानी में 'संघ' शब्द आता है। इसलिये हम को 'संघ' शब्द से बचना चाहिये। आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघका जिक्र भी संक्षेप में 'संघ' शब्द से किया जाता है।

डाक्टर जाकिर हुसैन—पहले गांधी सेवा संघ था ही। वही नाम क्यों न ले लिया जाय? उसमें क्या हर्ज है?

जे. सी. कुमारप्पा—गांधी सेवा संघ नाम अच्छा नहीं है। उससे गांधीकी सेवा का भी मतलब निकल सकता है। मुझे गांधी शब्द से परहेज नहीं है। बल्कि वह शब्द अच्छा लगता है। इसलिये हम 'गांधी संघ' नाम रखें।

'सत्याग्रह' शब्द

जी. रामचंद्रन्—सर्वोदय शब्दकी तरह 'सत्याग्रह' शब्द भी बापूका खास शब्द है। सर्वोदय में उनके खास तरीकेका समावेश नहीं होता। इसलिये हम उसे 'सत्याग्रह संघ' या 'सत्याग्रह सभा' कहें।

कृपलानीजी—सर्वोदय शब्द लोगोंके परिचयका नहीं है। सत्याग्रह शब्द से लोग अच्छी तरह वाकिफ़ हैं। लेकिन संघ या सभा शब्द से 'मंडल' शब्द अधिक व्यापक है। संघ से एक सटे हुये संगठन की कल्पना होती है और सभा शब्द से व्यापक संगठन की कल्पना नहीं आती। इसलिये 'मंडल' शब्द अच्छा है।

(सर्वानुमतिसे 'सत्याग्रह मंडल' नाम मंजूर हुआ। इसके बाद उद्देश्य के बारेमें चर्चा शुरू हुई।)

उद्देश्य क्या हो ?

कृपलानीजी—सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तोंके अनुसार, यानी समानता और न्याय-बुद्धिकी बुनियादपर, समाजकी रचना करना इसका उद्देश्य हो।

शंकरराव देव—उसमें इस आशयका वाक्य जोड़ दिया जाय—'वर्गहीन और जातिहीन समाजकी रचना करना और उसके अनुकूल राजकीय, सामाजिक, आर्थिक वगैरह व्यवस्थाओंका निर्माण करना।'

रामचन्द्रन्—'वर्गहीन और जातिहीन' वाली बात जोड़ दी जाय।

किशोरलाल भाई—हमारा उद्देश्य Building a castless and non-exploiting society based on truth and non-violence, 'सत्य और अहिंसाकी बुनियादपर जातिहीन और शोषणहीन समाजका निर्माण करना, हो।

(यह सुझाव सर्व-सम्मतिसे मंजूर हुआ।)

परिग्रह के बारे में नियम

शंकरराव देव—जातिहीन समाजकी रचनाकी दृष्टिसे हमें हर सदस्यके लिये यह नियम बनाना पड़ेगा कि वह जात-पाँत को बिलकुल न माने। यह बात मुश्किल नहीं है। लेकिन शोषणहीन या वर्गहीन समाज के निर्माण के लिये हमें सम्पत्ति के बारे में कुछ नियम बनाना होगा। अिसीलिये विनोबाने कहा कि हमारे सदस्यों के लिये अपरिग्रह का नियम होना चाहिये। व्यक्तिगत सम्पत्ति—पर्सनल प्रॉपर्टी—तो रहेगी लेकिन प्रायवेट प्रॉपर्टी—निजी सम्पत्ति—नहीं रह सकती। व्यक्तिगत आचरणमें अपरिग्रहका प्रयोग ही वर्गहीन समाज के निर्माण का अहिंसक साधन हो सकता है। अिस लिये मेरी रायमें सदस्यताकी शर्तों में अपरिग्रहकी शर्त्त होनी चाहिये। ब्रह्मचर्य, स्पर्शभावना, खादी, शराब-बन्दी, सर्वधर्म-समभाव आदि बातोंका समावेश अहिंसाकी साधना में होता है। लेकिन इन सबको हम सदस्यताकी शर्त्त के रूपमें नहीं रख सकते। इसलिये हमें यह तय कर लेना चाहिये कि अिनमेंसे हम कौनसी बातें सदस्यता के लिये अनिवार्य समझते हैं।

चरखे का स्थान

आर्यनायकम्—बापूजीने चरखे को अहिंसा का प्रतीक माना था। वर्गहीन समाज के निर्माण के लिये हम को अपनी आर्थिक व्यवस्था बदलनी पड़ेगी। उस नयी व्यवस्था का साधन चरखा है। इसलिये कताई की शर्त्त तो ज़रूर होनी चाहिये।

कृपलानीजी—इस तरह तो किसी न किसी बहाने हमारे रचनात्मक कार्यक्रम की हरेक बात ज़रूरी साबित हो सकती है। अगर सदस्यता के लिये इस तरह की शर्त्तें रखी जायेंगी, तो हमारा संगठन अेक तंग संगठन होगा। फिर वह व्यापक और ढीला-ढाला नहीं रह सकेगा। कातने की शर्त्त तो रखना ही नहीं चाहिये।

खादी की शर्त

जाजूजी--तब तो आप खादी के बारे में भी यही अैतराज़ अुठायेंगे। मुझे केवल खादी से सन्तोष नहीं है। बिना कताअी के खादी अेक बेजान चीज़ हो जाती है।

कृपलानीजी-- इस विषय में मतभेद की गुंजाइश है। मैं और जाजूजी दोनों बापू के सिद्धान्तों को माननेवाले हैं। हमीं दोनों का इस मामले में अेकमत नहीं है। खादी के बारे में अुसके अिकॉनॉमिक-आर्थिक-पहलू का विचार मुख्य समझा जाना चाहिये। कार्य की विशालता और संगठन में ढीलापन रखना चाहें, तो सूत-कताई की शर्त नहीं रखी जा सकती। ऐसे बन्धन सिर्फ एक छोटे और चुस्त संगठन के लिये उपयुक्त हो सकते हैं। आपने जिस तरह के संगठन की कल्पना की है, उस में ऐसे निर्बंधों के लिये कोई स्थान नहीं है। हम लोगों ने खादी का इस्तेमाल गरीबों के लिये सहायक उद्योग की दृष्टि से किया था। आप अगर इतनी सख्ती से काम लेंगे, तो आप के संगठन में नवजीवन नहीं आयेगा। इसलिये हमें सदस्यता की कोई कडी शर्त नहीं रखनी चाहिये। जो कोई सत्य-अहिंसा, खादी, स्पर्शभावना, सर्वधर्म समभाव, आदि सिद्धान्तों को मानता हो, जिस का हमारे कार्यक्रम में विश्वास हो, और जो शराब जैसे किसी बड़े व्यसन के आधीन न हो, ऐसा कोई भी व्यक्ति हमारे इस संगठन में आ सकता है।

विनोबा की सूचना

आर्यनायकम्--इस में आपने विनोबा की मूलभूत वस्तु को छोड़ दिया है।

शंकरराव देव--हाँ। विनोबा ने और सब बातों की अपेक्षा अपरिग्रह पर ही जोर दिया था। सत्य-अहिंसा आदि सिद्धान्तों को मानना तो केवल विश्वास की बात है। इसमें कोई आचारात्मक शर्त नहीं आती। हमारी आज की परिस्थिति में आर्थिक क्रान्ति की दृष्टि से अपरिग्रह की आचारात्मक शर्त बहुत महत्त्व रखती है।

उसूल और कार्यक्रम पहले

ज़ाकिर साहब--विनोबाजीने जो बात कही वह बहुत ज़रूरी है। लेकिन इस मामलेमें मुश्किल यह है कि हम प्रापर्टीकी कोई हद या नाप नहीं बतला सकते। इसलिये मैं समझता हूँ कि पहले मंडलकी शक्ल के बारेमें तै कर लें। उस के बाद मेम्बरशिपकी शर्तें तै हो सकती हैं। मंडल के उसूल और प्रोग्राम का फैसला पहले कर लें। उसूल तो पहले से तैशुदा हैं। अब प्रोग्राम के एक एक आइटम को ले लीजिये।

कार्यक्रम की तफ़सील

शंकरराव--साम्प्रदायिक एकता, खादी, और दूसरे ग्रामोद्योग वगैरह ऐसी बाते हैं जिनके बारे में किसीका कोई मतभेद नहीं है। राष्ट्रभाषा, गोसेवा आदि कुछ बातों के बारेमें काफी मतभेद हैं। उनकी चर्चा हो सकती है।

कृपलानीजी—यहाँ तो नामसे ही झगड़ा शुरू हो जाता है। 'हिन्दी' और 'हिंदुस्तानी' दोनों शब्द छोड़कर हम सिर्फ राष्ट्रभाषा कहें। अरबी लिपि हमें बिलकुल मंजूर नहीं है। आप अपने हृदयपर हाथ रखकर खुद ही बतलाइये कि इस अरबी लिपिको लोकप्रिय बनाने में आप कितने सफल हुये हैं? मेरा यह भी सुझाव है कि हम अपने रचनात्मक कार्यक्रमका सिलसिला जे. सी. कुमारप्पाकी तजवीज के अनुसार बदल लें।

बुनियादी और मोटी बातें

शंकरराव देव—संघके स्वरूप के बारेमें पहले बुनियादी और मोटी मोटी बातें निश्चित कर लें। विधायक कार्यकी तफ़सील और अनुक्रमका विचार बादमें हो सकता है। पहले इस बातका निर्णय कर लें कि इस संघका स्वरूप क्या हो। बिलकुल अव्यक्त और अमूर्त हो? या उसके सदस्योंकी कोई फेहरिस्त होगी? उसका कोई दफ्तर होगा? कोई रजिस्टर रखा जायगा या नहीं? ये सारी बातें तफ़सील की नहीं हैं। संघके स्वरूपपर इनका असर होगा। जो इस संस्थाके सदस्य होंगे, उनके कर्तव्य और अधिकारोंके बारेमें भी क्या कोई नियम होंगे, या नहीं?

किशोरलाल भाई—सदस्यताके बारेमें हम बहुत निश्चित नियम बनानेकी कोशिश न करें। कहीं ऐसा न हो कि जो व्यक्ति संघके सदस्य बनें वे अपनेको दूसरोंसे कुछ अलग और ऊँचे समझने लगें। इस सम्बन्ध में गांधी सेवा संघका अनुभव ध्यान में लेना चाहिये। संघका नाम काफी एक्सप्लाइट किया गया, उससे नाजायज फायदा उठाया गया। लेकिन केवल सदस्योंकी नोंधके लिये एक रजिस्टर रखने में कोई हर्ज नहीं है।

(सर्वानुमतिसे रजिस्टर रखनेका सुझाव मंजूर हुआ)

धन-संग्रह

शंकरराव—अब इस बातका विचार कर लें कि इस संघका कोई कोष होगा या नहीं? वह धन इकट्ठा करके उसे सम्हालेगा या नहीं? अपरिग्रह की बात व्यक्तिगतरूपसे सदस्योंके लिये लागू करनेका सवाल अलहिदा है। अब हमें यह सोचना है कि क्या संघ भी अपरिग्रही होगा? या वह कुछ अर्थ संग्रह भी करेगा?

किशोरलाल भाई—यह मंडल कोई ज़ाहिर फंड इकट्ठा नहीं करेगा। लेकिन अपने कामके लायक पैसा रखेगा और खर्च करेगा।

प्रकाशन की योजना?

शंकरराव—मतलब यह है कि थोड़ा-बहुत हिसाब-किताब भी रखना पड़ेगा। अब सवाल यह है कि क्या यह मंडल अपनी तरफ़से गांधी-साहित्य का प्रकाशन और प्रचार करेगा?

कृपलानीजी और जे. सी. कुमारप्पा—मंडल अपनी तरफ़से एक मासिक पत्र या साप्ताहिक चला सकता है। इनके प्रकाशन और प्रचारकी जिम्मेवारी नवजीवन संस्था ले सकती है। उसको भी हमने अपनी रचनात्मक संस्थाओंमें से एक माना है।

कार्यकारिणी, दफ्तर इ०

शंकरराव—अब रही बात इसकी कार्यकारिणी समिति और दफ्तर वगैरह की। इसकी कार्य-कारिणी का क्या रूप होगा? उसका दफ्तर कहाँ रहेगा?

किशोरलाल भाई—इन बातोंके विषय में निश्चित योजना बनानेका काम श्री शंकरराव को सौंपा जाय। उन्हींको उसके संयोजक बनाकर यह मंडल बनाने की सारी जिम्मेवारी सौंप दी जाय।

कृपलानीजी—मैं कहता हूँ कि हमारे रचनात्मक संघोंकी जो एक सम्मिलित समिति बननेवाली है उसीको इस मंडलकी कार्यकारिणी मान लेनेमें क्या हानि है? इसमें हमारी तीनों योजनाओंका समन्वय हो जाता है, रचनात्मक संस्थाओंका एकीकरण हो जाता है, गांधी-विचार में विश्वास रखनेवालोंका एक फैला हुआ संगठन बन जाता है और मार्गदर्शनका काम भी हो सकता है।

मौजूदा रचनात्मक संघोंका एकीकरण

ज़ाकिर साहब--तब हमको यह देखना होगा कि मौजूदा संघोंमें से कौन कौन-से संघ इस को-आर्डिनेटिंग बॉडीमें आनेवाले हैं।

कृपलानीजी--पहले इनकी गिनती तो कर लें। फिर उनमें से कौन कौन-से संघ मिलकर एक संयुक्त संघ बनाना चाहते हैं, इसका विचार किया जाय। मौजूदा संघ ये हैं:—

(१) चरखा संघ, (२) ग्रामोद्योग संघ, (३) तालीमी संघ, (४) गोसेवा संघ, (५) हरिजनसेवक संघ, (६) हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, (७) हिन्दुस्तान मज़दूरसेवक संघ, (८) आदिवासीसेवा मंडल, (९) कस्तूरबा ट्रस्ट। अभी तो इतनेही याद आते हैं।

किशोरलाल भाई--हमें यह कहाँ मालूम है कि इनमें से सब एक नये सम्मिलित संघमें शरीक होनेके लिये तैयार हैं या नहीं? इसलिये फिलहाल हम पहले तीन संघोंको लेकर चलें। इनके एकीकरणकी योजना पहले सोचें।

जे. सी. कुमारप्पा--मेरी रायमें मौजूदा सभी संघोंको समेटकर एक संयुक्त संघमें विलीन कर देना चाहिये। इस संयुक्त संघके अलग अलग विभाग या महकमे होंगे। लेकिन एक काम के लिये एक अलग संघ नहीं होगा।

जाजूजी--कुमारप्पाजीकी और मेरी कल्पना में अंतर है। मैं समझता हूँ कि आज के सारे रचनात्मक संघोंको एक संस्थामें विलीन कर देनेका समय अबतक नहीं आया है। अधिक अच्छा यह होगा कि उन्हें स्वतंत्ररूपसे काम करने दिया जाय और उनमें सहयोग और एकीकरण की व्यवस्था हो। इन संघोंके एकीकरण का प्रश्न हमको उन्हींकी स्वयंप्रेरणापर छोड़ देना चाहिये। जो संघ एक होना चाहें, वे साथ बैठकर अपनी योजना तैयार करें। इनीशिएटिव (प्रेरणा) उनकी अपनी हो; हमारी नहीं।

ज़ाकिर साहब––लेकिन यह को-ऑर्डिनेटिंग कमिटी उस मंडलकी जगह नहीं ले सकती जिसकी चर्चा हम कर रहे हैं। और न यह भी समझा जाये कि हमारे जो आठ-दस रचनात्मक संघ हैं, उन्हींमें से ग्यारहवाँ यह भी एक होगा। और जैसे उनके नुमाइंदे को-ऑर्डिनेटिंग कमेटीमें होंगे, उसी तरह इस मंडलका भी नुमायिंदा उस कमेटीमें बैठेगा। यह जो मंडल बनेगा, उसका इस को-ऑर्डिनेटिंग कमेटी से कोई ऑरगैनिक रिलेशन न होगा।

शंकरराव देव––मैं समझता हूँ कि यही ठीक होगा। जो रचनात्मक संघोंके एकीकरणसे संयुक्त समिति बनेगी वह एक तरहका विशेषज्ञोंका मंडल होगा। उसकी एक स्वतंत्र उपयोगिता है। सत्याग्रह मंडल या सर्वोदय मंडल उसकी सलाह से लाभ उठा सकेगा।

कृपलानीजी––हमको कोऑर्डिनेशन पर जोर देना चाहिये। सम्मिलित संघकी कार्यकारिणी ही इस नये सर्वोदय मंडल या सत्याग्रह मंडलकी कार्यकारिणी होगी।

जे. सी. कुमारप्पा––मेरी भी यही राय है। इस सम्मिलित संघका विचार व्यापक दृष्टिसे करना चाहिये। उसमें सत्याग्रह मंडल तथा सम्मिलित संघ दोनोंके कार्योंका समावेश होना चाहिये।

किशोरलाल भाई––ठीक है। तो इस चर्चा के आधारपर कल की सभा के लिये एक मसौदा बना लिया जाय। एक बात के बारेमें तो सबकी राय एकही है कि इस मंडलका स्वरूप सलाह देनेवाली संस्थाका रहेगा। नियंत्रण करनेवाली संस्थाका नहीं। निर्देशक स्वरूप होगा। आज्ञापक नहीं।

(उपसमिति की बैठक समाप्त)

विषय-नियामक समिति की बैठक

ता. १३-३-'४८ के सवेरे आठ बजे से

उपसमिति की रिपोर्ट

सबसे पहले सभापति की आज्ञा से ता. १२–३–'४८ की रात को उपसमिति की जो बैठक हुई थी, उस की रिपोर्ट श्री दादा धर्माधिकारी ने पढ़ सुनायी।

दादा धर्माधिकारी—रात को समिति की बैठक में मोटेतौर पर जो बातें तै हुईं, उन के आधार पर यह मसौदा बनाया गया है:—

"गांधीजी के उसूलों को माननेवालों की एक बिरादरी कायम हो जो एक संगठन का रूप ले।

१. नाम—इस संगठन का नाम 'सर्वोदय समाज' या 'सत्याग्रह मंडल' हो। सत्याग्रह सभा, सत्याग्रह मंडल, लोकसेवक संघ, गांधी सेवा संघ, गांधी संघ, ये नाम भी सुझाये गये थे लेकिन चर्चा के बाद तै हुआ कि उक्त दो नामों में से एक पसंद किया जाय।

२. उद्देश्य या इरादा—सत्य और अहिंसा की बुनियाद पर एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश करना जिस में जात-पाँत न हो, और किसी को दूसरे को चूसने का मौका न मिले। (जातिहीन और शोषणहीन समाज का निर्माण करना।)

३. साधन—इस इरादे को पूरा करने के लिये नीचे लिखे उपाय या जरिये काम में लाये जायेंगे :–

१ सांप्रदायिक एकता या अलग अलग मजहबों को माननेवालों में मेल कायम करना।
२ अस्पृश्यता-निवारण (छुआ-छूत मिटाना)
३ जाति-भेद निराकरण (जात-पाँत तोड़ना)
४ नशाबन्दी
५ खादी और दूसरे ग्रामोद्योग (देहाती दस्तकारियाँ)
६ गाँव-सफाई
७ नई तालीम
८ स्त्रियों को पुरुषों की बराबरी के हक दिलाना
९ आरोग्य और स्वच्छता
१० प्रान्तीय भाषाओं की तरक्की तथा प्रान्तीय संकीर्णता का निराकरण
११ हिन्दुस्तानी का राष्ट्रभाषा के तौर पर प्रचार
१२ आर्थिक समानता
१३ खेती की तरक्की
१४ मजदूर-संगठन
१५ आदिमजाति सेवा
१६ विद्यार्थी-संगठन
१७ कुष्ठ रोगियों की सेवा
१८ संकट-निवारण और दुखियों की सेवा
१९ गो-सेवा
२० निसर्गोपचार
२१ इसी तरह के दूसरे काम

सूचना—इन का सिलसिला श्री कुमारप्पा के नक्शे के मुताबिक बदल लिया जाय।

४. सदस्यता या मेम्बरी की शर्त—जो शख्स सत्य-अहिंसा में भरोसा रखता हो, खादी पहनता हो, छुआ-छूत, जात-पाँत न मानता हो, शराब न पीता हो और सारे धर्मों को समान मानता हो, वह इस मंडल का सदस्य बन सकेगा।

५. रजिस्टर—जो कोई अपनी इच्छा से इत्तिला दे उसका नाम मेम्बरों के रजिस्टर में दाखिल कर लिया जाये। मेम्बरों के नामों और पतों का यह रजिस्टर मंडल के दफ्तर में रहेगा।

६. **अर्थ-संग्रह**--(पैसा इकट्ठा करना) यह मंडल अपने काम के लिये जरूरी पैसा इकट्ठा कर सकेगा और रख सकेगा।

७. **मेले**--मंडल मुकर्रर तारीख को मुकर्रर जगह पर मेले करायेगा।

८. **प्रचार**--मंडल अपने विचारों के प्रचार के लिये किताबें, पर्चे, पत्रिकायें, अखबार वगैरह, आवश्यकता के अनुसार छापेगा।

९ **मंत्री**--इस मंडल का काम चलाने के लिये एक मंत्री होगा। फिलहाल श्री शंकरराव देव को मंडल का मंत्री मुकर्रर किया जाता है। इस के विधान की रूपरेखा वे बना लें।

१० **स्वरूप**--इस मंडल की सूरत सलाह देनेवाली संस्था की होगी, नकि हुकूमत करनेवाली संस्था की।

(२) मिलापी कमेटी या सम्मिलित संघकी योजना

इस सम्बन्ध में काफी चर्चा करने के बाद उपसमितिने यह तै किया कि मौजूदा रचनात्मक संघ आपस में मेल कराने की एक योजना बना लें और एक सम्मिलित समिति या मिलापी कमेटी कायम करें। यह काम जितनी जल्दी हो सके, पूरा किया जाय। इसमें तीन महीने से ज्यादा वक्त किसी हालतमें न लगाया जाय। इस कामके लिये सारे संघोंके नुमाइंदों की बैठक बुलानेकी जिम्मेवारी श्री जे. सी. कुमारप्पाको सौंपी गयी।

(३) **कार्यक्रम**--इस सम्मिलित समितिसे सिफारिश है कि वह श्री कुमारप्पाकी तजवीजके मुताबिक रचनात्मक काम चलानेके लिये छोटे छोटे केन्द्र जगह जगह कायम करे। मिलापी कमेटीमें नीचे लिखी संस्थाएँ फिलहाल शामिल की जायँ:--

(१) चरखा संघ (२) ग्रामोद्योग संघ (३) तालीमी संघ (४) हरिजनसेवक संघ (५) गोसेवा संघ (६) हिन्दुस्तान मजदूरसेवक संघ (७) हिन्दुस्तानी प्रचार सभा (८) नवजीवन प्रकाशन मंदिर (९) आदिवासी सेवा मंडल (१०) कस्तूरबा ट्रस्ट। दूसरी रचनात्मक संस्थाएँ बादमें धीरे धीरे शामिल कर ली जायँ।

अलग अलग सुझाव

इस के बाद इस बातकी चर्चा हुई कि 'सत्याग्रह मंडल' का कामकाज चलानेके लिये कार्य-समितिकी शक्ल क्या हो? कृपलानीजीका सुझाव था कि रचनात्मक संघोंकी जो मिलीजुली कमेटी बनेगी उसी के सिपुर्द यह काम किया जाय। लेकिन यह बात मंजूर नहीं हुई। एक सुझाव यह भी पेश हुआ कि जिन संस्थाओंके प्रतिनिधि इस मिलापी कमेटीमें शामिल होंगे, उन संस्थाओंमें सत्याग्रह मंडल भी एक हो। इस सुझाव पर भी कोई फैसला नहीं हुआ। श्री ज़ाकिर साहब और शंकरराव देव का यह खयाल रहा कि रचनात्मक संस्थाओंमें मिलाप करनेका काम और सत्याग्रह मंडल कायम करनेका काम दोनों बिलकुल अलग

अलग चीजें हैं। इनको मिलाना ठीक नहीं। इन दोनोंमें सहयोग रहे। लेकिन दोनों अपने अपने ढंगसे स्वतंत्ररूपसे काम करते रहें। आखिर यही तै पाया गया और सत्याग्रह मंडलके संगठन की सारी ज़िम्मेवारी श्री शंकरराव देव को सौंपी गयी।

विनोबाका यह भी सुझाव था कि मंडलके सदस्यके पास कोई निजी जायदाद न हो। इसपर काफी चर्चा हुई लेकिन इसके बारेमें कोई हद या नाप बांध देना गैरमुमकिन समझा गया। इसलिये बात छोड़ दी गयी।

फुटकर संशोधन

राजेन्द्रबाबू— 'निसर्गोपचार' की जगह 'प्राकृतिक चिकित्सा' कहें। मालूम होता है, इस में 'मातृभाषा' या 'स्वभाषा' की जगह 'प्रान्तीय भाषा' कहा गया है। यह सुधार हमें जँचता है। पैसा न रखने की बात इस में से निकाल देनी पड़ी है। क्या आप लोगों की यह राय है कि ये दोनों प्रस्ताव सम्मेलन में पेश किये जायँ ?

धोत्रेजी-- अभी इस सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं हुआ है।

विनोबा की राय

दादा धर्माधिकारी—सवेरे उपसमिति के काम का ब्यौरा विनोबा को सुनाया था। उनका यह कहना है कि समिति की तजवीज़ में और उनकी राय में बुनियादी फ़र्क है। इस लिये किसी नतीजेपर पहुँचने से पहले हमें उनकी राय जान लेनी चाहिये।

मूलभूत मतभेद

विनोबा--जो मसौदा अभी पढ़ा गया इस में और मेरी कल्पना में मामूली मतभेद नहीं है। मूलभूत मतभेद है। मैंने सूचित किया था कि कोओी लिस्ट न रहे, इस में लाखों रहें। लेकिन इन की फेहरिश्त न बनायी जाय। फेहरिश्त बनाने से इस में ढोंगी भी आ सकते हैं। और कुछ अैसे लोग जो अपना नाम नहीं भेजेंगे वे, योग्य होने पर भी, लिस्ट में दर्ज नहीं रहेंगे। इस प्रकार मेरी योजना में और इस योजना में भारी फ़र्क है।

'लिस्ट' और 'टेस्ट'

अगर 'लिस्ट' हो तो 'टेस्ट' भी हो। बिना 'टेस्ट' के 'लिस्ट' कैसे बनेगी ? यह बुनियादी मतभेद है। मैं किसी की परीक्षा या इम्तहान नहीं लूँगा।

'सत्याग्रह' शब्द

दूसरा सवाल नाम का है। यह सवाल इतना बड़ा नहीं है। गांधी सेवा संघ कहें या सत्याग्रह मंडल कहें, इन में अंतर थोड़ा है। सत्याग्रह शब्द का व्यापक अर्थ यहाँ अभिप्रेत है। इसका रूढ़ या

प्रचलित अर्थ नहीं। लेकिन हम रूढ़ अर्थ को भूल भी नहीं सकते हैं। रचनात्मक कार्य का जो रूढ़ अर्थ है, उस से सत्याग्रह शब्द का अर्थ बिलकुल अलग है। हम अपनी संस्थाका नाम सत्याग्रह मंडल रखेंगे, तो लोग प्रचलित अर्थ में भी हम से सत्याग्रह की अपेक्षा रखेंगे।

अपरिग्रहमें विश्वव्यापी सम्पन्नता

तीसरा सवाल पैसे का है। मेरी कल्पना के अनुसार मेले आदि के लिये पैसे की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। मेले के समय जो थोडी-बहुत व्यवस्था करनी होगी, वह सम्मिलित संघ या मिलापी समिति कर लेगी। अिस देश के धार्मिक लोगों ने जो संघ चलाये या जो मेले कराये उन्हें पैसों की ज़रूरत नहीं पड़ी। जहाँ पैसा अिकट्ठा करने की बात आयी, वहाँ मामला बिगड़ जाता है। सिर्फ दफ्तर वगैरा का खर्च चलाने के लिये थोड़ासा पैसा आप जमा करना चाहें तो उसे मैं किसी तरह बर्दाश्त कर लूँगा। विरोध करने की ज़रूरत नहीं समझूँगा। मैंने जैसी संस्था की कल्पना की है, उसका स्वरूप तो विश्वव्यापी होगा। उस दृष्टि से, दुनिया में जितना पैसा है, वह सब हमारा अपना है। अिस तरह अपरिग्रह में विश्वव्यापी सम्पन्नता भरी पड़ी है।

अधिक संख्या का अर्थ अधिक बल नहीं

अब मिलापी संघकी बात लेता हूँ। मिलापी संघमें बापूकी बतायी हुअी पांच संस्थाओं से आरंभ किया जाय। सारी संस्थाओंको शुरू से लेनेमें मुश्किलें पैदा होंगी। सब के लिये समान तत्त्व का आधार खोजना आसान काम नहीं है। Highest common factor—महत्तम—बहुत कम होता है। पांच संस्थाओंके लिये आधारभूत सामान्य तत्त्व कायम करना भी मुश्किल है। धूलियाके काकासाहब बर्वे का पत्र आया है। महाराष्ट्रमें हरिजनसेवक संघ के काममें उन्हें कअी तरहकी कठिनाअियोंका सामना करना पड़ रहा है। हरेक संघकी अपनी खास दिक्कतें और अपनी खास समस्यायें हैं। हम एकदम बहुतसे संघोंको एक करनेकी जल्दी न करें। जितने अधिक संघ होंगे उतने ही अधिक प्रश्न और अधिक कठिनाइयाँ होंगी। अगर ऐसा हुआ तो संघोंकी संख्याके साथ बलकी अपेक्षा कमजोरी अधिक बढ़ेगी। और भेदभाव बढ़ सकता है। थोड़े में ये मेरे विचार हैं।

चुनाव में भाग न लें

दिवाकरजी—अेक बात और है। अगर इस नये संघ के सदस्य चुनाव में भाग लेंगे तो दिक्कतें खड़ी होंगी। इस संघकी हस्ती ही खतरेमें आ जायगी, इसलिये अेक ऐसी शर्त होनी चाहिये कि संघ और उसके सदस्य चुनाव में भाग न लें।

हरेक के विवेक पर छोड़ें

विनोबा—अगर हम इस संघको व्यापक और सर्वसंग्राहक बनाना चाहते हों तो इस तरहकी कोई शर्त रखना ठीक नहीं होगा। उसमें लाखों करोड़ों लोग आ नहीं सकेंगे। मैं तो यह शर्त भी

नहीं रखूंगा कि इसका सदस्य होनेवाला व्यक्ति शराबी न हो, व्यभिचारी न हो। यह उस मनुष्यकी सद्बुद्धिपर छोड़ दूँगा। हम सिर्फ मोटी मोटी बातें बतलायें। तफ़सील न कहें। सिर्फ इतना कहें कि जो गांधीकी बातोंको मानता हो वही इसमें आवे। अगर वह चुनावमें खड़ा होना चाहता है, गवर्नर बनना चाहता है, तो खुशीसे वैसा करे। यह बात उसके विवेक की है। हर हालतमें इलेक्शन से दूर रहना सत्याग्रहका उसूल नहीं है। हमारे संघका स्वरूप और कार्य ही ऐसा होना चाहिये जिससे देशभरके लोग अच्छी तरह समझ लें कि इसमें झगड़े के लिये गुंजाइश नहीं है। हिन्दू-मुसलमान या इस तरह के दूसरे भेदभावों के लिये इसमें जगह नहीं है। यह शर्तें लगानेकी बात नहीं है। एक वातावरण पैदा करनेकी शक्ति हममें होनी चाहिये।

दिवाकरजी—उस हालतमें कई सवाल खड़े हो जाते हैं। अगर यह संघ या उसके सदस्य राजनीतिमें हिस्सा लेंगे तो कॉंग्रेस के साथ इस संघका संघर्ष आयेगा। और फिर यह सवाल होगा कि सरकारोंके साथ हमारे इस संघका ताल्लुक किस तहरका हो।

हिन्दूधर्म की शकल की चीज़

शंकरराव—विनोबाजीकी कल्पना के अनुसार यह चीज़ बने तो वह इतनी बड़ी चीज़ बन जाती है कि उसमें कोई ताकद नहीं रहने पाती। इतने फैले हुये और विशाल संगठनमें से दोषोंको निकालना मुश्किल हो जाता है। इतनी बड़ी संस्थामें ढोंगी लोग भी आ सकते हैं। वह हिन्दू धर्मकी शकल की चीज़ बन जायेगी। हिंदू धर्म के सिद्धान्त बहुत ऊँचे हैं। लेकिन दंभ और पाखंड कहाँ कहाँ नहीं है, यह बतलाना मुश्किल है। इस तरहका शिथिल संगठन बनानेसे हमारा उद्देश्य सफल नहीं होगा।

मार्गदर्शक संस्था की जरूरत

बापूके देहावसानके बाद देश को आज ऐसे स्थानकी ज़रूरत है जिसकी तरफ़ लोग सलाहमशविरेके लिये और मार्गदर्शन के लिये देख सकें। सत्य और अहिंसा के प्रयोग में कार्यकर्ताओंके सामने जो जो कठिनाइयाँ और प्रश्न खड़े होंगे उनको हल करने के लिये उन्हें मार्गदर्शनकी ज़रूरत होगी। दुनियामें कोई एक जगह तो ऐसी हो जिसको वे मार्गदर्शन के लिये प्रमाण मान सकें। इस तरह की संस्था को कई बार समय समयपर विचार विनिमय के लिये मिलना होगा। कुंभ मेलेकी तरह एक बार मिलने से काम नहीं चलेगा। सर्वसाधारण के लिये इस तरहका मेला हम चाहें तो रख सकते हैं। लेकिन मार्गदर्शन के लिये एक ठोस संगठन चाहिये। और उसकी आवश्यकतानुसार बैठकें भी होनी चाहिये। अगर हरेक को अपनी अपनी जगह अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार ही काम करना हो तो आज के इस सम्मेलन की भी जरूरत क्या थी? चरखेके काम के लिये चरखा संघकी और दूसरे दूसरे कामोंके लिये दूसरे दूसरे संघोंकी ज़रूरत है, उसी प्रकार सत्य और अहिंसाके लिये भी इस मंडलकी ज़रूरत है।

अण्णासाहब दास्ताने—यह जो "मंडल" हम कायम करने जा रहे हैं, उस का मकसद क्या होगा, ठीक समझ में नहीं आ रहा है। सत्याग्रह मंडल का खास काम क्या होगा, इस का ठीक खुलासा

नहीं हो रहा है। अगर जगह जगह कार्यकर्ता भेज कर मार्गदर्शन करना है तो उस बात को पहले साफ कर दिया जाय। मैं समझता हूँ, इस संघ का यही मकसद हो सकता है। क्या मिलापी संघ और क्या सत्याग्रह मंडल, दोनों का मकसद एक ही है। यानी एक अहिंसक समाज की रचना करना। लेकिन दोनों का दायरा और स्वरूप अलग अलग होगा। दोनों अपने अपने दायरे में अलग अलग काम करते रहकर भी साथ साथ काम करेंगे। क्यों कि दोनों का कार्य एक दूसरे की पूर्ति करेगा। जो प्रत्यक्ष रचनात्मक कार्य कर रहे हों उन की मदद मिलापी संघ करे। यह बात भी निश्चितरूप से कह देनी चाहिये। सत्याग्रह मंडल नाम की एक मध्यवर्ती संस्था मार्गदर्शन का काम करे। यह दस पंद्रह व्यक्तियों की हो। ये किसी के द्वारा चुने नहीं जायेंगे।

आज की समस्याएँ

अप्पा पटवर्धन—संघ के निर्माण का विचार तो हम कर ही रहे हैं। साथ साथ आज हमारे सामने जो समस्याएँ पेश हैं उन का भी विचार करें तो संघ के स्वरूप के बारे में अधिक निश्चित कल्पना कर सकेंगे। हमें कौन से प्रश्न हल करने हैं, यह जब हमारे मन में स्पष्ट होगा तो संघ का नाम सदस्यता आदि के बारे में भी एक नक्शा हमारे मन में तैयार होगा।

राजेन्द्रबाबू—नाम और सदस्यता के बारे में अलग से चर्चा करनी पड़ेगी। आज तो सत्याग्रह के मानी लड़ने के हो गये हैं। इस लिये इस का नाम बदला जाय तो अच्छा है। किसी तरह के बन्धन के बिना संगठन की कल्पना भी करना मुश्किल है। संस्था को अगर काम करना है तो कुछ न कुछ बन्धन तो होना ही चाहिये। मेला एक अनिश्चित वस्तु है।

राजकुमारी अमृतकुँअर—रचनात्मक काम करनेवालों को रास्ता दिखाने से भी ज्यादा बड़ा काम हिंसावालों को अहिंसा के रास्तेपर लाने का काम है। जिस चीज के लिये बापू ने अपने प्राण दिये उस का ध्यान हमें रखना चाहिये।

विनोबा में श्रद्धा

किशोरलाल भाई—(अपनी योजना सुनाकर) इस मामले में विनोबा ही हमें किसी नतीजे पर पहुँचा सकते हैं। वरना हम चर्चा ही करते रहेंगे। विनोबा ने बापू के सिद्धान्तों को अधिक से अधिक समझा है, ऐसा हम मानते हैं। इस लिये विनोबा में हमारी जितनी श्रद्धा है उतनी और किसी में नहीं है। मैं शरीर से और स्थिरबुद्धि की दृष्टि से भी कमजोर हूँ। हम को विनोबा पर श्रद्धा रखकर ही चलना चाहिये। जैसा संगठन उन को मंजूर हो वैसा ही बनाना चाहिये। शंकरराव देव वगैरह का अलग संगठन भी बन सकता है। ऐसे सब संगठनों को इकट्ठा करने की शक्ति विनोबा रखते हैं।

दिवाकरजी—विनोबाजी संघ में ही विश्वास नहीं करते, तो फिर उन के जिम्मे यह काम कैसे दिया जाय?

सारा देश बापू का संघ

देवदास गांधी - हमारी समझ में तो विनोबा की ही बातें आती हैं। क्योंकि हम एक अलग संघ तो तब बनायेंगे जब हारकर बैठ जायेंगे। आज तो सारा देश बापू का संघ है। अगर हम संघ के नाम से एक छोटीसी जमात लेकर बैठ जायेंगे तो अनर्थ ही होगा और बापू की आत्मा को सन्तोष न होगा। मैं एक रैंक ऐंड फाइल की हैसियत से कहता हूँ कि मुझे किसी संघ की या बापू के नाम के छाप के किसी संगठन की जरूरत नहीं है।

मार्गदर्शक समिति

लेकिन मेरे सामने यह सवाल है कि अब बापू के बाद उन के कार्यक्रम और विचारों के बारे में मेरा मार्गदर्शन कौन कर सकता है। मैं जानना चाहता हूँ। इस सम्मेलन को इस सवाल का उत्तर देना चाहिये। एक मार्गदर्शक समिति की जरूरत मेरे जैसे लाखों आदमियों को मालूम होती है। एक मार्गदर्शक समिति अलग चीज है और बापू के नामपर एक संघ कायम कर लेना दूसरी चीज है। दूसरी बात में खतरा है। अलग अलग रचनात्मक संस्थाओं को एकत्र होकर काम करना चाहिये। यह तजवीज स्वतंत्र चाहिये। इस में कोई खतरा नहीं है। लेकिन मार्गदर्शन के लिये एक छोटी-सी समिति अलग कायम की जाय। यहाँ के सम्मेलन के परिणामस्वरूप राजेन्द्रबाबू, विनोबा, काका साहब, किशोरलाल भाई आदि की एक समिति बना दी जाय। उसका कोई विधान न हो। वे चाहें तो प्रान्तीय समितियाँ भी नियुक्त कर दें। गांधीवाद और गांधीजी के कार्यक्रम के बारे में मार्गदर्शन करने की जिम्मेवारी इन समितियों पर सौंप दी जाय।

(इतने में कृपलानीजी, काका वगैरह कुछ सदस्य जो एक शादी में गये थे, लौटे। और एक नया प्रश्न उठाया गया।)

प्रबन्ध के बारेमें शिकायत

कृपलानीजी—मैं आपका ध्यान एक बातकी तरफ़ दिलाना चाहता हूँ। कुछ लोगोंको यहाँके प्रबन्ध के बारेमें बड़ी शिकायत है। इसलिये उन्हें यहाँ आनेमें ऐतराज़ है। यहाँ पर वर्दी पहने हुये संगीनवाले पुलिस के लोग तैनात हैं। चारों तरफ़ कँटीले तार लगे हुये हैं। हम अहिंसक कहलाते हैं। सत्याग्रही होनेका दम भरते हैं। हमें इन चीज़ोंकी क्या ज़रूरत है? हमको किस बात से डर है? और अगर किसी के लिये इस तरहके अिन्तज़ामकी ज़रूरत ही हो, तो उसे तमीज़ के साथ करना चाहिये। ये तरीका बिलकुल भद्दा है। अगर हमें किसी मंदिरमें अिन्तज़ाम करने के लिये बुलाया जाय तो उसकी मर्यादा को सँभालकर हम इन्तजाम करेंगे। यह बापूजीका आश्रम था। यहाँकी एक परम्परा है—मर्यादा है। यहाँ जो इन्तज़ाम किया गया है उसमें कोई डीसेन्सी नहीं। कोअी शऊर नहीं। हमसे पूछकर इन्तज़ाम किया जाता तो हम उसमें मर्यादा और सभ्यता रखते। कँटीले तार लगा दिये, वे आँखोंमें चुभते हैं। कोई इस्थेटिक सेन्स--सुन्दरताका ख़याल--नहीं! आप हमारी तरफ़से कह दीजिये कि जिनको इस तरहका रक्षण चाहिये वे मेहेरबानी करके ऐसी परिषद में न आयें।

मंत्रीका खुलासा

धोत्रेजी—मैं कलसे यह चर्चा सुन रहा हूँ। मुझे खेद है कि ऐसी चर्चा यहाँ छेड़ी गयी। मैं कोई सफ़ाई देना नहीं चाहता। सिर्फ़ खुलासा करता हूँ। यहाँ जब पंडितजी और सरदार के आने की बात तै हुई तो हमने अपना प्रबन्ध अपनी तरह से कर लिया था। मगर सरकार का मत यह रहा कि इस ढंग का इन्तजाम संतोष-जनक नहीं हो सकेगा। गृह-मंत्री मिश्रजी यहाँ आये और उन्होंने अपनी पद्धतिका इन्तज़ाम किया। हमारे और उनके सोचने के तरीकेमें फ़र्क है। मैंने सबकी सलाह ली। आख़िर यही ठीक समझा गया कि सरकार को अपने तरीके से इन्तजाम करने देना चाहिये।

राधाकृष्ण बजाज—सरकारका जितना इन्तजाम है वह हमारे अहाते के बाहर है। हमारे अहाते के अन्दर कोई पुलिसवाला नहीं आ सकता।

जवाहरलालजी का आगमन

(इतनेमें पंडितजीका आगमन हुआ) समय ८-५० सुबह

धोत्रेजी—यहाँ जो लोग इकट्ठा हुअे हैं उनकी तरफ़से मैं पंडितजीका हार्दिक स्वागत करता हूँ। रचनात्मक कार्यकर्ताओंका व्यक्तिगत परिचय पंडितजीसे करानेका विचार था। लेकिन बादमें यह सोचा गया कि इस में काफी समय लग जायगा। जो रचनात्मक संस्थाएँ काम कर रही हैं उनकी जानकारी और कठिनाइयाँ थोड़े समयमें पंडितजीके सामने रख दी जायेंगी। इन कामोंमें सरकार और रचनात्मक कार्यकर्ता सहयोगसे किस तरह काम कर सकते हैं, यह हमारा आजका मुख्य सवाल है। हम पंडितजीसे इस विषय में और संसारकी आजकी परिस्थिति में रचनात्मक कार्यका उद्देश्य क्या हो, उसका स्वरूप कैसा हो, इस विषयमें सूचना और मार्गदर्शन चाहते हैं। सबसे पहले चरखा संघके बारेमें जाजूजी कहेंगे।

खादी की बात

जाजूजी—(अ. भा. चरखा संघ) पंडितजी कांग्रेस और हिन्द सरकार दोनोंके मुख्य अधिकारी हैं। खादी के बारेमें आपसे कुछ अधिक कहनेकी ज़रूरत नहीं है। चंद मिनिटोंमें मैं अपनी बात खत्म कर दूँगा। आप चरखा संघ के दफ्तरमें ही बैठे हुअे हैं। बापू जो बातें कहा करते थे, उनमें उन्होंने खादीकी बात बार बार जोर देकर कही। लेकिन खादीका विषय लोगोंको कुछ रूखा और अप्रिय-सा लगता है। वे कहते हैं, इसमें सुनने लायक क्या है? कारण, खादीके कामको आगे बढ़ाने के लिये जो कुछ करना चाहिये वह करनेकी तैयार नहीं है। सब जानते हैं कि मिलके कपड़े का बोलबाला रहते हुअे खादी पनप नहीं सकती। अब खादीका काम इस मंजिलपर आ पहुँचा है कि सिर्फ खादी पहनने से काम नहीं चलेगा। अब कातना भी होगा। वस्त्र-स्वावलंबन की योजनाके बिना खादीका कदम नहीं बढ़ सकता। इसी दृष्टिसे खादीके बदले सूत देनेकी शर्त लगानी पड़ी। लोगोंको वह खटकी, खादी धारी भी नाराज हुअे। उनको खादीके प्रति कुछ अरुचिसी हो गयी। वे समझे कि चरखा

संघवालोंने अपने मन की बात लोगोंपर लाद दी। दरअसल ऐसी बात नहीं है। खादी बापूकी सबसे प्रिय चीज है। चरखासंघवाले अपनी मर्जीसे उसे बिगाड़ नहीं सकते थे। काफी गहरा विचार करके वे इस निर्णयपर पहुँचे। अगर खादीको जिन्दा रहना है तो सूतकी शर्त्त आवश्यक है। इस शर्त्तके कारण लोग नाराज न हों।

दूसरा सवाल कॉंग्रेस और खादीके सम्बन्धका है। कॉंग्रेस के नये विधानमें 'इफेक्टिव मेम्बर्स' के लिये आदतन् खादी पहननेकी शर्त्त है। बापूने लोकसेवक संघके लिये जो मसौदा बनाया था, उसमें सदस्यताकी शर्त्त अपने कते हुये सूतकी खादीकी या प्रमाणित खादीकी थी। लेकिन वह बात कॉंग्रेस ने नहीं ली है। मुझे भय है कि अब प्रमाणित और अप्रमाणित का भेद ही शायद न रह सकेगा। क्योंकि खादीके पीछे जो दृष्टि थी उसको शायद हम छोड़ते चले जा रहे हैं।

बापूने खादीको अहिंसक समाज का साधन समझा था। इसलिये चरखेको सर्वोदय समाज के प्रतीकके रूपमें उन्होंने राष्ट्रीय झंडेपर स्थान दिया। हमारा जो राष्ट्रीय झंडा है, उसमें चरखेकी जगह चक्र आया। चक्रको चरखेका ही एक अंश बतलाया गया। कहा गया कि कलाकी दृष्टिसे चरखा ठीक नहीं बैठता। लेकिन झंडेके लिये खादीका ही कपड़ा चाहिये, ऐसी कोई शर्त्त नहीं रखी गयी। मिलके कपड़ेपर लाखों झंडे बने। विधानपरिषद के अध्यक्षने खादीके कपड़ेकी सलाह दी। लेकिन उसे अनिवार्य शर्त्त नहीं बतलाया। हमारा यह सुझाव है कि अगर हम खादीके सिध्दान्त को मानते हैं, तो झंडेके लिये खादीकी शर्त्त जरूरी होनी चाहिये।

तीसरी बात, हमारी शालाओंमें प्राथमिक और मिडिलतक कताई आवश्यक कर दी जावे। शिक्षण-शास्त्रकी दृष्टिसे भी सब लोग दस्तकारी का शिक्षण आवश्यक मानते हैं। बुनियादी तालीम इससे भी आगे बढ़कर दस्तकारीके द्वारा शिक्षण देनेके उसूल को मानती है। उनका अनुभव यह है कि कताईकी दस्तकारी जितनी आसान है उतनी और कोई नहीं है। इस बात में अगर प्रान्तीय सरकारें ढिलाई करें तो हिन्दुस्तान सरकार उनसे सिफारिश करे, उन्हें हिदायत दे, या हस्तक्षेप भी करे। उसमें अधिक खर्चका सवाल नहीं है। एक बार सरंजाम का खर्च करनेसे काम चल सकता है। इससे बुनियादी शिक्षण शुरू करनेमें भी सहूलियत होगी। जिनका अधिकार है वह यह कह दें कि पांच वर्ष में सब शालाओंमें कताई का आरंभ हो ही जाना चाहिये।

धोत्रेजी—संक्षेपमें जाजूजीने अपनी बातें पंडितजीके सामने रख दी हैं। हमने सुना है कि आप खादीके बारेमें आग्रह रखते हैं। लेकिन कताईकी आवश्यकता के बारेमें आपकी राय हमलोग जानना चाहते हैं।

राजेन्द्रबाबू—और भी संस्थाओंकी तरफसे जो बातें कहनी हैं, वे पहले कह दी जायँ। उसके बाद पंडितजी हर सवालके बारेमें जो कहना हो, कहेंगे।

धोत्रेजी—काका साहब हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की तरफसे कहेंगे।

हिन्दुस्तानी की बात

काकासाहब कालेलकर—(हिदुस्तानी प्रचार सभा) हिन्दुस्तानी के बारेमें दो-एक खास बातें कहनी हैं। कांग्रेसके लिये बापूने एक नया विधान बनाया था। उसके साथ उन्होंने उन संस्थाओंकी एक फेहरिस्त भी दी, जिनको मान्यता देनेकी उन्होंने काँग्रेस से सिफारिश की थी। उस फेहरिस्तमें से हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का नाम छूट गया था। बापू जानबूझकर तो उसे छोड़ नहीं सकते थे। वह ग़लती से रह गया होगा।

प्यारेलाल— बापूने उसे रखा था। बादमें न मालूम वह कैसे निकल गया।

काकासाहब— जो हो। हमारी यह अर्ज है कि हिन्दुस्तानी प्रचार सभा को भी कांग्रेस मान्यता दे। इसका मतलब कुछ गहरा है। कांग्रेसका दफ्तर हिन्दुस्तानी में रहे और कांग्रेसका काम हिन्दुस्तानी में चले। अंग्रेजीकी प्रतिष्ठा न रहे। यह हिन्दुस्तानीके द्वारा ही हो सकता है। अगर आप हिन्दी रखेंगे तो अंग्रेजी रखनी ही पड़ेगी। अंग्रेजी थोड़े दिनोंके लिये रख ली जावे। लेकिन अगर उसको हटाना है तो हिन्दीकी जगह हिन्दुस्तानी को अपनाना होगा। अंग्रेजीमें ही अगर हम अपना काम चलाते रहेंगे तो हिन्दुस्तानी महज पूजाकी चीज़ रहेगी और कामकी चीज अंग्रेजी होगी। नये विधान के मसौदेमें राष्ट्रभाषाके नाते हिन्दी को और तात्कालिक सुविधाके लिये अंग्रेजीको रखा गया है। इसमें दोनों उसूलोंको तोड़ दिया गया है। इससे न तो हम अंग्रेजीको हटा सकेंगे और न देशकी सारी जमातोंके लिये कोई एक भाषा कायम कर सकेंगे। अंग्रेजीको फिलहाल सुविधाके लिये रखनेमें हर्ज नहीं है। लेकिन विधानमें राष्ट्रभाषाके साथ पर्यायके रूपमें उसका नाम रखनेमें देशकी बेइज्जती है। अगर हम हिन्दीका आग्रह रखेंगे तो अंग्रेजी भी रहेगी।

इसके बाद लिपियोंका सवाल आता है। नागरी इसी देशकी लिपि है। इसलिये वह हिन्दुस्तान की मेजर या प्रधान लिपि है। लेकिन अरबी लिपि भी इस देश में कुछ सदियोंसे आ बसी है। लाखों आदमी उसी लिपिमें व्यवहार करते हैं। जो एक ही लिपि चाहते हैं वे भी अगर दोनोंको मंजूर रखें तो भलाई ही है। दोनोंको न लेनेमें खतरा है। दोनोंको लेकर चलें। उनमें से जो बेहतर होगी वह ठहरेगी और बढ़ेगी। सरकारी कागज़पत्र दोनों लिपियेमें रखे जायँ। सरकारके पास दरखास्तें किसी भी एक लिपिमें भेजनेकी आज़ादी रहे। सरकारी ऐलान दोनों लिपियोंमें रहें। स्कूलोंमें हम ऑप्शन —खुशीपर—रख सकते हैं। किसी न किसी रूपमें, एक हदतक, दोनों लिपियोंको साथ चलाये बिना हिन्दुस्तानी या राष्ट्रभाषा तरक्की नहीं कर सकेगी।

तालीमी संघ की बात

ज़ाकिर साहब—[हिन्दुस्तानी तालीमी संघ] हम जानना चाहते हैं कि बुनियादी तालीम के बारेमें हुकूमतका रवैया साफ़ तौर पर क्या है। कुछ लोग कहते हैं कि आपकी सरकार बुनियादी

तालीम को चाहती है और कुछ कहते हैं कि नहीं चाहती। आपका रुख हम को साफ़ साफ़ मालूम हो जाना चाहिये। कुछ सूबों की सरकारें इस काम में काफी दिलचस्पी ले रही हैं। लेकिन ऐसे सूबे भी हैं जहाँ बुनियादी तालीम के लिये एक पाई भी खर्च नहीं हुई है। हमारी आपसे यह दर्ख्वास्त है कि आप सारे मुल्क के सब सूबों में एक-सी हिदायतें दें। तो काम की रफ्तार में भी एकता आ जायगी। हम लोग तामीरी काम करनेवाले तालीमी संघ का काम अहम समझते हैं। पहले सरकार ग़ैरों की थी। इस लिये सरकार कुछ भी न करे, तो भी मुल्क में तालीम का काम करते रहने की हिम्मत तजरबेके बल पर आ गयी है। अब हुकूमत भी क़ौमी है और यह इजारा भी कौमी है। इसलिये तालीम के काम में इस से पूरा पूरा फायदा सरकार उठाये—हमारा असर बढ़ाने के लिये; नहीं बल्कि ख़िदमतको मौक़ा देने के लिये। हम ही को मौका दें यह ज़िद नहीं, हम अपनी ख़िदमतको पेश करते हैं। आप मौक़ा दें तो मुल्क में एक इन्क़िलाब पैदा होगा। बुनियादी तालीम यह ताक़त रखती है। लेकिन जब तक हुकूमत को यक़ीन न हो, हम चुपचाप अपना काम आप करते रहेंगे। हमें कोई शिकायत नहीं। हम इन्तजार करनेको तैयार हैं।

साम्प्रदायिक द्वेष का ज़हर

किशोरलाल भाई—बापूकी हत्याका कारण बने हुये कम्यूनैलिज़म के विषय को किस तरह दूर किया जाय? भगाई हुई स्त्रियोंके मामलेमें हम आपकी किस तरह मदद कर सकते हैं? शरणार्थियोंके मामलेमें आप हमसे किस तरहकी सहायताकी अपेक्षा रखते हैं?—इन सवालोंके बारेमें आप हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं। दूसरी बात, हिन्दुओंमें द्वेषभावना बढ़ रही है। द्वेषका विष मजहब या जातिके नामपर फैल रहा है। आज मुसलमानोंका सवाल नहीं रहा, तो अब ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर के झगड़े शुरू हुये। उनको दूर करना हमारा पहला फर्ज है। इसके बारेमें मार्गदर्शन की जरूरत है।

एक कृत्रिम भाषा का निर्माण

तीसरा सवाल हिन्दुस्तानीका या राष्ट्रभाषाका है। इस मामलेमें भी नयी नयी बातें पैदा हो रही हैं। हिन्दुस्तानीके नामपर एक कृत्रिम भाषा बनने लगी थी, जिसे मामूली हिन्दू और मुसलमान नहीं समझते। आजकल राष्ट्रभाषाके नामपर एक दूसरी कृत्रिम और दुर्बोध भाषा बन रही है। हमारे मध्यप्रान्त की असेम्ब्ली में इस भाषा का प्रयोग हो रहा है। बिलके लिये विधेयक, ट्रॅन्सफर एन्ट्रीके लिये स्थानान्तर प्रविष्टी, इस तरहके नये नये शब्द काम में लाये जाते हैं—जिनको कोई समझ नहीं पाता। हमारे सूबोंकी सरकारें और केन्द्रीय सरकार अगर इस तरहकी भाषाको अपनायेंगी तो हमारी प्रान्तीय भाषाएँ भी बिगड़ेंगी। अगर ऐसी भाषा बनानी है तो फिर सीधे संस्कृतको ही क्यों न ले लें? हिन्दुस्तानीके बारेमें काकासाहबने जो पूछा, उसमें मेरी बातको भी मिला लें। और आप अपने विचार प्रकट करें।

हरिजन, आदिवासी, कस्तूरबा ट्रस्ट, की बात

ठक्कर बाप्पा---[हरिजन सेवक संघ] हमारे सामने तीन मुख्य प्रश्न हैं। १ हरिजन, २ आदिवासी, ३ कस्तूरबाट्रस्ट यानी स्त्री और बच्चे। हरिजनकार्य बापू ने १९३२ में शुरू किया। तब से वह बराबर चल रहा है; चाहे उस की गति कुछ मंद भले ही हो गयी हो। नतीजा यह है कि आज केन्द्रीय मंत्रिमंडल में दो हरिजन मंत्री हैं। नये विधान में अस्पृश्यता गुनाह करार दी जायगी। लेकिन आदिवासी और पिछड़ी हुई जातियों के मामले में काफी ध्यान नहीं दिया गया है। इस प्रश्न को अधिक महत्त्व मिलना चाहिये। नये विधान में उन्हें प्रतिनिधित्व मिलेगा। मध्यप्रान्त में ही करीब तीस लाख आदिवासी हैं। देशी राज्यों में कोई बीस लाख होंगे। दोनों मिलाकर उन्हें पचास मेम्बर मिलेंगे। लेकिन सवाल यह है कि वे कहाँतक काबिल होंगे? राज्य की तरफ से जितना काम होना चाहिये, नहीं हो रहा है। मेरे आग्रह करने पर मौलाना आजाद ने आदिवासी कालेज-विद्यार्थियों के लिये पचास हजार रुपये की रकम मंजूर की है। पिछड़ी जातियों के लिये प्रान्तीय सरकारों को भी आज से अधिक ध्यान देना चाहिये। बम्बई सरकार ठीक काम कर रही है। हिन्दुओं में दूसरी पिछड़ी जातियाँ हरिजन, पहाड़ी तथा खानाबदोश जातियाँ, भी हैं। इन की तरफ अभी पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। बिहार में मुसलमानों की पिछड़ी जाति, मोमीनों, के लिये कुछ किया जा रहा है। तीसरा सवाल स्त्रियों का और बच्चों का है। कस्तूरबा ट्रस्ट देहातों में ही काम करता है। उस का बहुत अच्छा नतीजा आया है। स्त्रियों और बच्चों का प्रश्न अपना अलग महत्त्व रखता है। सरकार को चाहिये कि इस के लिये एक अलग महकमा कायम करे या दूसरा कोई इन्तजाम करे।

ग्रामउद्योग संघ की बात

झवेरभाई पटेल—[अ. भा. ग्रामोद्योग संघ] चरखा संघ के और सरकार के बीच में खादी के बारे में जो सवाल उठता है वही दूसरे ग्रामोद्योगों के बारे में भी है। हम सरकार के सामने जो भी योजना पेश करते हैं उसे कॉम्पिटिटिव एकॉनामी—स्पर्धा के अर्थशास्त्र—के नाप से नापा जाता है। एक नया सोशल ऑर्डर—समाज विधान—कायम करने की दृष्टि से उस का विचार नहीं किया जाता। देहातों की तरक्की की दृष्टि से नहीं देखा जाता। खाद्य पदार्थ अधिक उपजाने की कोशिश तो होती है। लेकिन ताड़गुड़ को उत्तेजन देने को सरकार तैयार नहीं। इस तरह की कई मिसालें हैं। किसी योजना को लेकर जावें तो हम से कहा जाता है कि केन्द्रीय सरकार या हाइकमांड का हुक्म लाओ, तो हम तुम्हारी योजना लेंगे। हमें पहले अपनी दृष्टि साफ तौरपर तै कर लेनी चाहिये। युद्ध की दृष्टि छोड़कर आम जनता के हित की दृष्टि से ग्रामोद्योगों का स्थान निश्चित करना चाहिये। बुनियादी सवाल यह है कि हम अपनी सारी अर्थनीति का मूलाधार क्या रखना चाहते हैं? आप कांग्रेस की संयोजन-समिति के अध्यक्ष हैं और सरकार के प्रधान मंत्री। इस विषयपर आप अधिकार के साथ राय दे सकते हैं।

चर्चा का सारांश

राजेन्द्रबाबू—अबतक जो काम हुआ उस का ब्यौरा हम थोड़े में जवाहरलालजी को सुना देते हैं। रचनात्मक कार्यकर्ताओं का यह सम्मेलन खास कर दो-तीन बातों का विचार करने के लिये बुलाया गया था। दो दिन से दो सवालों का विचार हो रहा है। अबतक किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे हैं। एक सवाल तो गांधीजी के उसूलों को माननेवालों की कोई जमात या संघ बनाने के बारे में है। और दूसरा सवाल यह है कि जो रचनात्मक संघ अबतक काम करते आये हैं, उन में कोई एकता नहीं थी, वे अलग अलग काम करते थे। उन के मुख्य मुख्य आदमी भी अलग अलग रहते थे। उन सब में बापू ही एक यूनिफाइंग फोर्स—बांधनेवाली शक्ति—थे। उन की जगह पर कोई मिलाने-जुलानेवाला साधन कायम करने की बात हमारे सामने है।

ढीला-सा संगठन क्यों ?

पहले सवाल के बारे में विनोबा का यह खयाल है कि गांधीजी के विचारों को माननेवालों की कोई संस्था या संघ कायम किया जाय तो डर है कि वह शायद संप्रदाय का रूप ले ले। इस से कदम आगे बढ़ने के बदले शायद पीछे हटे। यह बहुत बड़ा खतरा है। इसलिये विनोबा का विचार है कि हम एक ढीलासा संगठन रखें। हमारे सिद्धान्त साफ साफ बता दें। जो उन सिद्धान्तों को मानता है वह हमारा सदस्य हो जाता है। यह बात हरेक आदमी पर छोड़ दी जाय। जो अपने आप को सदस्य समझे वह सदस्य है। उस का नाम वगैरह दर्ज करने की जरूरत नहीं। इन सदस्यों का आपस में ताल्लुक रखने के दो ज़रिये होंगे। एक तो अखबार और दूसरा मेला। अखबार के ज़रिये वे एक दूसरे के विचार जानेंगे और एक दूसरे की कठिनाइयाँ तथा काम के तरीके समझेंगे। मेला कांग्रेस की तरह नहीं होगा। उस में कोई किसी को बुलायेगा नहीं। कोई खर्च भी नहीं किया जायगा। एक खास जगह और खास तारीख पर मेला मुकर्रर किया जायगा। जो अपने आपको हमारे सदस्य समझेंगे उस मेले में शरीक होंगे। वे अपना अपना इन्तजाम आप करेंगे, इस बात पर जोर दिया जायगा। जो मेले में शरीक हों वे कम से कम जरूरतें रखें। अपने साथ जरूरत से ज्यादा सामान न लायें। दूसरे लोगों का खयाल यह है कि संगठन ढीला ही क्यों न हो, लेकिन एक रजिस्टर जरूर होना चाहिये, जिससे सदस्यों का एक—दूसरे के साथ ताल्लुक और नाता रहे। इस पर विनोबा का यह ऐतराज है कि यदि हम रजिस्टर रखेंगे तो सदस्यता की कोई परख या कसौटी रखनी पड़ेगी। दूसरों को 'जज' (परीक्षा) करने का काम कौन करेगा ? विनोबा का यह भी कहना है कि संघ के पास कोई जायदाद या निधि न हो। दूसरों का खयाल यह है कि मेलों वगैरह के लिये पैसों की जरूरत होगी। विनोबा इस पर राजी हो गये हैं कि जरूरत के लायक पैसा रखें। इस संघ के नाम के बारे में भी अबतक कोई फैसला नहीं हुआ है। सत्याग्रह-मंडल, इन्सानी भाईचारा, सर्वोदय समाज, आदि नाम सुझाये गये हैं।

रचनात्मक संघोंका मिलाप

रचनात्मक संघों के मिलाने के बारे में भी अब तक कोई ठीक रास्ता नहीं निकला है। एक सुझाव यह है कि हरेक संस्थाके मुख्य मुख्य आदमी मिलकर इसका फैसला करें। यह भी सुझाव पेश किया गया है कि सब संघोंके संचालकों या प्रतिनिधियोंका एक मध्यवर्ती संघ हो, जिसका अध्यक्ष सब संघोंका अध्यक्ष हो। जो बातें सब संघोंके लिये लागू हों वे इस मध्यवर्ती संघके सिपुर्द रहें। और हरेक संघ अपने अपने खास कामोंके लिये स्वतंत्र रहे। जाजूजीकी योजना स्वतंत्र संघोंका एक संयुक्त संघ बनानेकी है। कुमारप्पा की तजवीज़ दूसरी तरहकी है। अुन्होंने एक नक्शा तैयार किया है। उनका कहना है कि मौजूदा सब संघोंको हटाकर एक नया संघ बनाया जाय। उसको कई विभागों में बाँटें। जाजूजी और कुमारप्पाकी तजवीज़ों का मेल करनेका खयाल कुछ लोगों का है। किशोरलाल भाईकी सूचना है कि यह काम विनोबाजीको सौंपें। अबतक की चर्चा के बाद इस मुकाम तक पहुँचे हैं।

बापूजी की बुनियादी चीज़

प्यारेलाल—बापूजीकी जो बुनियादी चीज़ थी, उसीपर आज हमला हो रहा है। हमें उसको महफूज़ रखनेकी कोशिश करनी है। उसकी रक्षामें अगर हम हिस्सा न ले सकें तो सारी बातें हवामें रह जाती हैं। देशके सामने जो समस्यायें हैं उन्हें हल करने के लिये हमारे पास जो साधन मौजूद हैं उन्हींसे वे हल हो सकती हैं। हमें सच्चे दिलसे कोशिश भर करनी चाहिये। हमने आजतक अहिंसाके साधनोंका ही प्रयोग किया है। उन्हीं साधनोंको लेकर आगे बढ़ना चाहिये।

अहिंसा एक गतिमान् चीज

हम चाहे कोई संघ बनायें या न बनायें, मगर अगर अहिंसा एक डाइनैमिक चीज़—गतिशील शक्ति—है, तो जो लोग उसे मानते हैं वे इकट्ठे होकर हमारी मौजूदा समस्याओं को हल करने के लिये बैठ जायँ। जबतक वे समस्यायें हल नहीं होतीं, तबतक हमें बराबर कोशिश करते रहना चाहिये और हार कर बैठने के बदले उसी कोशिश में मर मिटना चाहिये। वरना हम संसार के अनेक वादों में एक वाद और मिला देंगे। हमारे सारे रचनात्मक संघ हिस्टॉरिक रेम्नेन्ट्स—ऐतिहासिक अवशेष—बन जायेंगे। अहिंसा सिर्फ एक मानने-न मानने का उसूल नहीं है। यह एक नित्य-गतिशील शक्ति है। इसलिये संघ बनाना एक छोटी-सी चीज़ है।

संप्रदायवाद और हिंसावाद का सामना

आज कम्युनैलिज्म–संप्रदायवाद–और वॉयोलेंट आर्गनाइज़ेशन–हिंसक संगठन–के कारण अहिंसा खतरेमें हैं। ये दो शक्तियाँ अहिंसा को चुनौती दे रही हैं। इनका मुकाबला करनेकी कोशिशमें हमको खतम होना है। हम अपने सिद्धान्तों के अनुसार नौजवानोंका संगठन खड़ा करने की हिम्मत

रखें। ये नौजवान हमारे साथ शरणार्थियोंका सवाल हल करने में लग जायेंगे। विनोबा जैसे शक्तिशाली व्यक्ति शरणार्थियों को मानसिक पोषण देकर उनकी मनोदशा को सुधार सकते हैं। वे लोग परिश्रमी और बुद्धिमान हैं। इस वक्त बेकार पड़े हैं। कुछ उखड़े उखड़े हुये-से हैं। उन में काम करने की शक्ति असीम है। उनके लिये फूसकी झोपड़ियाँ बनवाकर उन्हें ठिकाने से बसाया जाय और उनसे काम कराया जाय, तो देशके लिये वे एक बड़ी शक्ति साबित हो सकते हैं। ज़मीन की पैदावार बढ़ानेका काम उनसे करा सकते हैं। उनके लिये फूसकी बस्ती खड़ी कर देना हमारे लिये मुश्किल नहीं होना चाहिये। कराची में हमने काँग्रेसनगर एक महीने के अन्दर खड़ा कर दिया था। इस तरह अगर हम सरकार का बोझ दो आना भी कम कर सकें तो काफी काम होगा। इसके लिये 'वालंटरी एजन्सीज', अपनी प्रेरणासे काम करनेवाले ग़ैरसरकारी संगठनोंकी ज़रूरत है। ये संगठन सरकार के हाथ मज़बूत करनेवाले होंगे, सरकारके साथ स्पर्द्धा करनेवाले नहीं।

सरकार महकमाबाज़ी में गिरफ़तार

हुकूमत तो अपनी रफ्तारसे चलती है। हमारी सरकारने रेड टेपिज़म—महकमाबाजी— की विरासत पायी है। राजेन्द्रबाबू, प्रफुल्लबाबू जैसे रचनात्मक काम में मँजे हुए कार्यकर्त्ताओं ने महकमे चलाये हैं। उन्हें भी महकमाबाजी तोड़ने में कामयाबी नहीं मिली। कौमी द्वेष और हिंसाके अलावा खुराक का सवाल भी हाथ में लिया जा सकता है। इस वक्त सरकार अन्न-प्रश्न हल करने में अपने आपको असमर्थ पा रही है। महकमाबाजी से ऊपर उठकर खुराक का प्रश्न हल करने के उपाय हम सक्रियरूप से सरकार के सामने रख सकते हैं। कौमी द्वेष, हिंसा और खुराक, इन तीनों प्रश्नों को हल करने में हम नौजवानों को संगठित कर सकते हैं। विनोबा, किशोरलालभाई, उन्हें अहिंसा के सिद्धान्त और तरीकों का ज्ञान दे सकते हैं। राष्ट्र सेवा दल और दूसरी स्वयंसेवक संस्थायें अगर इस कामके लिये उत्साहित हों तो क्रान्तिकारी नतीजे आयेंगे।

बुनियादी क्रान्ति

गुलामी की जंजीर तोड़ने की बनिस्बत यह क्रान्ति और भी बुनियादी होगी। मेरा मतलब यह है कि हमें कोई न कोई कांक्रीट यानी प्रत्यक्ष काम हाथ में ले लेना चाहिये। ज़रूरत अमली कार्रवाई की है। सिद्धान्तोंकी या विचारोंके प्रतिपादनकी नहीं। पंडितजीसे प्रार्थना है कि वे इस विषयपर भी रोशनी डालें।

मेरे दिमाग की परेशानी

जवाहरलालजी—आप लोगोंके कहने से अपने विचार आपके सामने रखूँगा। इस सब बातों के बारेमें मेरे विचार साफ नहीं हैं। दिमाग़में एक तरहकी परेशानी है। कई बातोंमें उलझा रहता हूँ। समय बहुत कम मिलता है। इत्तफाकसे कभी चन्द मिनिट मिलते भी हैं, तो दिलमें विचार आता है कि डेढ़ बरससे गवर्नमेंट में रहे, कुछ किया, बहुत कुछ नहीं किया। सही किया, गलत भी

किया। जो किया उसे देखकर दिल खुश नहीं होता। इतनी मेहनत का नतीजा क्या निकला? यह भी विचार आता है कि इस तरहसे काम करनेमें असलमें देशको कोई फायदा पहुँचा रहे हैं या नहीं? मगर ये विचार भी पूरे नहीं हो पाते। दिमागको फुरसत नहीं मिलती। कोई न कोई बड़ी क्राइसिस सामने आती है। जो सवाल आता है उसपर उसी वक्त सोचना पड़ता है। रोज नयी नयी बातोंपर ध्यान देना पड़ता है। सारी चीजोंको मिलाकर विचार करनेका मौका नहीं मिलता। पहले लीगका सवाल आया। फिर देशके टुकड़े हुये। शरणार्थियों का सवाल खड़ा हुआ। दिल्ली में झगड़े हुए। आये दिन नया सवाल पेश होता रहा। दिमागका यह हाल भी न रहा कि ठंडे दिलसे कुछ सोचा जाय। विचार करनेको समय न मिले यह अच्छी बात नहीं। लेकिन यह हमारे वशकी बात नहीं थी। इसलिये बड़े पसोपेशमें हूँ। मेरे ऊपर आपने मार्गदर्शन की ज़िम्मेवारी डाल दी। जो बातें इस वक्त दिलमें उठती हैं, आपके सामने रखता हूँ।

बुनियादी सवाल पहले

हमारे सामने बड़े बड़े सवाल हैं। बुनियादी सवाल हैं। खादी वग़ैरह ये महज़ शाखें हैं। जड़के सवाल नहीं हैं। सवाल अपने में ठीक हैं। लेकिन उनके पीछे एक आर्टिफीशियालिटी और अनरियालिटी—कृत्रिमता और अवास्तविकता—है। हम सोचते हैं कि खादी किस तरह की पहनें। लेकिन बुनियादी सवाल यह है कि कहीं खादी पहननेवाले ही न रहें? फिर तो यह सवाल ही न रहेगा कि किस तरह की खादी हो—कहीं फिर गुलाम हो गये? पिछले छः महीनोंकी हरकतें फिरसे गुलामी की तरफ़ ले जानेवाली हैं। देशके दो टुकड़े तो हो गये। लेकिन आगे चलकर और भी टुकड़े टुकड़े हो जाने का डर है। हम फुटकर सवालों में उलझ जाते हैं। जो बातें अहम हैं वे पिछड़ जाती हैं। अगर बुनियादी सवाल से आप अपने को जोड़ न दें तो प्रचलित धारासे दूर पड़ जाते हैं। आजतक ग़ैरोंकी गुलामी थी। अब डर है कि देशके टुकड़े टुकड़े होकर भीतरी गुलामी आयेगी। बुनियादी सवालों से अपने आपको अलग रखकर कोई संस्था सेवा नहीं कर सकती।

महात्माजी की सिफ़त

महान् पुरुष अलग बैठकर सेवा कर सकते हैं। लेकिन उन्हें भी परिस्थितिके साथ अपने आपको जोड़ना पड़ता है। महात्माजी सवालों के साथ चीज़ों को बांध देते थे। उन्हों ने खादी को आज़ादी के साथ जोड़ा; इसलिये वह बढ़ी। सिर्फ़ आर्थिक दृष्टिसे वह इतनी न बढ़ती। महात्माजीमें वह सिफ़त थी। हम बड़े सवालों को छोड़कर खादी वग़ैरह के बारेमें सोच रहे हैं। अपने लिये अलग अलग दरबा बना रहे हैं। महात्माजी की निगाह समूचे देशपर रहती थी। वे बुनियादी सवालको पकड़ लेते थे। इसलिये वे नोआखली गये, कलकत्ते गये, बिहार गये, देहली में आकर बैठ गये। प्यारेलालजी से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। हमको काम तलाश करनेकी ज़रूरत नहीं है। काम देशभर में पड़ा हुआ है। हम देखें कि बुनियादी काम क्या है, मूल काम क्या है। बापूकी मौत चिल्ला चिल्लाकर

कहती है कि वह काम कौनसा है। रचनात्मक काम के नामपर हम अपने अपने खाने में काम न करें। बापूने दिल्ली में जो काम किया उससे सवाल की अहमियत का पता चलता है। सांप्रदायिकता के ज़हरका मुक़ाबला किये बिना हम अपनी आज़ादीको नहीं बचा सकते।

सरकार की मर्यादाएँ

सवालोंको हल करनेका सरकारका ढंग अलग तरहका होता है। उसकी अपनी कुछ मर्यादाएँ होती हैं। सिर्फ सरकारकी ताकत से सवाल हल नहीं होते। मैं सरकारमें हूँ। दिल्लीमें रहता हूँ। रात-दिन पहरे में रहना पड़ता है। बाहर निकलूँ तो आगे सिपाही, पीछे सिपाही होते हैं। यह इन्सानकी जिन्दगी नहीं है। मैं परेशान हूँ। मुझे पिंजड़ेमें रहना पड़ता है। मेरे लिये अहमदनगर और दूसरे कैदखानों से बड़ा कैदखाना यह है। असल कैद मेरे लिये आज है। अगर यही हाल रहा तो मैं पागल हो जाऊँगा। इसे कबतक बर्दाश्त कर सकूँगा ?

काँग्रेस का तरीक़ा

काँग्रेस का यह ढंग नहीं रहा। खतरे का सामना करना, मुसीबत का मुक़ाबला करना, काँग्रेस का तरीक़ा है। उसने एक अजीब ओ गरीब रास्ता अख्तियार किया था। वह अहिंसा का रास्ता था। आज हम उसपर किस तरह चलें, यह तफ़सील की बात है। प्यारेलालजी की बात के साथ मेरा इत्तफ़ाक है। उसके लिये दिल्ली ही जानेकी ज़रूरत नहीं है। कोई अजमेर जा सकते हैं। कोई पंजाब जा सकते हैं। कोई और कहीं जा सकते हैं। या अपनी अपनी जगह काम कर सकते हैं।

मैं बापू की तरफ़ क्यों खिंचा ?

जिस बातने मुझे बापूकी तरफ खींचा, वह कोई एक बात नहीं थी। सारी बातें मिलाकर जो चीज बनती थीं, उसने मुझे खींचा। खादी, ग्रामोद्योग वगैरह बातें उसमें थी। हर टुकड़ा उसमें था। लेकिन खादी, ग्रामोद्योग वगैरह सबको निकाल दीजिये, तो भी बापूकी बुनियादी बातें रह जाती हैं। खादी के बारेमें हमारे खयाल बदले भी हैं। हिन्दुस्तानीके बारेमें भी हमेशा वही खयाल नहीं रहे। मैंने इन सवालोंके बारेमें सोचा और लिखा भी है। हमारे खयाल बुनियादी तौरपर नहीं बदलते। लेकिन बापूके हाथोंमें जिस तरह ये सारी खींचनेवाली बातें हो जाती थीं उस तरह हमारे हाथों में क्यों नहीं होतीं, यह सोचनेकी बात है।

बापू की बुनियादी बातें

इन सारी ऊपरी बातोंको हटानेके बाद भी बापूकी जो बुनियादी बातें रह जाती थीं, उन्हींपर आज हमला हो रहा है। उनको आज अगर हम नहीं बचायेंगे तो देश तबाह हो जायगा। इसलिये जरूरत इस बात की है कि हम बुनियादी तौरसे उनके रास्तेपर चलें। दूसरे रास्तेपर हम मजबूतीसे नहीं चल सकते। और तरीके भी हो सकते हैं। लेकिन जिन तरीकोंपर हम पच्चीस बरससे चलते

आये हैं, उनसे हटनेपर हमारी कमजोरियाँ और भी बढ़ेंगी। आज ही हमारी कमजोरियोंने जोर पकड़ना शुरू कर दिया है। डिसरप्शन-अलगपन—की भावना बढ़ रही है। एक पार्टिशन हुआ। उससे कितना डिसरप्शन फैला, हम सब जानते हैं। इस वक्त दूसरी डिसरप्शनकी तजवीजें पेश हो रही हैं। यह सबसे खतरनाक चीज है। इसलिये हमको अच्छी बातें भी तौल तौलकर लेनी चाहिये। भाषावार प्रान्तरचना का सवालही ले लीजिये। इस वक्त इसे छूना खतरनाक है। मैं उसे टाल नहीं सकता। क्योंकि वह एक बुनियादी और माना हुआ उसूल है। लेकिन आज उसमें देशकी तबाही है। आप अपनी शक्ति इन बुनियादी बातोंपर डालिये। शाख-पत्तियोंमें खो न जाइये। जड़की तरफ कदम बढ़ाइये।

मुझे अधिकार नहीं

आपकी बहस जिस दूसरे सवाल पर हो रही है उसपर कुछ कहने का मुझे अधिकार नहीं है। जो रचनात्मक संस्थायें काम कर रही हैं, उनसे मेरा करीबका संबंध नहीं रहा। सहानुभूति रही, दूरका सम्बन्ध भी रहा। उनका ठीक ठीक हाल नहीं जानता। इसलिये सलाह देने का मुझे हक नहीं है। ऊपरसे देखने पर ऐसा मालूम होता है कि ये संस्थायें एक हो जायें तो अच्छा है। मिल जाने से वे एक दूसरे की ताकत बढ़ायेंगी। लेकिन यह सिर्फ़ जाब्तेकी बात नहीं है। हमको इस वक्त इनर्शिया का—सुस्ती—का मुकाबला करना है। मिलकर करनेमें आसानी होगी। यह ज़रूरी है कि हमारी शक्ति बिखरने न पावे।

राष्ट्रपति का अधिकार

कांग्रेस के साथ क्या सम्बन्ध हो, इस के बारे में राष्ट्रपति बतावें। आज सवाल तो यह है कि कांग्रेस क्या हो? नये कायदे और विधान बनाने पर भी यह सवाल रहेगा कि काँग्रेस क्या हो? मैं पसन्द नहीं करूँगा कि कांग्रेस रचनात्मक संस्थाओं के कामों में दखल दे। वह उन से सम्बन्ध बनाये रखे इतना काफी है।

काँग्रेस राजनीति से क्यों न हटी?

अब उस बड़े संगठन की बात आती है। बापू ने लोकसेवा संघ की योजना बनायी थी। वह चीज तो ठीक थी, लेकिन बापू ने जो लिखा था, वह पोलिटिकल संस्था नहीं थी। उसके मानी तो ये थे कि कांग्रेस खत्म कर दी जाय और उस की जगह एक नई संस्था पैदा कर दी जाय, जो पोलिटिकल न हो। तब दूसरी पोलिटिकल संस्था बनानी पड़ती। क्यों कि पोलिटिकल काम तो करना ही होगा। कांग्रेस पोलिटिकल मैदान से हट जाती तो नये नाम से कोई न कोई पोलिटिकल संस्था बनती। खाली नाम बदलकर वही लोग खड़े हो जाते और वे बेकाबू हो जाते। इस लिये यह विचार किया कि इस का पोलिटिकलपना बिलकुल ही खत्म न करें। कांग्रेस पुरानी है। उस का जो काबू मेम्बरोंपर है वह नई संस्था का नहीं रह सकता। कांग्रेस को पूरा बदलना, पूरा ओपन सेशन ही कर सकता है। ए. आइ. सी. सी. और वर्किंग कमेटी नहीं कर सकती। जो पोलिटिकलकाम में रहना चाहें

उनके लिये एक संस्था चाहिये। पोलिटिकल लाईफ तो बन्द नहीं हो सकती! अबतक कांग्रेस अंग्रेजी हुकूमत का मुकाबला करती थी। अब वह काम खत्म होगया—एक तरह से पूरा हो गया। अब उसे हुकूमत का मुकाबला करने का काम नहीं, बल्कि हुकूमत करने का काम करना है। इसलिये पॉलिटिक्स में रहकर उसे नये ढंगसे काम करना पडेगा। पोलिटिकल क्षेत्र में काम करते रहनेपर वह इन रचनात्मक संस्थाओं से सम्बन्ध रखेगी।

अलग अलग प्रश्न

अब अलग अलग व्याख्यानों में जो बातें कही गयीं उन में से कुछ को एक एक कर के लेता हूँ।

ठक्कर बाप्पाने जो बातें कही हैं, वे तो ठीक ही हैं। उनको हमें करना ही है। ग्रामोद्योग की बात बुनियादी है। उसको बाद में लूँगा।

हिन्दुस्तानी

काका साहब ने हिन्दुस्तानी की बात कही। आजकल जो भाषा निकल रही है उसे हिन्दी कहूँ, उर्दू कहूँ, क्या कहूँ, समझ में नहीं आता। पचास परसेंट भाषा मेरी समझ में नहीं आती। रेडियोपर या कभी कभी व्याख्यानों में भी ऐसी भाषा चलती है जो अक्सर मेरी समझ में नहीं आती। ड्राफ्ट कान्स्टिट्यूशन के जिस तर्जुमेका किशोरलाल भाई ने जिक्र किया, वह भाषा तो मेरी समझ से एकदम परे है। मैं प्रैक्टिकल बात जानता हूँ। रेडियो वगैरह का काम प्रचार करना है। पब्लिसिटी उन के लिये होती है जो हमारे खिलाफ हैं। जो अपनी तरफ हैं उन्हें थोड़े ही समझाना है? समझाना तो विरोधियों को है। मैंने न हिन्दी पढ़ी, न उर्दू। चूँकि दोनों में अनपढ़ हूँ; इसलिये बीच की राय रखता हूँ। मुझे भी बड़ी परेशानी है कि आखिर हमारा झुकाव किस तरफ को जा रहा है! हर बात को हम धार्मिक और मजहबी ढंग से देखने लगे हैं। कल की ही बात है। असेम्बली में हिन्दी का सवाल आया। हिन्दू और मुसलमान धार्मिक और मजहबी ढंग से सोचने लगे। इस देश में हिन्दू ज्यादा हैं, इसलिये हिन्दुओं की भाषा ही राष्ट्रभाषा होनी चाहिये। मुसलमान सिर्फ तेरह फीसदी हैं, इसलिये क्या यह कहा जाय कि सिर्फ तेरह फीसदी अरबी-फारसी के शब्द हों? भाषा का मजहब से सम्बन्ध नहीं है। मुसलमान कहे कि मेरी भाषा उर्दू है तो मुझे नागवार गुजरता है। हम झगड़ों में उलझ जाते हैं। बुनियादी काम की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। रूस से एक अच्छे से कोश की माँग आयी। एक भी माकूल किताब नहीं मिली। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा होता रहता है। दोनों में से बेसिक लफ्ज़ छाँटने का काम नहीं होता।

अंग्रेजी क्यों रखी गयी?

ड्राफ्ट कॉन्स्टिट्यूशन में अंग्रेजी रखी गयी है, तो वह सही सही रखी गयी है। न रखना, झगड़ा-फसाद बड़े पैमानेपर मोल लेना है। माना कि हमारी एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिये। लेकिन उस के लिये यह मौका नहीं है। अच्छा काम गलत वक्त पर बुरा काम हो जाता है। दुनिया में जबान

से ज्यादा डिसरप्टिव–भेदभाव बढ़ानेवाली–चीज कोई नहीं। जबान मजहब से भी ज्यादा दुई को बढ़ाती है। आखिर आदमी जबान से ही तो झगड़ा करता है। अच्छे कामों में भी प्रायोरिटी–पहले और दूसरे–का खयाल रखना पड़ता है। खाली हिन्दुस्तानी को दक्षिण भारत के लोग लेने को तैयार नहीं थे। हम उन के साथ ज्यादती कैसे करते? इस बात पर कॉन्स्टिट्यूअंट असेम्बली को क्या तोड़ देते? मेरा खयाल है कि हम इस सवाल को जरूरत से ज्यादा महत्त्व नहीं दे सकते। काका साहब से ज्यादा राष्ट्रभाषावादी वहाँ हैं। लेकिन हम क्या करते? एक ही तरीका था। जो मौलाना साहब ने बतलाया; कि पाँच सालका कार्यक्रम बनायें। पाँच सालतक अंग्रेजी से काम लें और राष्ट्रभाषा को बनाते रहें। कोई चार पाँच हजार बेसिक लफ़्ज़ों की भाषा बनायें। डॉक्टर ज़ाकिर साहब ने हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के निस्बत जो कहा उस का जवाब मौलाना साहब दें। यों, खुद ज़ाकिर साहब भी सारा हाल जानते हैं।

मैं समझता हूँ कि अलग अलग भाषणों में जो सवाल उठाये गये थे, उन में से बहुतेरों को मैं ले चुका हूँ। लेकिन असल बात तो बुनियादी काम की है। देश में इस वक्त जो फिज़ा और खतरा है उस का मुकाबला करना आपका और हमारा पहला काम है।

भगवानदीनजी—अगर हम मद्रास, बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र के कान्स्टिट्यूअंट असेम्बली मेंबरों के दस्तखत ला दें, तो क्या आप हिन्दुस्तानी को चलायेंगे?

जवाहरलालजी—मुझे मंजूर है। मेरी जबान बंद हो जायगी।

मौलाना साहब—मुझे पाँच साल के बाद मंजूर; अभी नहीं।

बुनियादी आर्थिक प्रश्न

जवाहरलालजी—खादी, ग्रामोद्योग वगैरह के सिलसिले में यहाँ पर कुछ बुनियादी बातें उठाई गयीं। इस सवाल को और सवालों से अलग रखें। 'काम्पिटिटिव एकानमी', नया 'सोशल ऑर्डर', की बात कही गयी। देखना यह है कि इन के मानी क्या हैं? मैं 'काम्पिटिटिव एकानमी' से दूसरा मतलब समझता हूँ। जो एकानमी आप पेश करते हैं, वह अपने बलपर ठहर सके। अगर आज नहीं तो दस साल के बाद, अपनी टांगोंपर खड़े होने का दम उस में होगा या नहीं? सरकार मदद करे, आप उसे शुरू करें।

अपनी टांगोंपर खड़े होने का दम

लेकिन बुनियादी चीज यह है कि क्या उसमें अपनी टांगोंपर खड़े होने का दम है? अन्नकी कमी है। अगर अन्नकी कमी को हम पूरा न कर सके तो कोई सरकार लोगों को भूखों थोड़े-ही मरने देगी? जहाँ तक उसका बस चलेगा, वह बाहरसे अन्न लायेगी। कपड़े की कमी है। एक वैक्यूम–खालीपन–तैयार हो गया है। अगर हम उसे खादीसे न भर सके, तो कोई भी सरकार, मिल के कपड़े की बात तो

अलग, विदेशी कपड़ा लाये बिना नहीं रहेगी। वह लोगों को नंगे नहीं रहने दे सकती। अगर वह कपड़े की कमी को दूर करने की कोशिश नहीं करेगी, तो नतीजा खतरनाक होगा। अगर अपना कपड़ा हम बना सकते हैं तो गवर्नमेंट मदद भले ही करे। मिल हलके हलके बंद करें और बाहर का कपड़ा बंद कर दें तो क्या वैक्यूम अपने आप भर जायेगा? बात समझ में नहीं आती। काम्पिटिटिव एकानामी देश में है। हम भी उसे हटाना चाहते हैं। लेकिन सिर्फ मिलें बंद कर देने से या विदेशी कपड़ा बंद कर देने से कपड़े की कमी दूर नहीं होगी। अगर आज विदेशी कपड़ा या मिलों का कपड़ा वैक्यूम को भर देने लायक होता तो वैक्यूम ही न रहता। मगर वैक्यूम है, इस का मतलब यह है कि हमारे पास हमारी जरूरत के लायक कपड़ा नहीं हैं। यह हालत देश के लिये खतरे की है। विदेशी कपड़ा और मिलों का कपड़ा आने के बाद भी कपड़े की जो कमी रह जाती है, उसे भी खादी पूरा नहीं कर सकती। ग्रामोद्योगों की वस्तु गवर्नमेंट की मदद से कुछ दिनों के बाद अपनी टांगोंपर खड़ी नहीं रह सकती तो वह नहीं ठहरेगी। बात कुछ पेचीदा है। मैं नहीं जानता मैं उसे कहाँतक साफ कर सका हूँ। मेरा मतलब यह है कि काम्पिटिटिव एकानामी निकाल देने से सवाल हल नहीं होता।

युद्धके बारेमें

दूसरी बात युद्ध के बारेमें है। यों हम युद्ध किसीसे नहीं करना चाहते। लेकिन देशरक्षा का पूरा पूरा इन्तजाम हमें करना होगा। आप कहते हैं उद्योगोंकी योजना देशरक्षाकी दृष्टिसे न की जाय। मैं अर्ज कर दूँ कि ऐसा कोई उद्योग नहीं जिसका कि देशरक्षण के साथ सम्बन्ध न हो। कपड़ेसे भी देशरक्षा का संबंध आता है। देशरक्षण की दृष्टिसे हमें इंडस्ट्रियालाइजेशन–औद्योगीकरण–एक हदतक करना पड़ेगा।

औद्योगीकरण और ग्राम-उद्योग

कॉटेज इन्डस्ट्रीज–देहाती दस्तकारियों–से इसका मुकाबला नहीं। होमइन्डस्ट्रीज–घरेलू दस्तकारियों–से अलग औद्योगीकरण का एक ढाँचा हमें बनाना है। औद्योगीकरण से एक वायुमंडल हमने देशको दे दिया है। उसका मजदूरीकी दरपर और तनखाहों पर असर होता है। लेकिन मुझे शक नहीं कि कितना ही औद्योगीकरण क्यों न हो, तो भी पचास या सौ बरस तक ग्रामोद्योगोंको बहुत ज्यादा बढ़ानेकी गुंजाइश होगी। सवाल यह है कि किन किन बातों में ग्रामोद्योग चल सकेगा और किन बातों में नहीं। आज इसका ठीक ठीक जवाब मेरे पास नहीं है। देशरक्षण का सवाल एक ऐसा सवाल है कि जिससे सारी औद्योगिक फिजा ही बदल जाती है। बड़े बड़े उद्योग अगर राज्य के काबूमें हों तो वे नॉनकॉम्पिटिटिव–होड़ से खाली–हो जाते हैं। घरेलू दस्तकारियाँ किन क्षेत्रोंमें और कहाँतक बढ़ें, यह अध्ययन का सवाल है। सरकारका फर्ज है कि जिन बातों में घरेलू दस्तकारियाँ चल सकती हैं, वहाँ उनको पूरी तरह बढ़ाये।

केन्द्रीकरणकी तरफ रुख

दुनियाकी बुनियादी समस्या यह है कि सारी दुनिया राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से केन्द्रीकरण की तरफ बढ़ती जा रही है। हम भी केन्द्रीय सरकारको अधिक अधिकार देकर उसे मजबूत बनाना चाहते हैं। सिफत इस बातमें है कि हम केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के फायदे जोड़नेकी तरकीब निकालें। हम देशरक्षणके सवाल को छोड़ दें तो अपनी राजनैतिक आजादी भी नहीं रख पायेंगे। तो फिर आर्थिक स्वतंत्रता कैसे रख सकेंगे?

सवाल पेचीदा है

यह सवाल सीधा-सादा नहीं है। काफी पेचीदा है। बिना काते अगर खादी नहीं चलती तो यह सोचना होगा कि वह चलेगी या नहीं? उसमें इकॉनमिक आउटटर्न—आर्थिक दृष्टिसे—उपज का सवाल है। खुद चरखा चलानेकी बात दूसरी तरहकी है। चरखा तो कुछ चुने हुअे लोग चलायेंगे। बाबू राजेन्द्रप्रसाद चलावें, मैं चलाऊं। इस तरह कई आदमी चला लें। ये चुने हुऐ आदमी एक लाख हों या दस लाख हों, वे अपने कपड़े का सवाल चाहे हल कर लें, लेकिन आर्थिक दृष्टिसे कपड़े की पैदावार का सवाल हल नहीं कर सकते। वह सवाल एक दूसरे क्षेत्र से सम्बन्ध रखता है। इसलिये मैंने अर्ज किया कि इन सवालोंको फिरसे नई फिजाकी रोशनी में सोचना होगा।

लोगोंके दिमाग सुधारनेकी बात

मौलाना आज़ाद—आखिर घूम-फिरकर बात यह आ जाती है कि इस वक्त करना क्या चाहिये? असली सोचने की चीज यह है कि बापू का मिशन किस तरह आगे बढ़े। इसमें ज्यादा बहस न हो। यह लोगों के दिमाग को सुधारने की बात है। इसका अगर कोई रास्ता नहीं निकलता तो बापू का मिशन खो जाता है। इस बात को सामने रखकर हम सारे सवालों को सोचें।

संकुलयुद्ध का प्रतिकार

प्रेमाबाई कंटक—उसी दृष्टि से तो हम लोग सोच रहे हैं। दुनिया टोटल-वॉर—संकुल युद्ध—की तरफ बढ़ती चली जा रही है। हमको भी अगर टोटल-वॉर की तैयारी करनी है, तो हम बापू का मिशन किस तरह पूरा कर सकते हैं? बापू का रास्ता तो टोटल-वॉर के प्रतिकार का था।

सरकार मदद किस तरह करे

स्वामी सत्यानंद—मैं समझता हूँ कि सरकार रचनात्मक कार्यकर्ताओं के रास्तेमें आनेवाली रुकावटें भर दूर कर दे, तो भी काफी काम हो सकता है। युक्तप्रान्त के गाँववाले खादी बनाने के लिये लालायित हैं। लेकिन वहाँ रुई की दिक्कत है। रेल्वे रुई को प्रायॉरिटी नहीं देती। इसी तरह सरकार मदद कर सकती है। जगह जगह मेले होते हैं। उनमें सफाई का काम कोई नहीं करता।

हजारों आदमी बीमारियों के शिकार होते हैं। हमारे रचनात्मक कार्यकर्ता सफाईका जिम्मा ले सकते हैं। इस मामले में सरकार उनके लिये सुविधा कर सकती है। मिसालें बढ़ाई जा सकती हैं। मतलब यह है कि सरकार रचनात्मक काम में काफी मदद पहुँचा सकती है।

सरकार और ग्राम-उद्योग

कोंडा वेंकटप्पय्या—आप यह बतलाइये कि यह वैक्यूम-रीतापन-कबतक रहेगा? क्या हमेशा के लिये रहेगा? आप कहते हैं कि जबतक वैक्यूम रहेगा तबतक मिलोंकी ज़रूरत होगी। मद्रास की सरकार ने—जब प्रकाशम् मिनिस्ट्री थी—इस वैक्यूम को भरने की कोशिश की। देश को स्वयंपूर्ण बनाने की उनकी तरकीब ध्यान देने योग्य है। सरकार को मिलोंपर नियंत्रण लगाना चाहिये और ग्रामोद्योगों को उत्तजन देना चाहिये। हर बात में मनोवृत्ति के परिवर्तन का सवाल है। हमारे यहाँ के हिन्दी प्रचार संघको इमारत के लिये जगह की ज़रूरत है। लेकिन सरकार अपने अफसरोंके लिये मकान बनाना ज्यादा जरूरी समझती है। अगर यही मनोवृति बनी रही तो देशमें कोई सुधार नहीं हो सकता। इन बातों में केन्द्रीय सरकारको प्रान्तीय सरकारोंका मार्गदर्शन करना चाहिये। जहाँ जरूरत हो, आर्थिक मदद देनी चाहिये। अब महात्माजी नहीं रहे। हमारा भरोसा आप पर है, जो अुनके अुत्तराधिकारी और देशके आधारस्तम्भ हैं। (अंग्रेजीसे)

तालीमी संघ के प्रति रुख

ज़ाकिर साहब—तालीमी संघके बारेमें अबतक कोई जवाब नहीं दिया गया।

मौलाना आज़ाद—तालीमी संघको मदद देनेका इरादा सरकार रखती है। सरकार तालीमी संघसे मदद चाहती है और तालीमी संघको सहारा देनेकी ख्वाहिशमंद है। वह सूबोंको भी मश्विरा देनेको तैयार है। आपके काम के लिये कुरुक्षेत्रमें एक नया मैदान है। वहां एक्स्परिमेंट करें। बड़ा काम होगा। एक साफ कागज़पर लिखना है। वहां चौबीस हजार लड़के और लड़कियाँ मौजूद हैं। आप बुनियादी तालीम वहांपर शुरू कर दें।

शान्तिसेना की बात

श्रीमन्नारायणजी—मैं समझता हूँ, हमें इस सम्मेलन में अपना सारा ध्यान बुनियादी बातोंपर लगाना चाहिये। प्यारेलालजी और पंडितजीने उस तरफ हमारा ध्यान दिलाया। सांप्रदायिक समस्या हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या है। उसके कारण बापूजीकी जान गयी। सांप्रदायिकताके प्रतिकारके लिये बापूने शांतिसेना—पीस ब्रिगेड—की बात कही। उनके जीवनकाल में वह न हो सकी। अगर आप नवयुवकोंको आवाहन करें तो हजारों-लाखों इसमें आ सकते हैं। कांग्रेसकी पुकार सुनते ही हजारों-लाखों जेलों में गये। और अपना सिर हथेलीपर लेकर अंग्रेज सरकार से लड़नेको तैयार हो गये। तो क्या वे शांतिसेनामें नहीं आयेंगे? शांतिसेनाकी स्थापना शहर-शहर में और देहात-देहात में करना

जरूरी है। उसकी बुनियाद यहीं पर पड़े तो अच्छा होगा। खादी और ग्रामोद्योग तो, जैसा कि पंडितजीने कहा, इसकी डालें हैं। अगर जड़ रही तो डालें भी हरीभरी रहेंगी। जड़ ही सूखेगी तो डाल पत्ते भी सूखेंगे। इसलिये मैं इसे बुनियादी चीज समझता हूँ।

बापूकी चीजों का निचाड़

मौलाना आज़ाद—इस मामले को अगर अहम समझते ह तो उसे भी सोच लेना चाहिये। लेकिन विनोबाकी सर्वोदय समाजवाली बात इन्सान की खिदमत की तरफ ही इशारा करती है। आखिर बापूकी सारी चीजों का वही तो मकसद और निचोड़ है। हममें से हरेकने अपनी अपनी बातपर जोर दिया। अब सबके दिमाग एक हों कि सब से ज्यादा ध्यान किस चीज पर देना है, तो कुछ बने।

दोनों एकही कुटुंब के

विनोबा—जैसा कि मैंने कहा था, जवाहरलालजी को सरकार के प्रतिनिधिकी हैसियत में देखने की मेरी मनोदशा नहीं है। मैं उन्हें गांधीजी के कुटुंब के समझता हूँ। जवाहरलालजी और मैं कम से कम पच्चीस साल से एक ही कुटुंब के रहे हैं। लेकिन आज तक एक-दूसरे से कभी नहीं मिले। आज ही उनका और मेरा व्यक्तिगत परिचय हुआ है। यह दोष न मेरा है, न उनका। यह दोष तो उसका है जिसका कुटुंब इतना विशाल था। इसलिये दोनों अपना अपना काम करते हुये भी व्यक्तिगत तौरपर एक-दूसरे को नहीं जान सके।

एक-दूसरे का हृदय पहचाने

आज जब कि यह पहला मौका है कि वे और मैं एक साथ आये हैं, तो इस पहले मौके पर सरकारी प्रतिनिधि की हैसियत से उनको देखने का मेरा दिल नहीं होता। इस गंभीर प्रसंग में भी मैं उन से कोई काम की बातें या सवाल-जवाब नहीं करना चाहता। वे हमारे बीच आये हैं। हम एक-दूसरे से निकम्मी बातें करें, खेल सकें तो खेलें, गा सकें तो गावें। इस तरह कुछ समय साथ साथ आनंद में बितायें, तो सवाल-जवाब की अपेक्षा एक-दूसरे के हृदय पहचानने का वह अधिक कारगर तरीका होगा।

आप हुक्म दें हम करेंगे

उनकी दिक्कतें सही हैं। मैं उनकी मुश्किलों को ठीक तरह से महसूस करता हूँ। उनका बोझ जब दूरसे देखता हूँ तो उन से भी अधिक महसूस कर सकता हूँ। उनके सिरपर बोझ होने के कारण उन को कुछ सूझता नहीं। लेकिन जिस के सिरपर बोझ होता है उसी को सूझता है। इसलिये सूझता भी उन्हीं को है। मैं अलग से देखता हूँ तो मुझे इस बात का पता चलता है। आप से काम की बात एक ही हो सकती है। वह है हम आपके हैं और आप हमारे हैं। आपकी मुश्किलें हमारी मुश्किलें हैं। हमसे आप क्या चाहते हैं? आप मार्गदर्शन करें। या आप हुक्म दें तो भी हम काम करेंगे। काम की बात मुझे इतनी ही कहनी है।

आपकी खिदमत में पड़े हैं

एक बात और। अभी की सरकार के दोषोंकी चर्चा यहाँ हुई। सरकार रचनात्मक कामों की तरफ से लापरवाह है, यह खयाल गलत है। सरकार की हालत देखते हुये ग्रामोद्योग बढ़ाने का उसे मौका ही नहीं मिला। सरकार मिलें बढ़ावे तो मैं उसके साथ झगड़ा नहीं करूंगा। मुझे सूझे तो मैं खादी को उसकी टांगोंपर खड़ा करूंगा। अगर न कर सकूँगा तो उसमें मेरा दोष होगा, सरकार का नहीं। अंग्रेजों के बावजूद भी अगर हम खादी को बढ़ा सके, तो अपनी सरकार के जमाने में अवश्य बढ़ा सकेंगे। लेकिन इन सवालों के बारेमें मैं बहस नहीं करना चाहता। हम आपकी खिदमत में पड़े हैं, ऐसा आप समझें। आप जो काम करने कहेंगे उसके लिये हम अपने को समर्थ पायेंगे, तो उसे जरूर करेंगे। और अगर हम अपने को समर्थ न समझें और आप कहें कि हम समर्थ हैं, तो भी हम उस काम में लग जायेंगे।

खुला अधिवेशन

ता. १३-३-'४८ दोपहर २-३० से

अप्पा पटवर्धन—मान्यवर नेतागण, भाइयो और बहनो,

थोड़ीसी भूमिका

मैं गांधी सेवासंघ की तरफ से आप सब का हार्दिक स्वागत करता हूँ। हमारा यह सम्मेलन पांच-छः हफ्ते पहले ही होनेवाला था। लेकिन उस दुर्घटनावश न हो सका। गां. से. संघ का आखिरी सम्मेलन १९४० में मालिकान्दा में हुआ। संघ की आंतरिक स्थिति और देश की बाहरी परिस्थिति देखकर उस वक्त गां. से. संघ को समेट लिया गया। सिर्फ आठ-दस लोगों की एक छोटी-सी समिति रह गयी, जिस में क़िशोरलाल भाई और जाजूजी जैसे बुजुर्ग हैं और मेरे जैसा मामूली कार्यकर्ता भी है। पिछले आठ सालों में कोई सम्मेलन नहीं हुआ। इन आठ सालों में जगत् और हिन्दुस्तान का नक्शा बदल गया है। स्वराज्यप्राप्ति के बाद एक-से-एक विकट समस्यायें खड़ी हुईं। आठ साल के बाद फिर से यह उत्सुकता सब तरफ फैली कि एक जगह बैठकर विचार करें। साथियोंने सम्मेलन कराने की इच्छा सब ओर से प्रकट की। पांच-छः हफ्ते पहले की तारीखें मुकर्रर हुईं। हम आशा और आकांक्षा रखते थे कि बापू आवेंगे और उनके मार्गदर्शन में सम्मेलन होगा। लेकिन ऐन मौके पर वह महान् दुर्घटना हुई। प्याले के ओठों तक पहुँचनेमें भी कई विघ्न होते हैं। वैसा ही हुआ। लेकिन बापू के निर्वाण के बाद सम्मेलन के बारे में उत्सुकता और भी बढ़ गयी।

हमारी लाचारी

पहले के सम्मेलनों में सिर्फ गांधी सेवासंघ के सदस्य ही बुलाये जाते थे। अब बापू के निर्वाण के बाद सारा हिन्दुस्तान ही गां. से. संघ हो गया है। बाकायदा सदस्य इनेगिने हैं। लेकिन बापू के अनुयायी असंख्य हैं। पहले दो-तीन सौ आदमियों को बुला लेते थे। अब की बार किसको बुलायें और किसको न बुलायें यह तै करना आसान नहीं था। फिर भी करीब पांच-सौ निमंत्रण भेजे। जिनकी हाजिरी सम्मेलन में उपयुक्त होती और जो खुद भी आने को उत्सुक थे, उन सबको बुलाने का इन्तजाम न हो सका। किसीको बुलाया, किसीको मना भी करना पड़ा। इसमें कुछ अन्याय या अविवेक हो गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं। आप यहाँसे किसी तरह का कड़ुवापन लेकर न जायें। हमारी लाचारी का ध्यान रखें।

आज हम एक महान् दुर्घटना की छाया में इकट्ठे हुए हैं। बापू के बाद हमको इस सम्मेलन की आवश्यकता और भी महसूस हुई। हम यहाँ से कुछ रोशनी ले जाना चाहते हैं। हमारे नेतागण यहाँ मौजूद हैं। हमें यहाँ पुलिस-बन्दोबस्त में इकट्ठा होना पड़ा है। इसकी मुझे शर्म है। मगर इस बात में भी हम लाचार थे। सरकारने अपनी जिम्मेदारी पर यह सारा इन्तजाम किया है। बापू के देहान्त के बाद सरकार की जिम्मेवारी और भी बढ़ गयी है। कई लोगोंने तो बापू की हत्या के बारे में सरकार को भी इन्तजाम की कमी के लिये दोष दिया। ऐसी हालत में दूसरा कोई चारा दिखाई नहीं देता था। अगर हम अपने नेताओं के नेतृत्व की जरूरत समझते थे, तो हमारे लिये यह बन्दोबस्त मंजूर करने के सिवा कोई उपाय नहीं था। आप इसे हमारी शक्ति की मर्यादा समझ लीजिये।

बापू की हत्या चुनौती है

बापू का देहान्त असे मौके पर और अिस रीतिसे हुआ कि मैं अुसमें शोक का कारण नहीं देखता। हमारे लिये वह अेक चुनौती है। प्रतिगामी और विध्वंसक शक्तियाँ मानो हमसे पूछती हैं कि जिस काम के लिये बापूने अपनी जान दे दी, अुसे हम आगे बढ़ानेवाले हैं या नहीं। हम अिस चुनौती का जवाब दें। मुझे अुम्मीद है कि हम यहाँसे अपने नेताओंसे रोशनी पाकर कुछ शक्ति लेकर लौटेंगे। अिधर कुछ दिनोंसे गांधी सेवासंघ को बढ़ाने की अिच्छा बापू को भी थी। हमारे सामने अितनी समस्याअें हैं कि सबको अेक जगह जमा करके अुन समस्याओं का अहिंसक हल सोचने की मंशा बापू की थी। अुन्होंने अेक मिसाल दी थी कि कोअी बैंक अपने दरवाज़े कुछ दिन के लिये बंद कर देती है, और अनुकूल समय आनेपर फिर खोल देती है। अुसी तरह वे गांधी सेवासंघ का दरवाज़ा फिरसे खोलना चाहते थे। पाँच-छः हफ्ते पहले जो सम्मेलन होनेवाला था अुसमें अगर वे शामिल हो सकते तो क्या मार्गदर्शन कराते, कौन कह सकता है? अुनके बाद संघ की तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता और भी बढ़ गयी है। हम संघ कायम करने की अिच्छासे और मार्गदर्शन की अपेक्षा लेकर यहाँ आये हैं। दो दिनसे संघ के बारे में चर्चा हो रही है। संघ हो या नहीं, अगर हो तो अुसका स्वरूप क्या हो, अिसके बारेमें अभी किसी निश्चित नतीजेपर नहीं पहुँचे हैं। अिस विषय में

जल्दी निर्णय न हो सके, तो भी आज देश के सामने जो समस्याअें खड़ी हैं अुनका मुक़ाबला करने में हम देर कैसे कर सकते हैं ? अिस दृष्टि से हमको अपने नेताओं के मार्गदर्शन की निहायत ज़रूरत है।

नेताओं की कृपादृष्टि

पंडित जवाहरलाल जैसे व्यक्ति का देहली छोड़कर आना कोअी मामूली बात नहीं है। अुनके सामने रोज़ नया काम मौजूद होता है। सरदारसाहब भी आनेवाले थे। वे सख्त बीमार हो गये। हम सब प्रार्थना करें कि वे जल्दी अच्छे हो जायँ और अिस विकट परिस्थिति में बहुत कालतक हमारा नेतृत्व करें। मौलाना साहब भी तशरीफ़ ला सके अिसकी हमें बहुत खुशी है। राजेन्द्रबाबू हमेशा बीमार रहते हैं, लेकिन वे हमारे बीच आने के लिये सदा तत्पर रहते हैं। अुनकी कृपा हमपर अिसी तरह बनी रहे।

अध्यक्षपद के लिये सूचना

गांधीवालों को अिकट्ठा करनेवाली कोअी संस्था हो या न हो ? जातिवाद, प्रांतवाद, वर्गकलह, आदि जो निरर्गल प्रवृत्तियाँ देश की अेकता में बाधा पहुँचा रही हैं अुनका क्या अिलाज़ करें ?—ये हमारे सामने असली सवाल हैं। हम यहाँ शक्ति पाकर अिन मामलों में अपना दिमाग़ साफ़ कर के जावें और अपने अपने कामों में लग जायें। मैं संघ के स्वरूप का अुतना महत्त्व नहीं समझता जितना कि अिन समस्याओं का हल सोचना महत्त्व रखता है।

मै अपनी और आप सब की तरफ़ से राजेन्द्रबाबू से बिनती करता हूँ कि वे अिस सम्मेलन का प्रमुखपद लें।

दिवाकरजी—मैं हार्दिक अनुमोदन करता हूँ।

[सब से पहले पूज्य बापूजी के बारे में शोक प्रस्ताव गांधी सेवा-संघ के मंत्री श्री र. श्री. धोत्रे ने पढ़कर सुनाया। अध्यक्षने प्रस्ताव पेश किया। सबने खड़े होकर पास किया। प्रस्ताव के लिये देखिये परिशिष्ट]

राजेन्द्रबाबू—बहनो और भाअियो,

घरका मालिक जाता रहा

हम लोग अेक बहुत मुश्किल वक्त में यहाँ अिकट्ठे हुअे हैं। जिसके घरका मालिक गुजर जाता है और घर के सब लोग अिकट्ठे होकर सोचने लगते हैं कि घरका काम कैसे चलेगा और निभेगा, कुछ कुछ उसी तरह की हालत हम लोगों की है। सिर्फ़ वही लोग नहीं जो गांधी सेवासंघ में या रचनात्मक संघों में या कांग्रेस में किसी न किसी हैसियत से काम कर रहे थे, बल्कि हिन्दुस्तान के सभी लोगों के दिल में आज यही सवाल उठता होगा कि आगे क्या किया जाय ? उन लोगों के दिलों में

भी जो इस हत्या के पीछे थे, अब कुछ दूसरे खयाल उठने लगे हों तो आश्चर्य नहीं। वे भी शायद अब समझने लगे होंगे कि जो चीजें गांधीजी ने दुनिया को दी थीं, उनका कितना महत्त्व था। तो फिर हम जो उनके कुटुंब के आदमी हैं, उनके दिलों में कौन कौन से विचार न उठते होंगे। हम सब अेक कुटुंब के आदमी सोचने के लिये यहाँ जमा हुए हैं। एक तरह से यह सम्मेलन महात्मा गांधी के हुक्म से उनके जीते-जी होना तै हुआ था। तैयारी भी हो गयी थी। मगर हमारे सम्मेलन पर ही नहीं, हमारी बहुत तरह की मुरादों और हौसलों पर भी, एकबारगी पानी फिर गया।

गांधीजी का मक़सद और ज़रिये

गांधीजी ने सत्य और अहिंसा को दुनिया के सामने रखा था। केवल व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, बल्कि सारे देश के जीवन में इन उसूलों को उतारने की कोशिश की। इस देशको सिर्फ़ आजादी ही नहीं दिलायी, बल्कि और देशों के लिये नमूना पेश किया। संसार मे सुख और शांति क़ायम करना उनके जीवन का उद्देश्य था। इस बात को सामने रखकर वे हर काम करते थे। जो संघ उन्होंने बनाये इसी इरादे को पूरा करने के लिये बनाये। सारे संघ अलग अलग समय पर बने। सब एक-दूसरे से अलग हैं। कभी कभी विरोधी भी माद्रम पड़े हों। लेकिन सबका ध्येय, सबका मक़सद, एक ही रहा है। जिस तरह की समाज-रचना गांधीजी चाहते थे, उसमें मदद पहुँचाने के उनके ये साधन थे।

समूचे जीवन को ऊपर उठाने की कोशिश

इनके जरिये तमाम लोगों के जीवन को ऊपर उठाने की कोशिश उन्होंने की। जीवन के किसी एक ही पहलू को उन्होंने ऊपर उठाया हो, ऐसी बात नहीं। इन सब संघों को मिला कर उन्होंने हमारी पूरी जिन्दगी को ऊपर उठाया। अलग अलग संघोंने समाज के अलग अलग हिस्सों को स्पर्श किया। सबको मिला कर सामूहिकरूप से समाज को आगे बढ़ाने का उनका इरादा था। पहले मक़सद ब्रिटिशों के पंजोंमें से निकलना था। देशको स्वतंत्र बनाने का मक़सद उन्होंने अपने सामने रखा। और कुछ हदतक उसमें कामयाब हुए। मगर सिर्फ़ ब्रिटिशों के पंजे से निकलना काफी नहीं है। इसलिये इन संघों के द्वारा आगे किस तरह कदम बढ़ाया जाय इस पर विचार करना है। गांधीजी के अनुयायी आज प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों में अधिकार पर हैं। जिस रास्तेपर गांधीजी चलना चाहते थे उसमें इन सरकारों से हम कौनसी मदद पा सकते हैं, यह भी देखना है।

दो मुख्य प्रश्न

मतलब यह कि हमें ख़ासतौर पर दो बातों का विचार करना है। एक तो गांधीजी के विचारों का फैलाव इस देश में किस तरह करें और दूसरे देशों के लिये एक नमूना पेश करें। पहले यह सोच लेना चाहिये कि ये रचनात्मक संघ इस मकसद को पूरा करने में हमारी मदद कर सकते हैं या नहीं। और अगर कर सकते हैं, तो अलग अलग रह कर या मिलकर, या फिर एक संस्था के रूप में एक होकर। एक सवाल तो यह है।

दूसरा सवाल यह है कि गांधीविचार को माननेवालों का कोई संगठन हो या न हो? आज एक-दूसरे से मदद पाने और देने के लिये कोई ज़रिया नहीं है। इन संघों के अलावा देश के अन्दर अनगिनत लोग, जो गांधीजी के सिद्धान्तों को किसी न किसी रूप में मानकर चलते हैं, उनका कोई संगठन बनाने की जरूरत है या नहीं? सारे देश में बिखरे हुए लोगों को एक सूत्र में बांधने की जरूरत हमें मालूम होती है या नहीं? आज कई तरह की संस्थाएँ और कई तरह के संगठन मैदान में हैं। सबसे बड़ी संस्था कांग्रेस है। दूसरी भी जमायतें अपना अपना संगठन बनाकर अपने अपने मकसद को लेकर काम कर रही हैं। क्या हमारे लिये यह मुनासिब होगा कि हम गांधीजी के नाम पर दूसरी संस्थाओं के मुकाबले में अपना एक नया संगठन खड़ा करें? साफ है कि हम होड़ के मैदान में कूदनेवाली संस्था नहीं चाहते। होड़ में न कूदकर अपने तौर-तरीके से, जीवन और जिन्दगी से, उत्तम से उत्तम, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ, अच्छे से अच्छा, रास्ता बतलानेवाली संस्था चाहिये।

सरकार और कांग्रेस से संबंध

कांग्रेस और सरकार का एक-दूसरे की तरफ से क्या रुख होगा, उनका कैसा ताल्लुक होगा, इसके बारे में कोई नीति निश्चित नहीं हो सकी है। आज की सरकार में और कांग्रेस में कोई अन्तर नहीं है। गवर्नमेंट में जो लोग हैं वे हमारे हैं, हमारे विचार के हैं, हमारे भेजे हुए हैं। वे अपनी मर्जी से वहाँ नहीं बैठे हैं। कांग्रेसने उन्हें बैठाया है। उनमें और हममें भेद नहीं। फिर भी सरकारी और गैर-सरकारी इजारों में फर्क होता ही है। इसलिये उनके साथ हमारा क्या ताल्लुक हो, इसका फैसला कर लेना चाहिये।

साथ ही साथ यह भी सोच लेना होगा कि कांग्रेस के साथ हमारा सम्बन्ध किस तरह का हो। चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ, ये सब संघ कांग्रेस के प्रस्ताव से बने। वे कांग्रेस को मानते हैं और कांग्रेस उनको अपना समझती है।

यही दो-तीन सवाल हमारे सामने विचार के लिये हैं। अिनपर दो-तीन दिन से कुछ भाअी मिलकर विचार कर रहे हैं। अुनके विचार में से जो प्रस्ताव तैयार होगा वह आपके सामने आयेगा। पंडितजी और मौलाना साहब शायद कल चले जायँ। अुनके विचार जानने का मौका हम लोगों को मिले, अिसलिये ये प्रश्न आज मैंने रख दिये।

आदमी की सतह से गिरानेवाली बातें

यह काम बहुत बड़ा है। पहले हम अपनी दिक्कतें लेकर गांधीजी के पास जाते थे। वे उन्हें हलका कर देते थे। अब वह काम मुश्किल हो गया है। आज मुल्क के सामने बड़े बड़े सवाल हैं जिनमें सबसे बड़ा वह है जिसके सबब से गांधीजी की जान गयी। बड़ी तकलीफ़देह हालत है। सब तरफ़ एक अजीब हवा फैल रही है। जो लोग सत्य-अहिंसाकी बात नहीं मानते उनकी भी एक हद—अेक मर्यादा—होती है। हिंसा की कार्रवाई की भी एक हद हुआ करती है। लेकिन पिछले पाँच-

छः महीनों में जो देखा उसे गिरा हुआ आदमी भी बुरा मानेगा। ये सारी बातें आदमी की सतह को गिराने वाली हुईं। औरतोंपर हाथ उठाना, मासूम बच्चों को काट डालना, बीमारों और बूढ़ों पर भी रहम न करना, ये सारी बातें हमको इन्सानियत से गिराने वाली हैं। ये काम चाहे मुसलमानोंने किये हों, चाहे हिन्दुओंने या सिक्खों ने किये हों, इतने बड़े पैमाने पर; ऐसी हैवानियत की मिसाल इतिहास में और कहीं नहीं मिलेगी। गांधीजी इसीके खिलाफ़ लड़ रहे थे। इसीमें उनकी जान गयी।

इन्सानियत बचाना पहला काम

हमें दूसरी संस्थाओं के साथ होड़में पड़ने की ज़रूरत नहीं। लेकिन एक ऐसी जमायत ज़रूर हो जो अपने विचार और ज़िन्दगीसे लोगों को बताये कि किस तरह बरतना चाहिये। इन्सान आख़िर इन्सान है। वह अपनी इन्सानियतसे गिरे नहीं। हिंसासे काम ले तो भी अपनी इन्सानियत सँभाले। यह बताना सबसे बड़ा काम है। हमें अपनी कोई अलग ख़ास गिने-चुने लोगों की जमायत बनाकर नहीं बैठना है। यह कोई गांधीजी के चेलों का सम्प्रदाय बनाने की कोशिश नहीं है।

मौजूदा रचनात्मक संघों को अेक करना या कोई एक नया संघ कायम करना, ये सवाल भी अपने में बड़े तो हैं। लेकिन इन्सानियत की हिफाजत करना सबसे अहम सवाल है। गांधी सेवासंघ या गांधीजी के अनुयायियों की कोई संस्था बने या न बने, लोग उनके सिद्धान्तों को माननेवाले हों या न हों; अिसकी फिकर हम न करें। लेकिन मनुष्यता चोर, डाकू, ठगोंतक की हदसे नीचे तो न गिरे, अिसकी खबरदारी रखें। आज तो चोर, डाकू और ठगों के स्टैंडर्डसे भी नीचे गिरने का डर है। तब उससे ऊपर उठने का सवाल कहाँसे हो? हमारे सामने यह नैतिक प्रश्न है। अबतक यह डर बना है कि कहीं फिर उबाल आ गया, फिर हवा बिगड़ी, तो फिर स्टैंडर्ड का गिरना ग़ैर-मुमकिन नहीं। एक दफा स्टैंडर्ड गिरना शुरू होनेपर वह अेक ही रास्ते से नहीं गिरता, गिरने के रास्ते अनगिनत होते हैं। मुसलमान सामने नहीं रहे, तो वही बात इस इलाके में हिन्दू और हिन्दुओं के दरमियान भी देखने में आयी। ताज्जुब नहीं कि कल हिन्दू और सिक्खों के दरमियान भी देखने में आये। जब भीतर मवाद पैदा हो जाता है तब वह कहाँसे फूट निकलेगा अिसका कोई ठिकाना नहीं।

मैं अिन सब सवालों को अिसलिये पेश कर देता हूँ कि आप सब उनपर विचार करें और उनका हल निकालें। मैं विनोबाजी से निवेदन करता हूँ कि वे इस मौक़ेपर कुछ कहें।

विनोबा—सदर साहब, पंडितजी, भाइयो और बहनो,

गांधीजी का पाला हुआ जंगली जानवर

आज मुझे यहाँ बोलना होगा यह तो अभी ही मुझे मालूम हुआ है। किशोरलालभाई के बदले मुझे बोलने के लिये कहा गया है। किशोरलालभाई का आप लोगों से परिचय है। वे गांधी सेवासंघ के पांच साल तक अध्यक्ष रहे हैं। उनके लिये यह काम आसान था। मेरी दशा इससे उलटी है।

यद्यपि मैं गांधीजी के पास रहा हूँ, तो भी उनका पाला हुआ एक जंगली जानवर हूँ। आपसे निजी तौर पर कम से कम परिचित कोई था, तो मैं था। गांधी सेवासंघ का मेम्बर बनने के लिये दो-तीन दफा मुझे सूचित किया गया। लेकिन मैंने स्वीकार नहीं किया। उसके कारणों में मैं नहीं उतरता।

रूप से नाम बड़ा

आप में से बहुतों के चेहरे मेरे लिये नये हैं। यहाँ आप लोगों के लिये जो कोठरियाँ बनी हैं, उनके दरवाजे पर अंदर रहनेवालों के नाम लिखे हैं। एक दिन शाम को उनको पढ़ता हुआ जा रहा था। एक भाओी ने पूछा "नाम तो आप पढ़ते जा रहे हैं, लेकिन अंदर बैठे हुए लोगों के रूप से क्या आप ताल्लुक नहीं रखते?" मैंने विनोद में कहा, "रूप से नाम बड़ा है। जब नाम ही मैं कम जानता हूं तो फिर रूप क्या जानूं?"

मेरे अपरिचय की हद हो गयी

लेकिन मेरे अपरिचय की परसों तो हद हो गई। रात को तीन बजे अकेला उठकर आश्रम की प्रार्थना में शरीक होने के लिए निकला। रास्ते में अंधेरा छाया हुआ था, जो मेरा एकमात्र साथी था। बीच में एक कुत्ते ने आवाज दी, शायद अपने मालिक को जागृत करने के लिये। मैं चुपचाप आश्रम में पहुँचकर प्रार्थना की जगह बैठ गया। बाद में प्रार्थना के लिये लोग आ गये। उन्होंने मुझे देख लिया और मैं ही प्रार्थना चलाऊं ऐसा मुझसे कहा। मैंने कहा, 'मैं आपकी प्रार्थना सुनूंगा।' इसका कारण यह था कि सेवाग्राम-आश्रम की प्रार्थना का सिलसिला मैं नहीं जानता था। यह देख मैंने अपने मन में कहा, "अब तो तेरे अपरिचय की हद हो गयी।" वैसे प्रार्थना तो भगवान की मैं भी करता हूँ, जैसे मुझे सूझती है। गांधीजी के बनाए हुए ढाँचे में ही प्रार्थना करनी चाहिये, ऐसा मैंने नहीं माना है।

पंडितजी बापूजी के वारिस

तो, ऐसे मनुष्य के लिये आपकी तरफ से खड़ा होकर कुछ कहना कितना कठिन है। यह आप समझ सकेंगे। फिर भी आज्ञा हुई है तो मन में जो विचार उठते हैं, वे आपके सामने रख देता हूँ। हमारे बुजर्ग नेता भी यहाँ बैठे हैं। उनसे मार्ग-दर्शन की हम आशा रखते हैं। बापूजी ने तो कई बार कहा था कि उनके पीछे पंडितजीही उनके वारिस होंगे। इसलिये उनके मार्गदर्शन के तो हम हकदार भी हैं।

देश इतना क्यों गिरा?

पहली बात वह कहना चाहता हूँ जिसका जिक्र सदर साहब ने किया है। बार बार वह बात दिल में आती है। इतना बड़ा देश अपनी आजादी पाते ही फौरन इतना गिर जाता है जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। इस देश की यह हालत क्यों हुई? "आज दुनिया भर में यह हुआ है

और महायुद्ध का यह नतीजा है", इतना कह देने से हमारा काम नहीं हो जाता। हमारा दावा तो यह है कि हमने अपनी आजादी विशेष तरीके से हासिल की है, जैसे दूसरे देशों ने नहीं की। यद्यपि वह तारीका अख्तियार करने का हमारा ढंग कमजोर था। फिर भी हम कामयाब हुए। दुनिया भी हमारा दावा मंजूर करती है। लेकिन ऐसा दावा करनेवाले लोग अेकाअेक कैसे गिर गये? इसका कारण मैं ढूँढ रहा हूँ। लेकिन ठीक जवाब नहीं मिल रहा है। हम कारणों को जानेंगे तो उनका उपाय कर सकते हैं।

भारतीय भावना बनाम प्रान्तीय भावना

दूसरी विचार करने की बात प्रांतीय भावना की है। जितना संस्कृत साहित्य मैंने पढ़ा, उसमें देशप्रेम का जहाँ जहाँ जिक्र आया है, वहा, "दुर्लभं भारते जन्म", अैसा ही वचन आया है। बंगाल में या महाराष्ट्र में, या गुजरात में जन्म लेना दुर्लभ है, अैसा वचन कहीं नहीं मिला। यह उस समय की बात है जब आज के जैसे रेल्वे, पोस्ट आदि ताल्लुक के साधन नहीं थे। उस जमाने में भी लोगों ने भारत को एक माना और उसमें जन्म लेना भाग्य समझा। उसीको स्वतंत्र करने के लिये देश भर में हमने आन्दोलन किया और सबने मिल कर उसमें हिस्सा लिया। लेकिन अब स्वतंन्त्रता प्राप्त करने पर प्रान्तीय भेद इतने जोरों में क्यों हैं? उनका दौर बढ़ ही रहा है। उसको कैसे रोका जाय? वह रोका न जा सका तो आगे चल कर बहुत खतरा पैदा हो सकता है। क्यों कि इसमें वही पागलपन के अंश हैं जो हिंदू-मुस्लिम सवाल में है।

साधनशुद्धि का महत्त्व

अब तीसरी महत्त्व की बात साधन-शुद्धि की है। मैं सोचता हूँ कि क्या यह कभी मुमकिन हो सकता है कि हिन्दुस्तान भर में एक ही विचार, एक ही आइडियालॉजी चलेगी? अलग अलग विचार रहने ही वाले हैं। यह अगर तय है, तो क्या यह जरूरी नहीं है कि ऐसे मुख्तलिफ विचार रखनेवालों को इस नतीजे पर आना ही चाहिये कि अपने विचारों के प्रचार में अशुद्ध या हिंसात्मक साधनों का उपयोग न करें। बापू ने अपनी जिंदगी भर हमें यही सिखाया कि, "जैसे हमारे साधन वैसे ही हमारे मकसद होंगे।" यानी साधनों का रंग मकसद पर चढ़ता है। इसलिये ज़रूरी होता है कि अच्छे मकसद के लिये साधन भी अच्छे ही होने चाहिये। गांधीजी की हत्या के पीछे एक बड़ी जमात है, वह हत्या की योजना बनाती है, हत्या होने पर आनंद मनाने की तैयारियाँ करती है; और उसके सारे आयोजन का हम लोगों को पता तक नहीं रहता। क्या वैसी जमात, अगर हम साधन-शुद्धि का विचार छोड़ देते हैं तो, तारीफ के काबिल नहीं गिनी जायगी? अपना मकसद पूरा करने के लिये चाहे जैसे साधन अगर मान्य समझे जाते हैं तो फिर किसका मकसद ठीक है और किसका बे-ठीक, यह कौन तय करेगा? हरेक को अपना मकसद ठीक ही लगता है। लेकिन कितने ही अलग अलग मकसद क्यों न हों, उनकी प्राप्ति के लिये हिंसा और असत्य का उपयोग तो करना ही नहीं है, इस विषय में सब मिलकर एक मोर्चा बना सकेंगे तो वह बड़ी चीज होगी। हमें नये सिरे से प्लैनिंग करना है, नयी

व्यवस्था स्थापित करनी है, नव-रचना करनी है, इत्यादि प्रश्न इस समय जरा बाजू रख कर यही खयाल पहले पक्का कर लें कि हमें भले साधनों का ही उपयोग करना है।

नाम नहीं काम से मतलब

जिनका ऐसा निश्चय है वे सब हमारे साथ ही हैं, ऐसा हम समझें। हमारी एक बिरादरी स्थापन करने का यहाँ विचार हो रहा है। उसका नाम क्या हो, कौन कौन उसमें दाखिल किये जायँ, आदि चर्चा चली है। मैंने कहा मुझे नाम नहीं, काम चाहिये। साधन के बारे में हम अपना निश्चय करें। वह हो जाय तो उसके माननेवालों के नामों की मुझे जरूरत नहीं है। उनके काम ही दुनिया को दिखायी देंगे। कोई खास संघ स्थापन रकने से क्या होगा? संघ में तो चंद लोगों का ही समावेश होता है।

गांधीजी का संघ सारा हिन्दुस्तान

लेकिन गांधीजी का संघ सारा हिन्दुस्तान है, यह हमें समझना चाहिये। एक भाई मुझे पूछ रहे थे 'गांधीजी के स्मरण के लिये अशोक-स्तंभ जैसे स्तंभ खड़े किये जायँ तो कैसे?' मैंने कहा, "जनता से जाकर पूछो कि वह अशोक के स्तंभों को कितना जानती है? जनता को अशोक के नाम का भी पता नहीं। इतिहास में कई राजा हो गये। उनमें अशोक भी हुआ। वह जरूर एक महान् और दयालु राजा था लेकिन जनता उसको कहाँ जानती है? वह तो कबीर, नानक, तुलसीदास को जानती है। वैसे ही गांधीजी का जनता के हृदय में स्थान है। उनके स्मरण के लिये स्तंभों की क्या जरूरत? उनका तो विचार लेकर हमें जनता में पहुँचना चाहिये।"

उनका मुख्य विचार

उनका मुख्य विचार सत्य और शुद्धि का था। साधन-शुद्धि का प्रयोग बड़े पैमाने पर गांधीजी ने ही पहली बार किया। मानव-इतिहास में वह एक नई चीज थी। इसी विचार को दृढ करके बाकी के सारे विचार-भेदों को हम गौण समझें तो कितना अच्छा होगा?

ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का अमल

और एक बात। गांधीजी ने 'ट्रस्टीशिप' शब्द का उपयोग किया। ऐसे शब्दों से जैसे कुछ लाभ होता है, वैसे नुकसान भी होता है। ट्रस्टीशिप शब्द के सारे सहचारी भाव (असोसिएशन्स) अच्छे नहीं हैं। आजकल कुछ बुरे सहचारी भाव भी उसके साथ जुड़ गये हैं। 'ट्रस्टी-शिप' शब्द की परिभाषा तो हम बोलते हैं, लेकिन उसके पीछे जो विचार है, उसका अमल करने का बंधन नहीं मानते। ऐसा ही रहेगा तो मुझे डर है कि हिंसा टलनेवाली नहीं है। हमारे यहाँ गरीबी इस हद तक है कि गरीब जनता को दूसरी तरह से उभाड़ना बहुत ही आसान है। और फिर वह अहिंसा से ही काम लेगी ऐसा नहीं कह सकते। इसलिये हमें निश्चय करना चाहिये कि ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का

अमल करने की हम पूरी कोशिश करेंगे और ज्यादह जायदाद नहीं रखेंगे। "इतनी जायदाद जायज और इतनी नाजायज, ऐसी कोई लकीर थोड़े ही खींच सकते हैं," ऐसा कह कर यह बात टाल देंगे तो आगे आनेवाला खतरा अटल है। ट्रस्टीशिप शब्द की पावनता का आधार लेकर हमारा संसार हम वैसे ही चलावेंगे, तो अच्छा नाम भी दुर्नाम बन जायगा।

पं० जवाहरलाल—राष्ट्रपतिजी, बहनो और भाइयो।

मेरी शर्म और परेशानी

मालूम नहीं आप लोगों के दिल में कौनसे विचार आ रहे हैं। मेरे दिल में यहाँ आकर तरह तरह के विचार उठते हैं। जहाँ गांधीजी रहते थे वहाँ इतना पहरा और पुलिस कहाँ तक मौज़ूँ है? मैं परेशान हूँ। अगर हमारी वजह से इतना सारा इन्तजाम किया गया है, तो मैं शर्मिंदा हूँ। सोचने लगता हूँ कि हम जाना तो किस तरफ चाहते हैं, मगर किस तरफ़ बढ़ते जाते हैं। इधर हम हिंसा-अहिंसा की चर्चा करें और उधर फ़िज़ा फ़ौजी होती जाय, तो मुझे लड़ाई की तैयारी करनी पड़ती है। रोज़ इस तरह के पेंच में पड़ जाते हैं। सुबह से आधी रात तक, जैसे एक मशीन में पड़कर काम करते रहते हैं। सोचने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती। मेरे दिमाग में कोई सफ़ाई नहीं कि हम किधर जा रहे हैं—अपने मक़सद की तरफ़ जा रहे हैं या दूसरी तरफ! मैं आपको सलाह क्या दूँ? सिर्फ अपने दिमाग की परेशानियाँ आपके सामने रखे देता हूँ।

भीतरी ख़तरा

विनोबाजी ने कहा कि हमें इस वक्त बुनियादी बातों को सोचना चाहिये। मैं इससे सहमत हूँ। आज हमारे लिये जो बुनियादी बात है वह यह कि हमारी आयी हुई आज़ादी किस तरह बनी रहे। हमारी आज़ादी को खतरा बाहर से नहीं। इस वक़्त बाहर से हमले का अन्देशा नहीं है। डर है आपसकी हिंसा से—भीतरी लड़ाई से। पहले जब आज़ादी की लड़ाई चलती थी और हिंसा-अहिंसा के सवाल से दिमाग परेशान हो जाता था, तो बापू के पास चला जाता था। उनसे बहुत चर्चा और बहस करने के बाद मेरे दिल पर यह बात जम गयी कि अंग्रेज़ों के खिलाफ भी अगर हम हिंसा से काम लेंगे तो हमारी भलाई नहीं होगी। अंग्रेज़ों के खिलाफ तो थोड़ीसी हिंसा कर पायेंगे, लेकिन वह हिंसा पलट कर आपस की हिंसा का रूप ले लेगी, और फिर क्या होगा, इसकी कल्पना भी करना मुश्किल था। जहाँ आपस की हिंसा शुरू हुई कि फिर देश के टुकडे टुकडे हो जायेंगे। वह आज़ाद नहीं रह पायेगा। आपस की हिंसाका दरवाजा अगर खुल जायेगा तो वह कहीं नहीं रुकेगी। इसलिये हमको यह सोच लेना है कि अव्वल कौन-सी बात हो, दूसरी कौनसी और तीसरी कौनसी। पहली चीज़ पहले रखनी चाहिये।

हम क्यों कमज़ोर हो गये हैं? इस बात पर गौर करना ज़रूरी है। यह कहना आसान है कि पाकिस्तान का और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कसूर है। लेकिन इससे हम कैसे छूट सकते हैं?

आखिर हमारा भी तो कसूर है। हम परिस्थिति को सम्हाल न सके। हमने हिंसा का रूप देखा। सिलसिला-सा जारी हो गया। एक मंत्री की हैसियत से मैं उसका मुकाबला और किस तरह करता? मेरा फ़र्ज़ हो जाता है कि मैं उस हिंसा का सामना करूं। क्यों कि मैं देखता हूँ कि अगर उसे मैं न करूँ तो हिंसा कहीं नहीं रुकेगी।

विनोबाजी की बात की अहमियत

इस दृष्टि से विनोबाजी की बात बहुत माकूल थी। उन्होंने जो सवाल उठाया वह दरअसल बुनियादी चीज है। राजनैतिक मैदान में हम में से हर एक लम्बी चौडी दलीलें देता है, ऊँची ऊँची बातें करता है। लेकिन अव्वल कौन-सी चीज़ हो इसके बारे में किसी का दिमाग साफ नहीं है। अगर होता तो फिर खतरा नहीं रहता। जो उपाय हम काम में लाते हैं उनके बारे में पहले कोई नहीं सोचता। बाद में पता चलता है कि वे अच्छे थे या बुरे। नतीजे परसे उपायों की अच्छाई या बुराई का फैसला किया जाता है। लेकिन बाद में पता चलने से क्या फायदा?

नेक नीयत और नेक तरीका

इसलिये एक दूसरी दलील दी जाती है। जो देखने में बड़ी सुहावनी भी लगती है। यह बहस पुरानी ही है कि अगर काम अच्छा है तो उसके लिये जिन अच्छे-बुरे उपायों का अिस्तेमाल किया जाय वे भी अच्छे हैं। जमानों से यह बहस चलती आ रही है। क्योंकि ये सवाल बड़े पेचीदा होते हैं। उनका 'हाँ' या 'ना' में जवाब नही मिलता। बहुत तकलीफ और दिमागी परेशानी उठाने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि ग़लत क़दम उठाने का नतीजा बुरा ही होता है। बात बिलकुल अदना-सी है। लेकिन उसके नतीजे बहुत गहरे हो सकते हैं। राजनीति में वक्ती फ़ायदा देखा जाता है। जरूरत इस बातकी है कि चाहे वक्ती फायदा हो या न हो, जो क़दम उठाया जाये वह सही क़दम हो। जिन्दगी के तमाम क्षेत्रों में यह उसूल बुनियादी है। इसके बारे में अगर हमारा दिमाग साफ हो, तो सारे मामले सुलझ सकते हैं।

देखिये, आज दुनिया का हाल क्या है। हमारे आपके देखते देखते दो लड़ाइयाँ हो चुकीं। मुमकिन है कि तीसरी जंग भी छिड़ जाय। उससे हम दूर रहना चाहें तो रह नहीं सकते। यों अलग रहें, तो भी दुनिया में लगी हुई आग की आँच से बच नहीं पायेंगे। सरकार के एक सदस्य के नाते मैं चुपचाप कैसे बैठ सकता हूँ? मुझे अपने देशके बचाव की माकूल तैयारी करनी पड़ेगी। यह एक सवाल हमारे सामने है। हमारी नीयत तो अच्छी है। लेकिन हम किन अच्छे साधनों को इस्तेमाल करें इसका फैसला करना आसान नहीं। अगर नीयत अच्छी है तो दूसरी बातों को नजर-अन्दाज किया जाय, यह तो वही पुरानी बात है।

निजी जायदाद का सवाल

दूसरी बात जनता के ऊपर जो बोझ है, जो शोषण होता है, उसको हटाने का क्या तरीका हो? विनोबाजी ने सलाह दी कि हममें से हरएक को जरूरत से ज्यादा नहीं रखना चाहिये। गैरजरूरी

चीजों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। उसूली और बुनियादी तौर पर उनकी राय ठीक है। हाँ, इसमें मतभेद हो सकता है कि जरूरी क्या है और गैर-जरूरी क्या है। बाज़ बातों पर आप मुझ से ज्यादा जानते हैं। उन्हीं में से यह भी एक बात है। मैं विनोबाजी की बात की ताईद करता हूँ। लेकिन ज़रूरी और गैर-जरूरी का सवाल गहरा है। इसलिये इस मामले में किसी ठीक नतीजे पर हम नहीं पहुँच सकते। और न कोई राय देने का अधिकार ही रखता हूँ।

रोजमर्रा के सवाल

इन उसूली बातों के अलावा हमारे रोजमर्रा के सवाल हैं। उनका सामना हम न करें तो उत्तरभारत की फिजा काबू में नहीं रह सकती। डाक्टर चोइथराम गिड्वानी का एक लम्बा तार यहाँ पहुँचा है। वे कहते हैं इस कान्फरन्स को शरणार्थियों के सवाल की तरफ पहले ध्यान देना चाहिये। वह सबसे अहम सवाल है। जिस फ़िज़ा से शरणार्थियों का सवाल पैदा हुआ और गांधीजी की मौत हुई उसकी पकड़ कैसे हो? फौज और पुलीस से उसका मुकाबला हम नहीं कर सकते। इन्सान अपनी सेवा और त्याग से ही, कुरबानी और खिदमत से ही, अिसका रास्ता खोज सकता है। यह काम किस तरह से किया जाय? यह हमारे लिये गौरतलब सवाल है। आप चाहे दिल्ली में जाकर उसका मुकाबला करें या पंजाब में जाकर। कहीं क्यों न जायँ, लेकिन इस सवाल को हल करना है। इस ज़हर को क़ब्जे में लाना है।

काँग्रेस की कद्र क्यों गिरी?

आखिर हिन्दुस्तान काबू से बाहर क्यों हुआ? इसकी बहुतसी वजूहात हैं। जहाँतक कांग्रेस-वालों का ताल्लुक है, कांग्रेसवाले चुनावों के झगड़ों में और अपनी सरकारें चलाने में इतने पड़े कि जनता की सेवा के लिये उन्हें समय ही नहीं रहता था। जनता के और हमारे बीच एक दीवार खड़ी हो गयी, काँग्रेस की क़द्र गिरती गयी। कुछ ख़ास ख़ास नेताओं का आदर और असर भले ही रह गया हो। काँग्रेसवालों के जाहिरा झगड़े लोगों के सामने आने लगे। वे सिर्फ़ ऊपरी काम करने में मशगूल रहे। सेवाका ख़याल किसी को न रहा। इसलिये उनके और जनता के बीचमें दूसरे लोग आकर खड़े हो गये। हमारे सामने सवाल यह है कि कांग्रेस को कैसे सुधारें? आज़ादी हासिल करने का उसका अैतिहासिक काम पूरा हो गया। लेकिन आगे के लिये क्या हो? इस मामले में हमारा दिमाग़ साफ़ होना चाहिये।

ज़हर की हद हो गयी

देश में जो जातीयता की और हिंसा की लहर फैल रही है उसका मुकाबला करना हम कांग्रेस-वालों का काम है। यह ज़हर इतना फैला कि उसने हमें तबाह कर डाला। दुनिया के बड़े से बड़े आदमी की जान गयी। कहा तो यहाँ तक जाता है कि लोगोंने मिठाइयाँ खायीं और खिलायीं। बात सही हो या गलत। लेकिन जिस हवा में इस तरह के इलज़ाम भी किये जा सकते हैं, उस हवा में
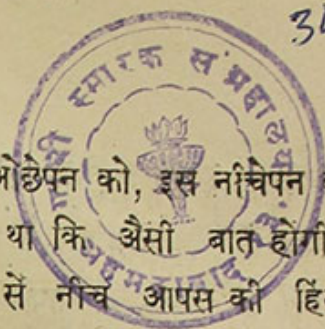
ज़हरीलेपनकी हद हो गयी। इस कमीनेपन को, इस छोटेपन को, इस ओछेपन को, इस नीचेपन को कैसे दूर करें? इसे देखकर मुझे सदमा पहुँचा। मैं सोच नहीं सकता था कि ऐसी बात होगी। पुराने आतंकवादी अकसर गोरों की हत्या करते थे। लेकिन यह तो नीच से नीच आपस की हिंसा हुई। इसे देखकर दिल टूट जाता है। इसे काबूमें लाना सरकार की ताक़त से बाहर है। यह कार्यकर्ताओं का काम है। उन्हींका नौजवानों पर असर पड़ सकता है।

मैं एक अदना अनुयायी

मैंने सिर्फ अपने दिमाग़ की परेशानियाँ आपके सामने रखी हैं। और मैं कर ही क्या सकता था? आज रातको फिर मुझे जाना है। फिर वही काम की मशीन शुरू हो जायगी। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आपके जो फैसले होंगे उन्हें पूरे करने में मदद पहुँचाने की कोशिश करूँगा। आप मुझ से मार्गदर्शन न चाहें। मुझे भी अपने कैंप-फॉलोअर्समें से एक समझियेगा।

मौलाना आज़ाद—जनाब सदर,

बीमार के लिए प्रेम हो

जब कभी कोई आदमी बीमार हो जाता है, तब छोटे-बड़े सभी अज़ीज़-रिश्तेदार परेशान होते हैं और चाहते हैं कि यह जल्द से जल्द चंगा हो जाय। डाक्टर आते हैं और सोचते हैं कि यह बीमारी आयी तो कैसे आयी, इसका कारण क्या हो सकता है? हरएक का दिमाग अपने अपने ढंग से काम करता है। इसमें एक से ज्यादा रायें हो सकती हैं। यह बिलकुल कुदरती है। कोई डाक्टर कहता है, खानेपीने की चूक हुई। कोई कहता है, किसी दूसरी बात से हुई। इलाज के बारे में भी अलग अलग रायें हो सकती हैं। कोई कहेगा, यह इलाज करना चाहिये, कोई कहेगा, वह इलाज अकसीर है। लेकिन एक बात ऐसी है जिसमें दो रायें नहीं हो सकती। हर शख्स, जिसके दिलमें बीमार के लिये प्रेम हो, यही चाहेगा कि वह जल्द से जल्द अच्छा हो। इसमें दो रायें हो ही नहीं सकतीं। मेरी आपसे दरख्वास्त है कि आप सारा मामला इस रोशनी में देखें।

मर्ज़ का एकही इलाज

हममें से ऐसा कौन है जिसके दिलपर यह सूरतेहालात देखकर जख्म न लगा हो। इस मुल्क में जो लोग बसते हैं उनमें हिंन्दू, मुसलमान, सिक्ख, सभी हैं। एक साल से जो तजुरबा हो रहा है उससे हमारे-आपके, सभीके, दिलको गहरी चोट लगी है। मुसलमानों के हाथ खून से लथपथ हैं तो हिन्दुओं के हाथ भी खून से लाल हैं और सिक्ख का हाथ भी रँगा हुआ है। कोई भी नहीं कह सकता कि मेरे हाथपर खून के धब्बे नहीं हैं। औरतों और बच्चों के लिये भी कोई पनाह नहीं। कैसा खतरनाक मर्ज़ है! इस बीमारी का कारण क्या है? अगर वह ठीक ठीक मालूम न हो तो इलाज करने में फर्क हो सकता है। कम से कम हमारी राय अलग अलग नहीं हो सकती।

बापूकी जिन्दगी हम सब के लिये एक रोशनी थीं। उस रोशनी के उजाले में इस सवाल को हम सब देखते हैं। इसलिये कम से कम हमारी राय तो एक ही होनी चाहिये। इसका इलाज सिवा उसके कोई नहीं हो सकता जो बापूने हमारे सामने तजवीज किया था। जो ऐसे लोग हैं कि बापूकी जिन्दगी में उनके कदमों से लगे हुए थे, क्या उन्हीं का यह काम नहीं हैं कि बापू की बतलायी हुई दवा लेकर वे मुल्क के हर गोशे में जायँ? यह बोझ आपके कंधों पर पड़ा है। आप वही जाम, वही प्याला दवा का, साथ में लें और बीमार हिन्दुस्तान को पिलायें।

बीच की एक चीज़ बने

कांग्रेस के अन्दर भी बापू की ही वजह से जान थी। और कुछ ऐसे संघ भी थे, जो कामों को अंजाम देते थे। जैसे तालीमी संघ है, चरखा संघ है, हिन्दुस्तानी प्रचारसभा है। अिन सबको बापू की ज़िन्दगी से उजाला मिला था। अब वह रोशनी देनेवाली चीज हट गयी है। उसकी खाली जगह नहीं भरी जा सकती। जरूरी है कि कोई मशीनरी बने। न सिर्फ हिन्दुस्तान में, बल्कि सारी दुनिया में, ऐसी कोई शख्सियत है जो बापू की जगह भर सके। इसलिये एक बीचकी चीज बने। दस-पन्द्रह आदमियों की एक कमिटी बना लें।—ऐसे आदमियों की जो बापू के कदमों के पास थे, और बापू की बातों को पालते हैं। ये लोग बापू के तमाम कामों को कायम रखें और उन्हें शक्ति दें। उनके कामों के अन्दर जो रूह थी वह असली चीज है। सिर्फ बाहर की शक्ल बनाये रखने से काम पूरा नहीं होता। ये तमाम संघ एक-दूसरे के साथ जुड़े रहें और उनके अन्दर की रूह को कायम रखें।

प्रेम का हथियार कौन बाँधे

उसके बाद भी एक चीज बाकी रह जाती है। मुल्क की हालत। यह मामला बहुत अहम है। खून के एक एक ज़र्रे में बीमारी पैदा हो गयी है। क्या बापू के तरीके से इसके इलाज के बारे में हम भी कुछ कर सकते हैं? बापू का एक अनोखा ढंग था। नवाखाली चले गये। रास्ते में क्या क्या मुश्किलें नहीं आयीं? फिर भी वे नहीं हारे। बिहार गये, कलकत्ते गये, दिल्ली गये। वे थकावट जानते ही नहीं थे। सिर्फ हमारी सरकार हो जाने से इस बीमारी का इलाज नहीं होगा। वह तो बापू के ढंगसे ही दूर होगी। उन्होंने समझा मुल्क की किस्मत का फैसला दिल्ली में ही होनेवाला है। दिल्ली में हमारी सरकार मौजूद है। फिर भी वे इस बीमारी का अपने ढंगसे इलाज करने के लिये दिल्ली पहुँचे। इसी राह में उन्होंने अपनी जान दे दी। सबसे ज्यादा उनके कदमों से लगे हुए आप लोग थे। आपही सबसे नजदीक के थे। उनके काम को पूरा करने की जिम्मेदारी सबसे ज्यादा आपपर है। कागज के नक्शों से यह मसला हल नहीं होगा। जितने भी सौ-दोसौ आप हैं, उठें, उन्हीं हलकों में जायँ और उस बोझको उठायें जो गांधीजी ने उठाया था। आप अपने प्रेम के हथियार से लोगों के हथियार कुन्द कर दें। आपकी सरकार है। लेकिन उसके हाथ-पाँव

आप हैं। सरकार के पास सब से बड़ी ताकत आप हैं। आपसे बढ़कर कोई तलवार नहीं, कोई दौलत नहीं। आज या कल अगर फैसला नहीं करेंगे तो यह दौलत काम में नहीं लगेगी, बरबाद होगी।

बाहरी बन्धन की जरूरत

आप जाहिरी नक्शा कुछ भी बनायें, मुझे कोई ऐतराज नहीं। विनोबा ने जो बात कही, वह बिलकुल ठीक है। लेकिन विनोबा ने ऊँची जगह से देखा। उनका अपना जँचातुला दिमाग है। वे हर हालत में अपने आपको सम्हाल लेते हैं। मैं मानता हूँ कि आज के ढंग की मेम्बरी न हो, लेकिन कोई न कोई लगाव, कोई न कोई बन्धन होना जरूरी है। कुछ न कुछ बोझ दिमाग महसूस न करे तो कहीं भीड़ में मैं खो न जाऊँ। बग़ैर बोझ के दिमाग भी हवा में खो जाता है। नेपोलियन का किस्सा आप लोग जानते हैं। उसने बेकार आदमियों को भी वर्दी पहनाना शुरू किया। वर्दी पहनने पर निकम्मी भीड़ के अन्दर सिपाहीपन जाग उठा। कपड़े उसके अन्दर बोलने लगे।

उनके कदम जमीन से आसमान को उठने लगे

हमारी आन, हमारी शान, सिपाही की होनी चाहिये। आपने देखा कि महज कपड़े पहनने से नयी रूह बोलने लगी। हमारा दिमाग कुछ ऐसा बना हुआ है कि उसे बन्धन की जरूरत होती है। हमारे दिल की बनावट कुछ ऐसी है कि बग़ैर बन्धन के सोयी हुई ताकतें बेदार नहीं होतीं, नहीं जागतीं। फौज में आते ही बेकार आदमी बहादुर सिपाही बन जाता है। वरना आम भीड़ में खोया-खोया रहता है।

विनोबा से मेरी दरख्वास्त है कि वे आम-मेम्बरी की शर्तें न रखें। आप अपने उसूल, सिद्धान्त लिख दें—अेक, दो, तीन, चार। मैंने उनको उठाया, पढ़ा, अपने दिल को टटोला, चीज़ दिमाग़ को जँची, आपको लिखा, 'मुझे मंजूर'। लेकिन कोअी ऐसी जगह तो हो जहाँ मैं एक कार्ड लिखकर भेजूँ कि मैं इन बातों को मानता हूँ और फलाँ काम करता रहूँगा।

फंडकी भी वही बात है। आप फंडों से एकबारगी नहीं बच सकते। आम ढंगपर फंड न उगायें, लेकिन ख़ास और नपेतुले ढंगपर।

तीसरी चीज़-जान डालनेवाली, ज़िन्दगी पैदा करनेवाली चीज—सालाना जलसा है। जो साल में एक दफा मेलेकी तरह इकट्ठा होने की तजवीज विनोबाजीने रखी है, वह कीमती चीज है। वह जरूर होनी चाहिये।

मैदान में आनेकी जरूरत

मगर असल बात यह है कि वक्त चर्चा करने का नहीं, वक्त मैदान में आनेका है। घर जल रहा है, आग सुलग रही है। अिन्सान और कीमती दौलत के सन्दूक़ बचाने हैं। अगर हम काम को वसीअ पैमानेपर चलाना चाहें तो यह भी देखें कि हमारे पास सामान है या नहीं। ये बाते हैं जिन पर आपको गौर फरमाना है।

अगर आप बापू के नक्शेक़दम पर—उनके पैरों के निशानोंपर—चलें, तो न सिर्फ़ इस मुल्क में बल्कि, दुनिया भर में, आप बहुत बड़ी ताकत पैदा करेंगे। बापू के क़दमों से अगर आप लगे हैं, तो अिंटर नैशनल मैदान में बड़ी से बड़ी जगह पायेंगे। बापू किसी एक मुल्क के नहीं थे। वह सारी दुनिया को रोशनी पहुँचाते थे। आप उनके इर्दगिर्द पले हैं। आपसे बढ़कर कोअी ताकत इस आसमान के नीचे नहीं है। उसके अिस्तेमाल का यही वक्त है। हर दिन जो जा रहा है, बीमार के लिये खतरा बढ़ रहा है। कलतक बापू थे। आज रहनुमाई कौन करे? अगर आप बीच की चीज नहीं बनाते तो कोई चारा नहीं। आपकी तरफ से किसी फतवे की उम्मीद नहीं रखते। आपको तो सलाह-मशविरा देना है। तजवीज बापू बना चुके; मक़सद वे दिखा गये; फतवे वे दे गये। उनके अुसूलों को समझनेवालों की एक बीच की चीज़, दस पन्द्रह आदमियों की, जिनपर आपको भरोसा हो उनकी, बना लीजिये। फरवरी में जो जल्सा होनेवाला था उसमें बापू आनेवाले थे। उनके दिलमें यह था कि इन संघों को मिलाया जाय। उन्होंने कहा था कि 'अगर यह काम न होता तो थोड़े दिनों के लिये भी दिल्ली न छोड़ता।' वह हस्ती अपने जाहिरी रूप में आज हमारे बीच में नहीं है। इसलिये यह जरूरी हो गया है कि हम एक रिश्ते में बँध जायँ और मैदाने-अमल में कूद पड़े। नाम-रूप चाहे जो हो। एक संगठन आपस में हम को बांधनेवाला बना लें। काम फौरन शुरू करें। इस काम में पीछे रहेंगे, कदम न उठावेंगे, तो बापू के साथ खास रिश्ते के दावे को साबित नहीं करेंगे।

राजेन्द्रबाबू—आम जल्से का काम यहाँ ख़त्म होता है। कल सबेरे आठ बजे फिर काम शुरू होगा। पंडित जवाहरलाल और मौलाना साहब को आप लोगों की तरफ़ से, उन्होंने हमारी जो रहनुमाई की उसके लिये, बहुत बहुत धन्यवाद देता हूँ।

विषय-निर्वाचिनी की बैठक

ता. १३-३-'४८ शामको साढ़े पाँच बजे

['सर्वोदय समाज' के लिये जो रूपरेखा बनायी गयी थी, उसपर चर्चा हुई।]

मातृभाषा या प्रान्तभाषा?

कृपलानीजी—हमने जो रचनात्मक कार्यों की सूची बनायी है, उसमें से प्रान्तीय भाषा को हटा दिया जाय। नाहक झगड़े की चीज़ है।

धोत्रे—बापूजी के शब्द 'मातृभाषा प्रेम' थे। लेकिन हरेक प्रान्त में रहनेवाले अन्य प्रान्तीयों की मातृभाषाअें अलग अलग हो सकती हैं। अिसलिये 'प्रान्तीय भाषा' शब्द अधिक अच्छा समझा गया।

दादा धर्माधिकारी— पहले शिक्षण में अंग्रेजी का ही प्रभुत्व था। उस प्रभुत्व का अन्त करने के लिये मातृभाषा के माध्यम पर जोर दिया गया। उस दृष्टि से 'मातृभाषाप्रेम,' हमारे रचनात्मक कार्यक्रम का अेक अंग हुआ। लेकिन यहाँ हमारे कार्यके लिये 'प्रान्तीय भाषा' शब्द ही अधिक उपयुक्त होगा।

काका कालेलकर—आप राजनैतिक दृष्टि से विचार करने लगे हैं। यह सवाल जनता की भाषा के विकास का है। दूसरे प्रान्तों से जो लोग किसी प्रान्त में आकर बसते हैं उन्हें वहाँ की जनता की भाषा को अपनाना चाहिये, बंगाली अगर बिहार में रहते हैं तो बिहारी ही उनकी स्वभाषा है। 'मातृभाषा' शब्दका असल में यह अर्थ लेना चाहिये।

[अिस चर्चा के प्रकाश में 'मातृभाषा-प्रेम' की जगह 'प्रान्तीय भाषा का विकास' शब्द मंजूर किये गये। फिर यह सवाल उठाया गया कि सदस्यता की शर्तों में उम्र की कोई मर्यादा हो या न हो!)

वयोमर्यादा न हो

विनोबा—अगर कोअी पांच सालका लड़का भी शंकराचार्य की तरह यह लिख देगा कि 'मैं अिन चीजों को समझता और मानता हूँ', तो वह भी सदस्य बन सकेगा। मैं किसी तरह की वयो-मर्यादा रखने के पक्ष में नहीं हूँ।

संगठन का स्वरूप

देवदास गांधी— लोगों को यह मालूम हो जाना चाहिये कि बापू के विचारों और सिद्धातों के बारे में किससे पूछा जाय। इसलिये अैसी एक अधिकारी समिति बनायी जानी चाहिये। सरदार से मेरी बात हुई तो उन्होंने कहा कि 'अगर मैं जाता तो एक बात कहता कि बापू के खास अनुयायियों में और सरकार में कोई चौड़ी खाई नहीं पड़नी चाहिये।' इस बातको भी आप सोचें। सरदार के और बापू के आदमियों में फर्क ही क्या है? दोनों के कार्यक्रम साथ साथ चलते रहने चाहिये।

कृपलानीजी— बापू के शब्दों का अर्थ लगाने के बारे में किसी को अधिकारी न समझा जाय। अिस बात में हरेक अधिकारी है। आप अैसा करेंगे तो कैथॉलिक पंथ के समान बन जायेंगे। अिस तरह समिति के रूप में आप बापूको फिर से जिला नहीं सकते। यह याद रखने की चीज है।

विनोबा— बापू के विचारों के बारे में अधिकार-वाणी से व्यवस्था देनेवाली किसी समिति की जरूरत नहीं है। हमारा जो संगठन बनेगा उसका एक मंत्री हो, इतना काफी है।

विचित्रबाबू—सम्मिलित संघ से यह संगठन अलग हो। सम्मिलित संघ के लिये विशेषज्ञों की ज़रूरत होगी। इस संगठन के लिये वैसे लोगों की ज़रूरत नहीं है। इसलिये इन दोनों को मिलाया न जाय।

तुकड़ोजी महाराज—अगर आप बाकायदा मंडल और अध्यक्ष, सेक्रेटरी, बनायेंगे तो जगह जगह वही सिलसिला चल पड़ेगा। घर घर सेक्रेटरी और घर घर मंडल होने लगेंगे। तुकाराम महाराज

के बाद तीन सौ साल में तीन सौ साठ मठ बन गये हैं। इसलिये कोई मंडल और उसके प्रेसिडेंट और सेक्रेटरी जैसी कोई चीज न बनायी जाय। नहीं तो जगह जगह गांधीवाद के महन्त खड़े हो जायेंगे। लेकिन जिनपर हमारी श्रद्धा है ऐसे कुछ आदमी मार्गदर्शन करनेवाले हों।

कृपलानीजी—मतलब, आप दो अलग अलग चीज़ें बनाने जा रहे हैं। एक प्रत्यक्ष रचनात्मक काम करनेवालोंकी संस्था और दूसरी बापू के सिद्धान्तों के बारे में अधिकार से निर्णय देनेवाली संस्था। मुझे यह चीज़ बड़ी अटपटी मालूम होती है।

शंकरराव देव—हम एक बाकायदा संगठन बनाकर उसके ज़रिये कामको फैलायें। संगठन का रूप वगैरे का निर्णय करने का काम दस-पंद्रह आदमियों की समिति पर सौंप दिया जाय। अगले साल तक देखें कि संगठन कैसे काम करता है और अगले साल फिर दोबारा सोचें। प्रत्यक्ष काम देश-काल-परिस्थिति के अनुसार अलग अलग तरह का हो सकता है। उदाहरण के लिये किसी ऐसे देश में हमारे सदस्य हों कि जहाँ कपास या ऊन होती ही नहीं, वहाँ हम उनसे चर्खा चलाने को थोड़े ही कहेंगे?

सुचेता कृपलानीजी—कमेटी के लोग क्या काम करेंगे?

राजेन्द्रबाबू—वे खुद किसी काम में पड़ें, यह ज़रूरी नहीं है।

कृपलानीजी—जो किसी प्रत्यक्ष काम में न लगा हो वह इसका सदस्य न हो।

देवदास गांधी—हम यह प्रस्ताव करें कि रचनात्मक कार्य के एकीकरण के लिये एक समिति बनायी जाय और बापू के कार्य को आगे बढ़ाने के लिये एक दस-पंद्रह आदमियों की छोटी कमिटी अलग बने।

झवेरभाई—यह क्या टेक्नीशियन्स और स्पिरीच्युअल्स की दो अलग अलग समितियाँ हो गयीं?

जाजूजी— रचनात्मक संघवालों को अपनी प्रेरणा से सम्मिलित संघ बनाने दीजिये।

शंकरराव देव—हम एक अिस तरह का प्रस्ताव करें, "यह सम्मेलन सभापतिजी से अनुरोध करता है कि वे सर्वोदय समाज के उद्देश्यों की पूर्ति तथा प्रचार के लिये एक उपसमिति नियुक्त करें।"

जैनेन्द्रकुमारजी—यह समिति सारे रचनात्मक संघों के अध्यक्ष, राजेन्द्रबाबू, किशोरलाल भाअी और विनोबा आदि की बने और राजेन्द्रबाबू ही उसके अध्यक्ष हों।

राजेन्द्रबाबू—यह तो बड़ा अन्याय होगा। लोगों में यह गलतफहमी होगी कि सब रचनात्मक कार्यकर्ताओं में मैं ही बड़ा हूँ।

[सभा का काम स्थगित]

खुला अधिवेशन

ता. १४-३-'४८, सबेरे आठ बजे

(सभापतिजीने श्री शंकरराव देव को प्रस्ताव नं. २ रखने की आज्ञा दी।)

शंकरराव देव—जिस प्रस्ताव को आपके सामने रखने की आज्ञा हुई है वह इस प्रकार है। (प्रस्ताव नं० २ पढ़ा गया। परिशिष्ट देखिये।) यह प्रस्ताव आपके सामने रखते वक्त मेरे दिलमें जो भावना खड़ी हुई है और जो विचार पैदा हुये हैं, उनको रखने में मैं अपने आपको असमर्थ पाता हूँ। प्रस्ताव पेश करना मेरा फर्ज है, कर्तव्य है। इसलिये चंद शब्दों में उसे आपके सामने पेश कर रहा हूँ।

साथियों से बल मिलता है

इस प्रस्ताव से हम जो समाज बनाना चाहते हैं वह कोई नई चीज और बात नहीं है। जब गांधीजी मौजूद थे उस वक्त भी उन्होंने गांधी सेवासंघ कायम किया था, जो कई वर्षोंतक काम करता रहा। बाद में देश में कुछ ऐसी हालत पैदा हुई जिससे गांधीजी और दूसरे नेताओं को लगा कि गांधी सेवासंघ को रखने से फायदे की अपेक्षा नुकसान ज्यादा है। इसलिये १९४० में संघ करीब करीब तोड़ दिया गया। उस वक्त और उसके बाद भी बहुतेरे सदस्यों को संघ की जरूरत मालूम होती थी। इस पथपर चलने के लिये जो शक्ति और श्रद्धा हृदय से निकलती है वह काफी नहीं होती। आदमी जब देखता है कि गांधीजी में श्रद्धा रखनेवाले हजारों व्यक्ति इस रास्तेपर चल रहे हैं, तो उसकी हिम्मत बढ़ती है। हर इन्सान की यह मनोदशा होती है। यथामति और यथाशक्ति गांधीजी के पथपर चलने की कोशिश करनेवाले मेरे ऐसे हजारों—लाखों व्यक्ति इस देश में, और देश के बाहर भी, हैं।

बापू हमारे राष्ट्रपिता और धर्मपिता

हमने गांधीजी को 'राष्ट्रपिता' संज्ञा दी। राष्ट्रपिता के नाते हमने अपनी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम उनके चरणों में चढ़ाया। लेकिन मैं उनको सिर्फ राष्ट्रपिता ही नहीं, बल्कि 'धर्मपिता' भी मानता हूँ। मेरी तरह लाखों व्यक्ति मानते हैं। जन्म देनेवाले पिता से वे कहीं बड़े थे। उन्होंने हमको ऐसा धर्म दिया जिससे जीवन का साफल्य होता है। उन्होंने सिर्फ राष्ट्र का निर्माण ही नहीं किया, उसे यह जीवनधर्म देकर प्राणवान् बनाया। वह मानते थे कि व्यक्ति यदि अपने धर्मपर चलेगा, तो जिस समाज का वह घटक है वह समाज भी उन्नति करेगा। सामाजिक और व्यतिगत जीवन का मेल करने का धर्म उन्होंने हमें सिखाया। समाज की सेवा और व्यक्तिगत साधना में एकरूपता स्थापित की। विश्वसेवा को ईश्वरप्राप्ति का साधन बनाया। व्यक्ति की मुक्ति आखिर चित्तशुद्धि के द्वारा ही होती है। इस चित्तशुद्धि का सही सही रास्ता उन्होंने हमको दिखाया। चारों ओर जब घना अंधेरा था, तब सूरज की तरह उन्होंने हमको प्रकाश दिया। जबतक सूरज होता है, छोटे छोटे दीपकों की

जरूरत नहीं होती। जबतक वे मौजूद थे, तबतक जब-कभी कोई भी समस्या खड़ी होती, हम उनके पास दौड़ जाते। आज वह प्रकाश नहीं है। उनके बाद फिर अँधेरा-सा हो रहा है। उनका प्रकाश हमें हमेशा मिलता रहेगा। लेकिन हम प्राकृत मनुष्य हैं। हमको पार्थिव शरीर से भी प्रेम होता है। उनके उस पार्थिव शरीर को हम अब भी देखना चाहते थे। यह इन्सान की कमजोरी है। लेकिन जब वह कमज़ोरी है, तो उसे मंजूर करने में क्या हर्ज है? वह आकृति अब आँखों से ओझल हो गयी है।

असत्य और हिंसा को कमसे कम मौका

हमारा हृदय व्यथित है। ऐसे समय में उनके बतलाये हुये रास्तेपर चलनेवाले जितने संगी-साथी होंगे उतना ढाढ़स बढ़ेगा। विनोबा का विचार शुद्ध है। संगठन के साथ थोड़ी न थोड़ी हिंसा, थोड़ासा असत्य भी, पैदा हो जाता है। इसलिये हम ऐसा संगठन बनाने की कोशिश करें जिसमें असत्य और हिंसा की गुंजाइश कम से कम रहे। इस संगठन में कोई नियमन, किसी तरह का बंधन या नियंत्रण नहीं रखा है। इसका कोई विधान नहीं, कोई कायदे नहीं। हम किसीकी कोई परख नहीं करेंगे। हर आदमीपर छोड़ देंगे। जो हमारे सिद्धान्तों को माननेवाले होंगे वे सब हमारे साथी होंगे, हमारे होंगे। हम यह नहीं देखेंगे कि वे सच कहते हैं या नहीं। ऐसे लाखों की तादाद में आयें, तो भले ही आयें। वे हमारी साधना में शामिल होंगे।

गांधी की महानता का अन्त नहीं

हमारी साधना सामाजिक है। सत्य और अहिंसा का जो आविष्करण गांधीजी ने किया उस का सक्षात्कार समाजसेवा के द्वारा ही होगा। जितने काम हमने यहाँ लिखे हैं उतना ही 'गांधी' नहीं है। पाँच सौ या पाँच हजार संगठन भी बनायें, तो भी हद नहीं आवेगी। सत्य और अहिंसा अनंत हैं। हमारे जितने संघ, समूह या काम हैं, गांधी उतना ही थोड़े ही है? परमात्मा के बारे में कहा गया है कि तीनों लोकों को व्याप कर वह दस अंगुल शेष रह गया। अत्यतिष्ठद् दशांगुलम्। यहाँ बीस-बाईस काम सिर्फ मिसाल के तौरपर बतलाये हैं।

यह संगठन अपने ढंग का है। इस की कोई कार्यकारिणी नहीं। नियंत्रण के लिये कोई समिति नहीं। यह संगठन कानून और विधान बनाने के लिये नहीं है। इस का काम हुक्म या हिदायतें देना नहीं है। गांधीवाद पर शास्त्रार्थ या व्यवस्था देनेवाला यह कोई पीठ नहीं है। यह तो एक सलाह देनेवाली संस्था होगी।

'सर्वोदय' की बुनियाद

हमें उम्मीद है कि इस सर्वोदय समाज के द्वारा हम एक बड़ा काम कर सकेंगे। बापू का यह मूलभूत सिद्धान्त था कि कोई भी मानव इतना पतित, दुष्ट या हीन नहीं कि जिस का उद्धार न हो सके, जिसका उदय न हो सके। यही अहिंसा का बुनियादी उसूल है। इस के अलावा और सारी बातें हरेक अपने अपने लिये तै करेगा। उस के लिये कोई नियंत्रक या निर्देशक नहीं होगा। कोई यह नहीं कह सकेगा कि गांधीजी का अर्थ हमारी ही समझ में आया है।

हमारे मन में वर्ग, प्रान्त या जाति का भेद तो रह ही नहीं सकता। यहाँ किसी तरह के वैयक्तिक, जातीय, प्रान्तीय या वर्गीय वाद की गुंजाइश नहीं। किसी भी व्यक्ति, जाति, प्रान्त या वर्ग के बारे में हमारा यह खयाल नहीं होगा कि उस की उन्नति नहीं हो सकती या वह हमारे साथ नहीं आ सकता। हर एक के हृदय में ईश्वर का अंश है। परमात्मा की सुप्त शक्ति है। वह शक्ति खिली नहीं है। उस सद्वृत्ति और ईश्वरी अंश को हम अपनी सेवा से जगा सकते हैं। वह पुरुष उत्तम पुरुष बन सकता है। यह सर्वोदय समाज का बुनियादी विचार है।

'सदस्य' या 'सेवक'?

कहीं उस में वैधानिक अनुशासन की बू न रहे, इसलिये जो इस समाज में शामिल होंगे उन के लिये 'सदस्य' संज्ञा भी नहीं रखी गयी है। संगठन में किसी तरह के दबाव का भाव न रहे इस दृष्टि से 'सदस्य' के बदले 'सेवक' शब्द पसंद किया गया है। क्या करें? नाम के बिना व्यवहार नहीं चलता। इसलिये संस्था के लिये और उसके घटक के लिये कुछ न कुछ नाम रखना पड़ा। 'सेवक' नाम भी निर्दोष तो नहीं है। हर कार्य में थोड़ा-बहुत दोष होता ही है। गीता कहती है, आग के साथ सूक्ष्मरूप में ही क्यों न हो, थोड़ा-बहुत धुआँ अवश्य होता है। जिन्दा रहने के लिये थोड़ी-बहुत हिंसा अनिवार्य है। हमारी इच्छा जीवित रहने की है। हम खुदकुशी नहीं करना चाहते। यह संघ कोई आत्महत्या का आयोजन नहीं है। लेकिन हमारा प्रयत्न काम से कम हिंसा का होगा। संसार में सज्जनों और दुर्जनों के कोई गिरोह नहीं हैं। हरेक सज्जन में दुर्जनता का अंश छिपा हुआ होता है और हरेक दुर्जन में सज्जनता का अंश होता है। सर्वोदय समाज के सेवकों को यह कोशिश होगी कि कम से कम हिंसा और कम से कम दोष हों।

विनोबा का मार्गदर्शन

विनोबाने हमारी जो मदद की है वह अमूल्य है। उन्होंने हमारे पथदर्शक बनने की उदारता बतलायी है। इसमें उनका त्याग है। उन्होंने कहा 'मैं अपने धर्मका पालन करते हुअे तुम्हारी सहायता करूँगा।' उनकी सम्मति न होती तो यह संघ न बनता। वे न होते तो वह इतना निर्दोष न बनता। इस समाज की आत्मा विनोबा हैं। उनके सबब से यह अधिक से अधिक निर्दोष बन सका है। उन से मेरा निवेदन है कि यदि आपकी पूरी शक्ति न मिलेगी, तो नहीं चलेगा। गांधीजीके पश्चात् आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं। गांधीजीने हमें जीवन धर्म दिया। हम उनके पास अपनी अपनी कठिनाइयाँ और समस्याएँ लेकर पहुँच जाते थे। उनको भेंट करने के लिये हमारे पास और कोई चीज़ नहीं थी। फिर भी उनके मकान और हृदय का दरवाजा हमारे लिये हमेशा खुला रहता था। हम साधक हैं। 'साधक' नाम बड़ा है। उसका उपयोग मैं अपना अहंकार बढ़ाने के लिये नहीं कर रहा हूँ। मैं नम्रभाव से उस शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ। विनोबा की तरफ हमारी दृष्टि है। उनका समाज और समितिमें न रहना दोनोंके लिये श्रेयस्कर है। लेकिन वे ही आत्मा होंगे। आप सब की तरफ से मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि 'आप हमारी रहनुमाई करें। आप इस समाज के सदस्य न होंगे तो तटस्थ रहने के कारण और संगठन के दोषों से अलिप्त रहने के कारण आप में

मार्गदर्शन की विशेष पात्रता और अधिकार होगा। इस प्रस्ताव के प्राण और उसकी जान आप ही हैं। इसलिये आप से बारबार अनुरोध कर रहा हूँ।'

हृदय की स्वीकृति

यह प्रस्ताव आपलोग पवित्र भावसे मंजूर करें। यह सिर्फ हाथ उठाने की बात नहीं है। हृदय की बात है। हम सबको अपने हृदय की श्रद्धा बटोरकर इसे पास करना है।

(प्रस्ताव फिर से पढ़कर सुनाया)

विनोबा-बहनो और भाइयो, कल कुछ बातें आपके सामने मैंने रक्खी थी। उससे-मेरे खयाल में-मेरा काम पूरा हो जाता था। लेकिन आज के प्रस्ताव के संबंध में भी मैं कुछ कहूं ऐसा तय किया गया है।

आरंभ में ही मैं कह देना चाहता हूं कि इस प्रस्ताव के समर्थन में मैं खड़ा हुआ हूं। "सर्वोदय-समाज" के विचार को मैंने क्यों पसंद किया, और इसकी बनावट की चर्चा हो रही थी तब कुछ भिन्न विचार मैं क्यों रखता था, यह आप लोगों के सामने रखना ठीक होगा।

सज्जनता किसी की ख़ास चीज़ नहीं

इस समय जेल में काफी देखने का और सोचने का मौका मिला। कल मैंने जिक्र किया ही था कि मैं एकांत में रहने वाला मनुष्य हूं। यद्यपि भगवान् की कृपा से मेरे साथ कुछ साथी रहते हैं और मेरी मदद करते हैं, फिर भी मैं एकांत-प्रिय ही रहा हूं। लेकिन जेलमें तो समाज में ही रहना हुआ और उससे सोचने का काफी मसाला मिल गया। वहां सब तरह के लोगों से संबंध आया। उनमें काँग्रेसवाले थे, समाजवादी थे, फॉर्वर्ड ब्लॉक वाले थे, दूसरे भी थे। मैंने देखा कि ऐसा कोई खास पक्ष नहीं है जिसमें दूसरे पक्षों की तुलना में अधिक सज्जनता दिखाई देती हो। जो **सज्जनता** गांधीवालों में दिखाई देती है वह दूसरों में भी दिखाई देती है, और जो दुर्जनता दूसरों में पाई जाती है वह इन में भी पाई जाती है। सज्जनता किसी एक पक्ष की चीज नहीं है, यह जब मैंने देखा तब सोचने पर इस निर्णय पर पहुंचा कि किसी खास पक्ष में या संस्था में रह कर मेरा काम नहीं चलेगा। सब से अलग रह कर सज्जनता की ही सेवा मुझे करनी चाहिये। जेल से छूटने के बाद यह विचार मैंने गांधीजीके सामने रक्खा। उन्होंने अपनी भाषा में कहा, "तेरा अभिप्राय मैं समझ गया। तू सेवा करेगा, लेकिन अधिकार नहीं रखेगा। यह ठीक ही है"। इसके बाद जिन जिन संस्थाओं में मैं था उनसे इस्तीफा दे कर अलग हो गया। वे संस्थाएँ मुझे प्राण-समान थीं। उनके उद्देश्यों और कार्यक्रमों को अमल में लाने की कोशिश बरसों से मैं करता आया था। उनसे अलग होते समय दुःख जरूर हुआ। लेकिन आनंद का भी अनुभव किया। क्यों कि उन संस्थाओं की मदद तो मैं करने ही वाला था। लेकिन अहिंसा के विकास के लिये मुक्त रहना जरूरी समझता था। हाँ, इसके साथ मैं यदि इस नतीजे पर आया होता—जैसे कि शंकररावजीने सूचित किया—कि 'कोई भी संस्था जब बनती है तब उसमें थोडी हिंसा तो आ ही जाती है' तो उतनी थोडी हिंसा की भी गुंजाइश मैं नहीं रखता। और आप लोगों को यही कहता कि किसी भी संस्था में आप न जायँ'।

शस्त्रों से हिंसा होती ही है

शस्त्रों के बारे में आज हम इस नतीजेपर आये हैं कि शस्त्र-धारण करने से हिंसा ही बढ़ती है। लेकिन एक जमाना था जब कि धर्म या सत्पथ की रक्षा के लिये दयालु पुरुषों ने शस्त्र-धारण करना जरूरी समझा था। उस जमाने में शस्त्रों का कुछ बचाव भी हो सकता था। लेकिन आज तो हम इस निर्णयपर आये हैं कि शस्त्रों से लाभ नहीं होता। हानि ही होती है। पुराने जमाने में भी शस्त्रों पर भरोसा न रखनेवाले कुछ व्यक्ति थे। लेकिन वे व्यक्तिगत जीवन में ही वैसी श्रद्धा रखते थे। सारे समाज को शस्त्र छोड़ने को कहने की हिंमत वे भी नहीं करते थे। तुकाराम महाराज को यदि शिवाजी महाराज पूछते कि "क्या शस्त्र छोड़ देने की आप मुझे सलाह देंगे," तो शायद तुकाराम यही कहते कि "तुम्हारी प्रवृत्ति को देखते हुए तुम्हें शस्त्र छोड़ने के लिये मैं नहीं कहूंगा। यद्यपि मेरी प्रवृत्ति मुझे शस्त्र-धारण करने को नहीं कहती। अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार चलना ही धर्म हो जाता है।" लेकिन आज की सायन्स की गति को देखते हुए शस्त्रों के उपयोग से जो अपार हानि होगी उसकी तुलना में उन से होनेवाला लाभ इतना नगण्य है कि उसको हिसाब में भी नहीं गिना जायगा।

सज्जनों के एकत्र होने में हिंसा कम

इस लिये अब हमलोग इस निर्णयपर आये हैं कि शस्त्रों से तो हिंसा ही होती है। वैसे इस निर्णय पर अब तक मैं नहीं आया हूं कि अगर संस्था बनती है तो उसमें कुछ न कुछ हिंसा आ ही जाती है। शंकररावजीने उसके लिये जो दृष्टांत दिया उसको भी मैं सुधारना चाहता हूं। मनुष्य में हिंसा का अंश होता है, इसलिये जहां दो मनुष्य इकट्ठा होते हैं वहां हिंसा आने ही वाली है, यह एक सामान्य बात उन्होंने कही। लेकिन वह हमेशा का नियम नहीं है। मुझमें हिंसा है। लेकिन मैं जब किशोरलाल भाई जैसे पुरुष के साथ काम करता हूं तब मेरी हिंसा कम हो जाती है। यानी सज्जन लोग जब इकट्ठा होते हैं तब हिंसा कम हो जाती है। "एक से दो भले" हम कहते ही हैं न?

सर्वोदय संस्था में हिंसा की गुंजाइश नहीं

हाँ! ऐसी संस्था जब हम बनाते हैं, जहां कुछ अनुशासन है, और उस अनुशासन को न माननेवालों के खिलाफ कार्रवाई करनी पड़ती है, वहां हिंसा का संभव रहता है। लेकिन वहां भी किसी पर संस्थामें दाखिल होने का अगर बंधन नहीं है, और संस्था के नियम जाहिर किये गये हैं, तो बात दूसरी हो जाती है। संस्था में शामिल होने न होने की हरेक को स्वतंत्रता है। शामिल होने पर भी कुछ नियमों का पालन हम नहीं कर सकते हैं तो संस्था से खुद हो कर हटने का भी मौका है। लेकिन जो आदमी अपनी इच्छा से ऐसी संस्था में दाखिल होता है, फिर नियमों का पालन ठीक नहीं करता और तिस पर भी संस्था के अन्दर रहने का आग्रह रखता है, उसके खिलाफ मजबूर हो कर संस्था को अनुशासन की कार्रवाई करनी पड़ती है, तो उस कार्रवाई का बचाव भी हो सकता है। फिर भी उसमें हिंसा का अंश दाखिल होना संभव है। लेकिन ऐसे अनुशासन की भी जहां गुंजाइश

नहीं है वहां हिंसा का सवाल नहीं आता है। "सर्वोदय-समाज" ऐसी संस्था है। यहां अनुशासन नहीं है। इससे बहुत सारे खतरे मिट जाते हैं। इसी लिये मैं इसका समर्थन कर रहा हूं।

'समाज' शब्द क्यों ?

अब नाम के बारे में कुछ कहना चाहिये। 'संघ' न कहते हुए 'समाज' शब्द रक्खा है वह साहित्यिक दृष्टि से नहीं रक्खा है। इसके पीछे विचार है। संघ शब्द में विशिष्ट अर्थ है। उसमें व्यापकता की कमी है। समाज व्यापक है और सर्वोदय शब्द के कारण उसकी व्यापकता परिपूर्ण हो जाती है। नाम का परिवर्तन एक महत्त्व की चीज होती है। बहुत-सारा काम नाम से ही हो जाता है। जीवन में परिवर्तन करने की शक्ति अच्छे नामों में होती है।

'सर्वोदय' शब्द क्यों ?

अब 'सर्वोदय' के बारे में थोड़ा कह दूं। अमतुस् सलाम ने चिट्ठी भेजी है। उस में वे कहती हैं कि सर्वोदय शब्द हमारे देहाती भाई आसानी से नहीं समझ सकेंगे। उन्होंने सुझाया है कि इस में गांधीजी का नाम जोड़ दिया जाय। उन की भावना से मेरी सहानुभूति है, और मैं मानता हूँ कि जैसे किसी व्यक्तिका नाम रखने में कुछ दोष आ जाता है वैसे उस नामको टालने में भी दोष हो सकता है। लेकिन मेरी सूचना है कि इस बारे में आग्रह न रक्खा जाय। गांधीजी ने देह छोड़ते वक्त भगवान्का नाम लिया था। उसीका आश्रय लेकर हम काम करें। उसीसे हमें स्फूर्ति और मार्गदर्शन भी मिलेगा।

सर्वोदय शब्द देहाती भाइयों के लिए कुछ कठिन हो सकता है। लेकिन यह कबूल करते हुए भी मुझे कहना है कि यही नाम रक्खा जाय। 'सत्याग्रह' शब्द भी वैसे कठिन था। लेकिन प्रत्यक्ष कृति से वह आसान बन गया। वैसे ही यह शब्द है। फिर यह शब्द एकदम नया भी नहीं है, गांधीजी का बनाया हुआ है। गांधीजी ने रस्किन की 'अन् टु दिस लास्ट' नाम की किताब का अनुवाद किया है। उसका उन्होंने 'सर्वोदय' नाम रक्खा था। ऊंच और नीच सब के मानवी अधिकार समान हैं, यह तत्त्व उस में बताया है। उसी को गांधीजी ने 'सर्वोदय' का विचार कहा। गांधीजी के विचारों का प्रचार करनेवाली जो मासिक पत्रिका निकली थी उसे भी 'सर्वोदय' नाम दिया था। 'नवजीवन' शब्द जब निकला तब वह कठिन ही था। विशेष अर्थ बतानेवाले शब्दों का कठिन होना कोई आपत्ति नहीं है। ऐसे कठिन शब्द समझाने के निमित्त से जनता के हृदय तक पहुँचने का मौका मुझे मिलता है, और जनता के ज्ञान में वृद्धि होती है। विशेष शब्द रखने का लाभ यह है कि उसे सुनते ही लोग हमे पूछेंगे "भाई, इसका अर्थ क्या है ?" जिससे देहाती भाइयों को पाठ देने का पहला मौका उस नाम से ही मुझे मिल जाता है। इस के बदले उनके परिचय का कोई नाम यदि मैं रखता हूँ तो मेरी जरूरत ही कहां रही ? फिर मैं ही खतम हो जाता हूँ। 'सर्वोदय' शब्द समझाते समय भी अगर मैं कठिन शब्दों से काम लूंगा तो मुझपर जरूर आक्षेप लागू होगा। लेकिन मैं तो ऐसे ही शब्दों से समझाऊंगा, जिन्हें वे आसानी से समझ सकते हों। इसलिये यह शब्द की चर्चा अब मैं छोड़ देता हूँ।

करोड़ों गांधी पैदा हों, ऐसी शक्ति

इस प्रस्ताव के पीछे एक महान् विचार है। एक गांधी गया उस की जगह करोड़ों गांधी पैदा हों, ऐसी शक्ति उस में है। यह संस्था न तो नियंत्रण करनेवाली है, न कोई सत्ता चलानेवाली है, न गांधीजी के सिद्धांतों का अर्थ बतानेवाली है। इसलिये इस में कोई भय नहीं है। इस प्रस्ताव में जो विचार है वह क्रांति करनेवाला है। आखिर 'गांधीजी के सिद्धांत' जिन्हें कहा जाता है, वे आये कहांसे? क्या वे गांधी के बाप के थे? सिद्धान्त किसी के बाप के नहीं होते। वे तो आत्मा के सिद्धांत थे। वही आत्मा आप में और मुझ में मौजूद है। इसलिये वे हम सब के सिद्धांत हैं। जो उन्हें मानता है, उसके वे सिद्धांत हैं। इन सिद्धांतों को अपना समझकर हम चलेंगे तभी काम होगा। हम सत्य का आग्रह रखेंगे तो क्या गांधीजी कहते हैं इसलिये? क्या गांधीजी के कारण सत्य की प्रतिष्ठा है? या सत्य के कारण गांधीजी की प्रतिष्ठा है? एक भाई ने मुझसे कहा, "गांधीजी ने शरीर-परिश्रम को अपना कर उस की प्रतिष्ठा बढ़ाई"। मुझसे रहा नहीं गया। मैंने कहा, "गांधीजी कौन थे जो कि श्रम को प्रतिष्ठा देते? शरीर परिश्रम को अपनाकर गांधीजी ने खुद प्रतिष्ठा प्राप्त की है। सिद्धांत व्यक्ति से बढ़कर होते हैं। इसलिये उनका अमल कर के व्यक्ति प्रतिष्ठा पाते हैं।

जिनको मैंने अपनाया वे विचार मेरे हो गये

गांधीजी से तो मैंने भर भर कर पाया है। लेकिन उनके अलावा औरों से भी पाया है। जहां जहां से जो मिला वह मैंने मेरा कर लिया। अब वह सारी पूंजी मेरी हो गई है। उसमें से गांधीजीने दी हुई कितनी है, और दूसरों ने दी हुई कितनी है, इसका अलग अलग हिसाब भी मेरे पास नहीं है। जो विचार मैंने सुना वह अगर मुझे जँच गया और उसे मैंने हजम किया, तो फिर वह मेरा ही हो गया। वह अलग कैसे रहेगा? मैंने केले खाये और हजम किये, उनका मांस मेरे शरीरपर चढ़ा। अब वे केले कहां रहें? वे तो मेरा जिस्म बन गये। इसी तरह जो विचार मैंने अपनाया वह मेरा ही हो गया। और फिर मेरी चीज में मुझे जो ममता होती है उसी ममता से उस विचार को मैं दूसरों के सामने रखूंगा। 'घर किसका?' तो बोले 'मेरा'। घर मेरा, जायदाद मेरी, और सिद्धांत या विचार गांधीजी के! यह कैसी बात है? अगर सिद्धांत गांधीजी के हैं तो घर और जायदाद भी गांधीजी की है, ऐसा क्यों नहीं कहते? गांधीजी के कोई सिद्धांत होते तो मृत्यु के बाद वे अपने साथ उन्हें ले गये होते। लेकिन वैसा नहीं है। सिद्धांत गांधीजी के नहीं है, बल्कि गांधीजी द्वारा प्रगट हुए हैं। उन्हें जब मैं ग्रहण करता हूं तब वे मेरे ही बन जाते हैं। उन्हें लोगों के सामने रखते समय गांधीजी के नामसे रखने की जरूरत नहीं है। स्वतंत्र रूपसे लोगों को विचार समझा सकते हैं। वे लोगों की बुद्धि को जँच जाय, उनके बन जाय, तभी उनका अमल वे करें, ऐसा मैं कहूंगा। इस तरह काम करेंगे तो हिंदुस्तान का कायापलट हो जायगा। मंत्र के अक्षर कागज पर लिखे होते हैं। उनको समझ कर अपने जीवन में उनके अनुसार जो परिवर्तन करता है उसके वे काम आते हैं। नहीं तो

एक कीड़ा उन मंत्रों को कागज सहित पूरा खा जाता है, फिर भी कोई लाभ उसे नहीं होता। यही विचारों का हाल है।

हमारे सर्वोदय समाज की व्यापकता

इस प्रस्ताव में यह भी बात लिखी है कि 'सर्वोदयसमाज' के विचारों को माननेवाले अपने अपने नाम पोस्ट कार्ड द्वारा भेज दें, ताकि उनकी फेहरिस्त रक्खी जा सके। मैं नहीं समझा हूं ऐसी फेहरिस्त का हम क्या करेंगे। फिर भी मैंने अनुमति दे दी। क्यों कि मैंने देखा कि उससे हमारे भाइयों को संतोष होता है। लेकिन इससे यह न समझा जाय कि सर्वोदयसमाज के वे ही सेवक हैं जिन्होंने अपने नाम भेजे हैं। जिनके नाम दफ्तर में दर्ज नहीं है, लेकिन जो इसी काम को कर रहे हैं वे भी इस समाज के सेवक हैं। प्रतिवर्ष जो मेला लगेगा उस में जिनके नाम दफ्तर में हैं वे ही आयें ऐसा भी नहीं है। इस विचार में श्रद्धा रखनेवाले सब कोई उस मेले में आ सकते हैं। जो आयेंगे वे अपनी अपनी व्यवस्था खुद कर लेंगे। जो अपने नाम भी नहीं भेजेंगे, और इस मेले में भी नहीं आयेंगे, लेकिन अपने स्थान पर ही काम करते रहेंगे वे भी इस समाज के सेवक हैं। खुद को सेवक भी जो नहीं कहलाते लेकिन काम यही करते हैं, वे भी सर्वोदयसमाज के सेवक हैं। ऐसा व्यापक हमारा सर्वोदयसमाज है।

भगवान् के नाम की शक्ति

एक बात और, जो एक भाई ने मुझे सूचित की है। हम सब लोग जानते हैं कि गांधीजी ने परमेश्वर की प्रार्थना के विचार में और प्रार्थनास्थल पर देह छोड़ी है। लेकिन प्रार्थना का जो दर्शन गांधीजी को हुआ था वह अब तक हमें नहीं हुआ है। इसलिये वे भाई सुझाते हैं कि करनेकी जो बातें प्रस्ताव में लिखी हैं उनमें प्रार्थना को क्यों न दाखल करें? बात तो ठीक है। लेकिन करनेकी बहुतसी बातों में इसको जोड़ देने से उद्देश्य सफल नहीं होगा। प्रार्थना में अपार शक्ति है, यह मैं मानता हूं। कुछ ही दिन पहले मैंने इसका जिक्र किया था। नारद ने भगवान् से पूछा "आप कहां रहते हैं?" भगवान् ने जवाब दिया "योगियों के हृदय में भी शायद मैं न रहूँ। लेकिन जहाँ मेरे भक्त एकत्र हो कर गायन करते हैं वहां मैं अवश्य रहता हूँ। गांधीजी का आखरी संदेश भी यही है। लेकिन प्रार्थना केवल एक बाह्य क्रिया थोड़े ही है? वह तो हृदय की बात है। मनुष्य को भगवान् ने वाणी दी है। इसलिये वह वाणी से भी भगवान् का नाम लेता है और समाधान पाता है। हम 'माँ' कह कर पुकारते हैं तो हमें समाधान होता है। किसी ने मुझे पूछा "माँ का नाम लेने से क्या होता है?" मैंने जवाब दिया "तू बीमार पड़, फिर कहूंगा क्या होता है"। एक आदमी की माँ पच्चीस साल पहले मर चुकी थी। वह बीमार पड़ा तब "हे माँ" कहने लगा। क्या वह जानता नहीं था कि उसकी माँ मर चुकी? लेकिन उसने जिस माँ का नाम लिया वह उसके लिये जिंदा थी। इस तरह भगवान् के एक अंशमात्र के नाम का जब इतना प्रभाव होता है तो प्रत्यक्ष

भगवान् के नाम से कितनी ताकत हमें मिल सकती है। यह वस्तु हम समझें और प्रस्ताव में लिखे बिना उसको जीवन में मुख्य स्थान दें।

मेरा आप से निवेदन है कि आप के सामने जो प्रस्ताव आया है उसे आप मंजूर करें और उसका यथाशक्ति अमल करें।

श्री तुकडोजी महाराज का परिचय

राजेन्द्रबाबू—श्री तुकडोजी महाराज का परिचय दादा धर्माधिकारी करायेंगे।

दादा धर्माधिकारी—श्री तुकड़ोजी महाराज सिर्फ नागपुर-बरार के ही नहीं, सारे महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध सन्त हैं। परम्परागत अर्थसे वे बहुत पढ़ेलिखे, पोथी-पंडित, नहीं हैं। अक्सर देखा गया है कि जो शास्त्री-पंडित होते हैं, उन्हें सुधारसे परहेज होता है। सन्त अक्षरों के दास नहीं होते। इसलिए वे अपने जीवन-द्वारा समाज में सुधार करते हैं। वे कितने अक्षर जानते हैं, यह बात न उनके लिये महत्त्वकी है, न समाज के लिये। अक्षरों के अर्थ को अपने और समाजके जीवन में वे चरितार्थ करते हैं। मेरा नाम कुछ असा है कि उसमें शास्त्रीकी बू आती है। शायद इसीलिये मुझे सन्त तुकडोजी का परिचय कराने का काम सौंपा गया है। तुकडोजी महाराजने अपने बारे में एक बार कहा था कि "मैं छुटपन में 'सड़क छाप' बीड़ी पीता था।" छुटपनमें जो भी किया हो, लेकिन आज तो वे चौराहों-चौराहोंपर ईश्वरभक्ति और संस्कारिता का प्रचार करते हैं। पढ़े लिखे लोगों में बहुत से पठित मूर्ख होते हैं। उनका जनतासे सम्पर्क नहीं होता। तुकड़ोजी महाराज अपने पैर जमीन से उखड़ने नहीं देते। इसी धरती पर अपने कदम रखते हैं। गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के प्रति लोगों में उत्साह जागृत करते हैं। उस कार्यक्रम के लिये संस्थाएँ चलाते हैं। हमारे देश के लोग चीथड़ों में महानता और निरक्षरता में बुद्धिमत्ता देखना जानते हैं। शहरों और देहातों में हजारों की संख्या में लोग उनके मधुर भजनों से प्रभावित होते हैं। अपने भजनों द्वारा वे ईश्वरभजन में रुचि और समाजसुधार के लिए प्रेम जागृत करते हैं। वे स्वयम् अपने भजन बनाते हैं। अपने भाषणों में वे अपनी अनूठी भाषा में गांधीजी के विचार साधारण लोगों को समझाते हैं। वे बाबागिरी का दंभ नहीं फैलाना चाहते। अपने पीछे कोई पंथ नहीं छोड़ना चाहते। शास्त्री का दिमाग पोथी के शिकंजों में बन्द रहने के कारण कुंद हो जाता है। संत अपने सीधे-सादे शब्दों से जनताके हृदय को छूता है; उनकी उमंगें जगाता है। सन्त तुकडोजी अब आपके सामने भाषण करेंगे।

तुकडोजी महाराज—मान्यवर सभापतिजी, प्रतिष्ठित भाइयो और बहनो,

मैं साधु नहीं

मैं कोई साधु नहीं हूँ। मेरे मित्र दादा धर्माधिकारीने साधु के रास्तेका जो बयान किया उस रास्ते जाना चाहता हूँ। मैं जैसा धड़ाकड़ा बाड़ेका-बाड़का (नंगधड़ंग) आप के सामने खड़ा हूँ, ऐसा ही

हूँ। नौ सालका था तबसे गोंड-गवारी और देहाती जनतामें पला और बढ़ा। यहाँ बोलनेमें इसीलिये बहुत संकोच है। विद्वत्ताका अधिकार मुझे नहीं। यह भी नहीं कह सकता कि मैं गांधीजीके पास बरसों रहा। क्यों कि उनके पास मैं एक महीनेसे ज्यादा न रह सका। लेकिन तत्त्व से हमेशा उनके पास रहता हूँ।

'गांधीवाद' कहना ग़लत है

आप जिस तरहका समाज बनाने जा रहे हैं उस में कम से कम भय है। राम, कृष्ण, ज्ञानेश्वर और तुकाराम के जो पंथ बने और जो प्रथाएँ चलीं, वह सब उनके जानेके बाद हुआ। लोग जब तत्त्व को नहीं पकड़ पाते तब शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली चीजोंको पकड़कर बैठ जाते हैं। कोई कपड़े लेकर बैठ जाता है, कोई जूते, कोई लकड़ी और कोई शरीर की भस्म। इसलिये गांधीवाद कहना गलत है। तत्त्व ज्ञान किसीका नहीं होता। किस के द्वारा तत्त्वज्ञान आया इतना ही कहना सही है। ज्ञान तो वेदों में भरा पड़ा था। अलग अलग तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने लोगों को अपने अपने ढंग से वह ज्ञान दिया। जो ज्ञान संस्कृत में था उसे ज्ञानेश्वर ने मराठी में से जनता तक पहुँचाया। तत्त्व सनातन है। उसका फैलाव हमको करना चाहिये।

देशभक्त और देवभक्त का संगम

पहले समाज में दो गुट थे। अेक राजगुट और दूसरा साधुसंतों का गुट। जो देशभक्त थे वे देवभक्त नहीं थे और देवभक्त संसार छोड़कर जंगल में चले जाते थे राजालोग कायदा बनाते थे और सेवक सद्भावना फैलाते थे। देशभक्त और देवभक्त का संगम गांधीजीने किया। यह गांधीजीकी खास बात थी। अेकांतमें बैठने से आत्मसाक्षात्कार नहीं होता। समाज में जाकर अच्छे विचार और अच्छी भावनाएँ फैलाने से लोग ऊपर उठते हैं और हमारी आत्मा भी ऊपर उठती है। आज आप देहात में चले जाइये और कहिये कि सेवाग्राम में, बापू के आश्रम में, एक ब्राह्मण लड़की और हरिजन लड़के की शादी हुअी, तो देहात के लोग कहेंगे कि यह बड़ा पाप हुआ। उनको कोई समझानेवाला चाहिये। गांधीजी के जीवन में यह एक विशेष बात हम पाते हैं। उन्होंने लोगों के जीवन को सुधार ने में ईश्वरसेवा देखी। हमें कोई गांधीपंथ नहीं बनाना है। यह देश तो पंथों का एक महासागर बन गया है। राम और कृष्ण के नामपर पंथ हैं। गोप और गोपियों के नाम पर भी पंथ हैं। हमारे महाराष्ट्र में संतों के नामपर अनंत पंथ हैं। पंढरपूर के वारकरियों का पंथ सब तरफ़ फैला हुआ है। जो पंढरपूर जाता है वह एंटम (ऐरागैरा) आदमी भी क्यों न हो, लोग उसके पैर छूते हैं। आप लोग जो गांधीजीके आसपास रहे हैं, लोग आपको ऐसा ही समझते हैं।

असल चीज़ दैवी शक्ति है

इस प्रस्ताव में हमने बापू के रचनात्मक कार्यक्रम के विशिष्ट अंग रखे हैं। लेकिन हमें सिर्फ़ इन बाहरी बातों का विकास नहीं करना है। बापू के सिद्धान्तों और वृत्तिका विकास करना

है। नहीं तो हम एक नया रूढ़िवाद बना जायेंगे। रूढ़ियों को तो हम नष्ट करना चाहते हैं। आप लोग अगर देहात में पहुँच जायँ, तो बहुत बड़ा लाभ होगा। देहात में पहुँचनेवाले को भाषा देहाती लेनी चाहिये। लोगोंको उनकी ताकत देखकर बातें समझानी चाहिये। टुकडी (शिशुवर्ग) के लड़के को मैट्रिक का अभ्यास बतलायेंगे तो उसको कुछ नहीं आयेगा। झूठे धर्मने आदमी को बिगाड़ दिया है, असली धर्म मानवधर्म है। हिन्दू-मुसलमान, ईसाई, नाम देकर उसे अलग अलग पोशाकें पहनाते हैं। धर्म एक तरफ़ रह जाता है। पोशाकों में झगड़े होते हैं। असल चीज़ दैवीशक्ति है। आप लोग दैवशक्ति के हैं। आसुरीशक्ति हमेशा से चली आयी है। वह अपने रूप बदलती रहती है। हमको उसका मुक़ाबला करना होगा। हम मारने-पीटने वाले न बनें, कर्तव्य मार्गपर मरमिटें। प्रेम, अहिंसा, सत्य हमारा शस्त्र हो।

नशे की मस्ती

नशे के बगैर मस्ती नहीं आती। मस्ती में आदमी दुगुने जोर से जीता है। हम अगर सेवा के नशे में मस्त होंगे तो दूसरी सारी चीजों को भूल जायेंगे। सामुदायिक प्रार्थना में मुझे विश्वास है। हम जब प्रार्थना करने बैठते हैं तो दो दो लाख लोग जमा हो जाते हैं। ईश्वर के भजन का नशा-सा चढ़ जाता है। सैंकड़ों बंधन तोड़ने के लिये यह एक प्रार्थना का बंधन मान लेना चाहिये।

प्रेम का ॲटमबम

हमको बाबा नहीं बनाने हैं। गांधी का सन्देश देनेवाले, मनुष्य में जो शुद्धता है उसे फैलाने-वाले लोगों की यह बिरादरी होगी। हमारा यह दल दैवीशक्ति का दल होगा। दुनिया आज ऐटमबम तक पहुँच गयी है। लेकिन बापू कहता था कि मेरा हृदय ऐटमबम से भी मजबूत है। बापू की यह बात हमको सब तरफ फैलानी है। यह कोई नाक पकड़कर बैठनेवाले बाबा बैरागियों की जमात नहीं है। दरी (कंदरा) और भुयार (गुफा) में बैठनेवालों का यह अखाड़ा नहीं है। और न हमको इलेक्शन-बहादुर ही बनना है। राजकारण में पड़कर झब्बू के (आफ़ताव) के बादशाह बनने की धुन सबपर सवार हुई है। आप धरम के नामपर पाखंड फैलानेवाले बाबा नहीं होंगे। न राजकारण लेकर लोगों के पास जायेंगे। आप बापूका प्रेम का सन्देशा लेकर वहाँ पहुँचेंगे। लोग कहेंगे, यह हमारा जिगर आया।

व्यक्तिपूजा से तत्त्वज्ञान का पत्थर बनेगा

एक एक तालुके में तीनसौ चालीस देहात हैं। पचास देहातों में भी कांग्रेस कमेटियाँ नहीं हैं। कांग्रेस कमिटियाँ अपने दफ्तर से हर देहात में बात नहीं पहुँचा सकती। आपका सन्देश हर देहात में पहुँचना चाहिये। हमारा प्रेम का सन्देश गांव गांव में नहीं पहुँचा इसीलिये गांधीजीकी हत्या के बाद 'जालपोल' (अग्निकांड) और हत्यायें हुईं। हमें व्यक्तिपूजा नहीं बढ़ानी है। हम गांधीजी के पुतले

बनाकर मूर्तिपूजा बढ़ायेंगे तो सारे देश में मन्दिर बनेंगे। तत्त्वज्ञान का भी पत्थर का पुतला बना देंगे। आप मन्दिरों का हाल देखते हैं। मन्दिरों में कुत्ते मूतते हैं और पैसा विश्वस्त (ट्रस्टी) खा जाते हैं।

सारा विश्व भगवान् का मन्दिर

बापूने सारा विश्व ही भगवान्‌का मन्दिर माना। हमारे मन्दिरों में गन्दगी है। बापू तो रास्ते भी मन्दिरों की तरह साफ करते थे। सफाई का काम जब हम पवित्र समझने लगेंगे तब भंगी की गुलामी हट जायेगी। हमको गांधीजी के पुतलों के बदले हर गाँव में साफ संडास बनाने चाहिये। इससे लोग सभ्य बनेंगे और गाँव की पवित्रता बढ़ेगी।

नास्तिक का भी दिल बदले

तीस जनवरी को जो मेला हो वह ऐसा हो कि जिससे नास्तिक का भी दिल बदल जाय। पवित्र भावना को लेकर लोग वहाँ पहुँचें। आज हम सबसे अधिक जोश 'शिमगे' (होली) के त्यौहार में देखते हैं। लोगों पर चिल्लाने की धुन सवार होती है। यह सारा जोश हमको दैवी-शक्ति बढ़ाने के पवित्र काम में लगाना है। ऐसे मेले गाँव गाँव में होने लगेंगे तो गांधी के रास्ते पर चलनेवाले चालीस करोड़ लोग होंगे। सारा हिन्दुस्तान ही हमारा समाज होगा।

कृपलानीजी—सभापतिजी, बहनो और भाइयो,

मुझे खयाल नहीं था कि मुझे बोलना पड़ेगा। इसलिये इस सम्मेलन में पूरे समयतक नहीं बैठा हूँ। और जब बैठा हूँ तब ध्यान नहीं दिया है। जितनी बात मुझसे पूछी गयी उसका कुछ जवाब देता गया हूँ। मैं नहीं जानता, मैं कहाँ हूँ। काँग्रेस से निकल गया हूँ, सरकार में हूँ नहीं। सोशियालिस्ट मुझे गांधीवाला कहकर दूर भागते हैं, बाहर के लोग मुझे गांधीवाला समझते हैं, लेकिन यहाँ के बड़े बड़े गांधीभक्तों में मैं नहीं हूँ। मेरी खादी पर जाजूजी के सामने पानी फिर जाता है। मुझे पता नहीं मेरी जगह कहाँ है? मैं कहीं का भी नहीं हूँ।

कपड़ा बदला या दिल?

गुजरात विद्यापीठ में बापू की जयंतीके समय महादेवभाई का भाषण हुआ। गांधीजी के सम्पर्क में आने से महादेवभाई के जीवन में क्या क्या परिवर्तन हुआ यह उन्होंने बतलाया। मैं भी सोचने लगा कि क्या मुझ में भी कुछ अदलबदल हुआ है। अपने भीतर झाँकी डालकर देखा तो मालूम हुआ कि सिर्फ कपड़ा बदला है, और कुछ नहीं बदला। मिल के कपड़े की जगह खादी आयी। मैं अर्थका अनर्थ नहीं करना चाहता। जो बात कह रहा हूँ उसे समझा देता हूँ।

बापूकी नकल उतारने का खब्त

एक बार बिहार में हम लोग काम करते थे तो मेरे विद्यार्थी भी मेरे साथ थे। एक दिन देखा तो कुछ विद्यार्थियों के बदनपर कुर्ता नहीं था, सिर्फ छोटी-सी धोती और चादर थी। मैंने

कारण पूछा। उन्होंने कहा "बापू आजकल कुर्ता नहीं पहनते, इसलिये हम भी नहीं पहनते।" मैंने उनसे कहा, "भूखे और नंगे आदमियों को देखकर कुर्ते से बापू के शरीर में जलन होती थी, आग-सी लग जाती थी, उससे बचने के लिये उन्होंने कुर्ता उतार कर फेंक दिया। तुम्हारे शरीर में वैसी जलन तो नहीं होती। तुम्हें कुर्ता फेंकने की ज़रूरत? साबरमती में आश्रम की प्रार्थना की जगह बालू थी। दूसरी जगह आश्रम बना। वहाँ पासमें नदी नहीं थी। दूर दूर से बालू लाकर डाली गयी। क्यों कि बालू पर बैठे बिना प्रार्थनामें दिल नहीं लगता। साबरमती में बदसूरत बर्तन थे। दूसरी जगह आश्रम बना। वहाँ गुजरात नहीं था, लेकिन वैसे ही बदसूरत बरतन लाये गये। कई आश्रमवासी ठीक बापूकी तरह उसी जगह घड़ी लगाते हैं। मुझे डर यह है कि बापू के नामपर जो संस्था बन रही है उसमें कहीं ऐसा ही न हो।

गांधीवृत्ति का कोई पैमाना नहीं

जबतक बापू थे, जिस से पूछो वही कहता कि 'गांधीजी से पूछकर किया है।' सरकार भी कहती कि गांधीजी से पूछकर किया है।' गांधीजी की अहिंसा को कोई नहीं समझता। फलाँ आदमी गांधीजी की अहिंसा को मानता है, इसका क्या थर्मामीटर? बहुत से गुस्सावर लोग हृदय से कोमल होते हैं। शाकाहारी आदमी लोगों का इतना खून चूसता है कि मांसाहारी भी नहीं चूसता। मैं कहना यह चाहता हूँ कि हमें गांधीजी की स्पिरिट में काम करना हैं, किसी बाहरी चीज का अनुकरण नहीं करना है।

यह रास्ता शहीद होने का है

सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलनेवाले को समझ लेना चाहिये कि यह रास्ता शहीद होने का रास्ता है। सत्य और अहिंसा के रास्ते पर जो कोई 'इफेक्टिव', परिणाम कारक, काम करेगा वह एक न एक दिन मारा जायगा। सत्य और अहिंसा का रास्ता दुनिया सह नहीं सकती। बापूजी की जीवनी को देखिये, उन्हें जब दूसरा कोई मारने के लिये तैयार नहीं होता था, तो वे अपनी आत्माहुति देनेपर तुल जाते थे। अपने मारे जाने के मौके पैदा कर देते थे। अभी मानवता की इतनी प्रगति नहीं हुई है कि सत्य और अहिंसा के रास्ते पर मजबूती से चलनेवाला भी मारा न जाय। आपको अपनी आहुति देने के मौके पैदा करने होंगे। आपकी किस्मत अच्छी होगी तो नहीं मारे जायेंगे। लेकिन शायद मारे जानेपर ही आप की दैवीशक्ति सफल होगी। अगर कांग्रेस ने कुर्बानी का रास्ता छोड़ दिया तो उसका काम न चलेगा। कुर्बानी का रास्ता गांधीजी दिखा गये हैं। उस हुतात्मा के रास्ते पर हम को चलना है। अगर हम में दम है तो गांधीजी के नाम पर नहीं बिकेंगे। उन की जो चीज हम को जँचेगी उसे लेंगे, जो नहीं जँचेगी उसे छोड़ देंगे। लेकिन सत्य और अहिंसा की राह हरगिज न छोड़ेंगे। यही बापू का सच्चा रास्ता है।

पवित्रता का अलगपन

बापू का मार्ग चलाने का मतलब यह नहीं है कि हम उनकी नकल उतारें। कुछ लोग तो बापू की नकल उतारने में अपने को बापू से भी चढ़ा-बढ़ा दिखलाने की कोशिश करते हैं। एक तरह से दुनियापर जाहिर करना चाहते हैं कि गुरु गुड़ रह गये, चेला चीनी बन गया। बापू ने अपनी उम्र में इस तरह का पवित्रता का अलगपन कभी नहीं दिखाया। हम खबरदार रहें। अपने को ऊँचा और पवित्र समझनेवालों की एक जमात न बना लें।

नया अभिधर्मकोश न बने

हरेकृष्ण मेहताब—इस सम्मेलन की सूचना जब मुझे मिली तब मुझे बुद्ध के निर्वाण के बाद जो एक सम्मेलन हुआ था उस की याद आयी। उस सम्मेलन में बुद्धमार्ग पर चलनेवालों ने अपने लिये कोई रास्ता निकाला, कुछ निर्णय किये। अभिधर्मकोश में उस सम्मेलनका वृत्तांत मिलता है। वहाँ बुद्धधर्म के आचार्य इकट्ठे हुये। चर्चा हुई कि बुद्ध भगवान् असलमें क्या चाहते थे। अपनी बात के समर्थन में हरएकने बुद्ध भगवान्‌का हवाला दिया। उस वक्त उन्होंने जो निर्णय किये उनका जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा। हमारे जीवनमें से वे और उनके निर्णय दोनों खो गये। मुझे भय है कि बुद्ध के बाद जो हाल हुआ ठीक वैसा ही कहीं हमारे साथ न हो। गांधीजी हमारे सहसामयिक थे। इसलिये लोग गांधीजीके विचारों के लिये हमारा हवाला देंगे। एक दूसरा अभिधर्मकोश बन जायगा। इसमें कोई अस्वाभाविकता भी नहीं है। लेकिन हम को इससे बचना है। मेरी रायमें शंकररावने जो प्रस्ताव रखा है, इससे बढ़कर प्रस्ताव नहीं हो सकता था। हम विधान और नियम से बचकर चलें, इसीमें हमारा कल्याण और जनता की उन्नति होगी। बापूजी जब उड़ीसा की यात्रामें थे तो एक विदेशी यात्रीने मुझ से कहा था, इस आदमी के बाद इसकी एक एक चीज़को लेकर पंथ बनेंगे। हमें इसके बारेमें सतर्क रहना चाहिये।

मुक्त अनुष्ठान की महत्ता

स्वामी विवेकानंदने चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदायके बारेमें कहा था कि जब किसी अनुष्ठान (संस्था) के लिये कोई कोई निर्दिष्ट नियम बन जाते हैं तब उस अनुष्ठान का पतन होता है। बुद्धने भूत-दयाका धर्म सिखाया। बौद्धमतवादियोंने सिर्फ़ बुद्ध की मूर्तियाँ बनाकर उनको पूजने में सन्तोष मान लिया। किसी मतवादियों के लिये जब निर्दिष्ट नियम बन जाते हैं, तब उसकी प्रगति का अन्त हो जाता है। नियमबद्ध अनुष्ठान से मुक्त अनुष्ठान कहीं अधिक कल्याणकारी है। बगैर नियमोंका एक भाईचारा बन जानेमें बड़ा हित है। कोई कड़े नियम नहीं होंगे। जो पिछड़े हुए होंगे वे भी हमारे साथी होंगे। यह नियम पालनेवाला सच्चा गांधीवादी और वह नियम न पालनेवाला झूठा गांधीवादी, इस तरह का भेद नहीं होगा। जो पीछे रह जायेंगे उनको भी हम साथ ले लेंगे। उनके लिये सहानुभूति और आत्मीयता होगी। सबको साथ लेकर चलने में बापूकी महानता थी। प्रसिद्ध

भक्त रजनीकान्त सेनका एक गान है, 'भगवान्! हम पीछे रहनेवालोंको कैसे बराबरीपर लायें? जिनके गिरनेका डर है उन्हें कैसे उठायें? कैसे सम्हालें'? भगवान् पतितों को उठाते हैं, इसीलिये तो हम उन्हें पूजते हैं न? हमारा इसी बुनियाद पर भरोसा होगा। मैं इस प्रस्ताव में ये सारी भावनाअें देखता हूँ।

राजेन्द्रबाबू—कुछ लोगोंके विचार में इस प्रस्तावमें संशोधन ज़रूरी हैं। जिनके संशोधन हों वे कृपा करके साढ़े ग्यारह बजे तक धोत्रेजीके पास दे दें। संशोधनोंपर विचार होने के बाद फिर प्रस्तावपर विचार होगा। शाम के चार बजेसे फिर अधिवेशन होगा।

(बैठक स्थगित)

विषयनिर्वाचिनी समिति

ता. १४-३-'४८, दोपहर, दो बजेसे

कुछ ज़रूरी सवाल

राजेन्द्रबाबू—इस वक्त दो-तीन बातों का विचार खास तौर से करना है। डॉक्टर चोइथराम गिड़वानीका तार आया है। उसके बारेमें तुरन्त विचार करनेकी जरूरत है। यानी शरणार्थियों के प्रश्न के बारेमें। दूसरा सवाल शांतिसेनाका है, जिसका जिक्र श्रीमनजीने किया। तीसरा सवाल महात्माजी का परचा 'हरिजन' आगे किस रूपमें चलाया जाय, यह है। चौथा सवाल, बापूजी जितनी संस्थायें चलाते थे उनकी कुछ रकम है। बहुत से खाते चिमनलाल भाई के नाम हैं। एक बैंकमें बापूजी के नाम खाता है। इसके अलावा कुछ रकमें बापूजीके नाम 'ईयरमार्क्ट' हैं। वे उनके बारेमें कुछ लिख गये हैं। गांधी सेवासंघके पास जो रकम है उसपर पूरा अधिकार संघको है। बिहारमें 'इयरमार्क्ट फॉर मुस्लिम सफ़रर्स', जो रकम है, उसे बापूजी खुद 'ऑपरेट' करते थे। इस विषयकी चर्चाकी यहाँ जरूरत नहीं है। आप लोगोंकी जानकारी के लिये जिक्र कर दिया है। इन प्रश्नों के सिवा वह प्रश्न है, जिसपर जवाहरलालजी ने और प्यारेलालजी ने जोर दिया। वह सबसे आवश्यक चीज आजकी परीस्थिति में है। हरिजनफंड और गांधीस्मारकनिधिके बारेमें विचार करने की भी एक सूचना आयी है।

सुन्दरलालजी—आप सारी सूचनाओंका जिक्र कर रहे हैं। इसलिये एक सूचना और भी करता हूँ। जो लोग शरणार्थी नहीं हुए, अभी अपनी जगहपर रह गये हैं, उनके बारेमें भी सोचना चाहिये।

'हरिजन' का प्रकाशन

राजेन्द्रबाबू—'हरिजन' का प्रकाशन अभी बन्द है। उसे फिरसे शुरू करनेके बारे में आप लोग तै कर लें। जीवणजी उस काम के लिये यहाँ आये हुअे हैं।

जाजूजी—दो तरह की तजवींजें हो सकती हैं। एक तो यह कि हमारे अलग अलग संघों के पत्र बन्द करके उनकी जगह एक साप्ताहिक पत्र चलावें। 'हरिजन' उसी में हो या उसीका नाम 'हरिजन' हो। दूसरी तजवीज यह है कि सब संघों की तरफ़ से एक अलग पत्र चलाया जाय और 'हरिजन' जिस रूपमें आजतक चलता आया उसी तरह से चलाया जाय।

कृपलानीजी—हमारे आर्थिक और बौद्धिक साधन कितने हैं, इस का भी कोई विचार होना चाहिये।

सुन्दरलालजी—बापूके पत्र जारी रहने चाहिये। इस से आम जनता को खुशी होगी। आप सब अपने विचार उनमें प्रकट कर सकते हैं। 'हरिजन-सेवक' के बारे में मेरी बापू से बात हुई थी। उन्होंने मुझ से कहा था कि 'हरिजन-सेवक' के तुम सम्पादक बनो। मेरी विनम्र 'ऑफर' आपकी जेबों में पड़ी रहे। हिन्दुस्तानी में उसके सम्पादनका भार मैं लेनेको तैयार हूँ। 'हरिजन' को अुर्दू में छापनेपर उनका जोर था। यह उनकी आखिरी इच्छा थी। वह भी पूरी हो। हिन्दुस्तानी में अगर परचा निकले तो दोनों लिपियों में निकल सकता है।

देवदास गांधी—मीराबेनका एक पुलिन्दा मेरे पास आया है। उनकी राय यह है कि उसका नाम बदल दिया जाय और उसे साप्ताहिक के बदले मासिक कर दिया जाय। मेरा भी खयाल ऐसा ही है। लेकिन नाम बदलनेकी जरूरत नहीं मालूम होती।

जीवणजी देशाई—इस वक्त 'हरिजन' की खपत अंग्रेजी में सोलह हजार, हिन्दी में ग्यारह हजार, उर्दूमें तीन सौ और गुजरातीमें बारह हजार हैं।

देवदास गांधी—आप लोगोंकी जानकारी के लिये एक बात और कह दूँ। शायद मुझे याद न रहे। श्री व्रजकिशोरजी और नन्दलाल मेहता के पास बापूकी कुछ चीजें रखी हैं उनका क्या किया जाय, उसका भी विचार आप कर लें।

विनोबा—जैसा अभी कृपलानीजीने कहा, 'हरिजन' चलाने के लिये हमारे पास काफी सामान नहीं है। हरिजन के 'स्टैंडर्ड' के बारेमें लोगोंकी अपेक्षा हम कहांतक पूरी कर सकेंगे? हमारे पास ऐसे आदमी कौन हैं? पहले चलाना तै करें, फिर आदमी खोजें, यह ठीक नहीं। पहले आदमी खोज लेन चाहिये।

मगनभाई देसाई—हम किशोरलालभाई के साथ बैठे थे। उनकी भी राय है कि पत्र चलाया जाय। 'नवजीवन' की तरफ से चलाने की जिम्मेवारी लेनेका विचार हो रहा है। लेकिन विनोबाका भी कहना ठीक है कि स्टैंडर्डके बारेमें अपेक्षा किस तरह पूरी हो ?

जाजूजी—इसकी जिम्मेवारी कौन ले सकता है, यह प्रश्न प्यारेलालजी से पूछा जाय।

प्यारेलालजी—मदारीके खेल में जैसे मदारीके साथ जंभूरा–हंडीबाग–होता है, वैसा मैं रहा हूँ। पढ़ना सबको अच्छा लगता है। महज शौकके लिये भी लोग पढ़ते हैं। इस तरहका पढ़ना और लिखना एक व्यसन हो जाता है। हमारे सामने कोई नियोजित कार्य हो, कोई विशिष्ट उद्देश्य हो, तो उसके लिये पत्र चलाना ठीक है। सिर्फ एक पत्र चलाने के लिये बापू ने कभी नहीं लिखा। उन्होंने केवल अपनी बात को कहने के लिये पत्र चलाया। 'हरिजन' का आकार या उसका सिलसिला जारी रखने की परवाह उन्हें नहीं थी। आकार शायद आगे नहीं निबाहा जा सके। इस में टेक्निकल बातें नहीं आयेंगी, सारे संघों का मिलकर जो मुखपत्र होगा, उस में वे बातें आ सकती हैं। बापू के सामने दो बड़े काम थे। एक तो जगत को जो सन्देशा देना था और दूसरा, हमारे यहाँ के जो हाकिम थे उनतक अपनी चीज पहुँचाना। बापू एक विशिष्ट दृष्टि से पत्र चलाते थे। इसलिये उन्होंने अंग्रेजी में लिखा। वे जो लिखते थे, बहुत गौर और विचार से लिखते थे। जो लिखते थे, उस से भी ज्यादा महत्त्व का वह होता था, जो नहीं लिखते थे। उन की बात और थी। हमें जो करना है वह हिन्दुस्तानी में करें, अंग्रेजी में नहीं। हम 'पब्लिसिटी' की परवाह न करें। अगर हमारे काम में जान होगी तो पब्लिसिटी हमारे पीछे दौड़ेगी। उस के लिये परचा निकालने की जरूरत नहीं। डेली प्रेस तो हमारे लिये खुला है। संपादक के लिये आप ऐसा आदमी चुनें जो उसका स्टैंडर्ड रख सके।

रचनात्मक संघों का मुखपत्र

विनोबा—सब संघों की बातें एक ही मासिक पत्रिका में आयें। वह सब के लिये प्रतिष्ठित और अनिवार्य होगी। इस दूसरे पत्र के बारे में अलग से सोचें। उस के आकार के बारे में इतना कह देना चाहता हूँ कि वह बहुत बड़ा भी न हो और न बहुत छोटा ही। अंग्रेजी के बारे में, संपादक के बारे में, भी सोचें।

जाजूजी—संघों के लिये 'मासिक' की अपेक्षा 'साप्ताहिक' अधिक उपयोगी होगा। 'मासिक' बड़ा होता है। उसे पढ़ने के लिये काफी समय नहीं मिलता। और फिर हमारी जो सूचनायें निकलती हैं, उनके पहुँचने में बहुत देर लग जाती है।

विनोबा—'साप्ताहिक' की तरफ देखने की दृष्टि अलग होती है। 'साप्ताहिक' के लेखोंपर लोग सोचते नहीं। 'मासिक' के लेखों का अभ्यास करते हैं। इसलिये शास्त्रीय बातों का 'मासिक' ही होना चाहिये। सूचनाओं और खबरों की कोई खास जल्दी नहीं।

कृपलानीजी—संघों के मेल का एक सम्मिलित पत्र अनिवार्य चीज है। उस को जरूर चलायें। लेकिन 'हरिजन' को बन्द रखें। मैं प्यारेलाल से सहमत हूँ कि अगर बापू ने 'हरिजन' के लिये पहले से एक स्टैंडर्ड कायम न कर दिया होता, तो हम उसे चलाते। आप चाहें तो एक साप्ताहिक पत्र अलग चलावें। अगर संपादक खबरदार रहे तो साप्ताहिक पत्र के लायक सामान जुटा सकता है।

शरणार्थियों का प्रश्न

('हरिजन' का विषय निर्णय के लिये एक खास उप-समिति को सौंपा गया। इस के बाद डाक्टर चोइथराम गिड़वानी का तार पढ़ा गया, जिस का मुख्य विषय था 'पाकिस्तान के चालीस लाख लोगों को सहायता की जरूरत है।')

राजेन्द्रबाबू—यह एक बिकट प्रश्न है। प्रश्न बहुत बड़ा और गंभीर है। देखना यह है कि हमलोग जो यहाँ इकट्ठे हुए हैं, क्या कर सकते हैं।

कृपलानीजी—कल किशोरलाल भाई ने जवाहरलालजी से पूछा था। जवाहरलालजी जवाब देना भूल गये।

राजेन्द्रबाबू—जवाब दे भी नहीं सकते थे।

कृपलानीजी—जिसको इस काम का अनुभव है वह कुछ बतलावे, तब हमें कल्पना आयेगी।

मानसिक पुनर्निवास

प्यारेलाल—सवाल मुश्किल तो है, लेकिन जितना मुश्किल उतना ही जरूरी है। हमारा शान्तता का प्रश्न और सांप्रदायिक प्रश्न इसीपर मुनहसिर हैं। जबतक शरणार्थियों का सवाल हल न होगा, तबतक कौमीशान्ति न हो सकेगी। हम इसके हल में कुछ भी हिस्सा ले सके तो बहुत बड़ा काम कर सकेंगे। कुरुक्षेत्र को हम ले लें। इस में हमारी परीक्षा होगी। वहाँ स्त्री, पुरुष, बच्चे, बड़ी संख्या में हैं। बहुत मुसीबत में हैं। उनकी जायज माँगें भी पूरी नहीं हो सकतीं। यह लाज़िमी तौर पर एक रचनात्मक कार्य है। करीब चौबीस हजार लड़के-लड़कियाँ वहाँ आकर बसी हैं। उन के दिल बहुत बिगड़े हुए हैं। एक बहुत बड़ी मानसिक समस्या है। साइकॉलॉजिकल रीहैबिलिटेशन—मानसिक पुनर्वसति—का सवाल है। उन लोगों को इखलाकी बल की बहुत ज्यादा जरूरत है। उन के जीवन में किसी तरह का अनुशासन नहीं। स्वास्थ्य नहीं। विनोबाजी जैसे व्यक्ति हमारे पास बैठे हैं। वे उन्हें मनोबल दे सकते हैं। हम उन की चाहे कितनी ही व्यवस्था क्यों न करें, पहले की तरह-सुख चैन से वे नहीं रह सकते। उन को हम उद्योग सिखाकर उपयोगी जीवन की दीक्षा दे सकते हैं। विनोबाजी के पास चरखाशास्त्र, नई तालीम, वगैरह औजार पड़े हैं। वे वहाँ जाकर उन के भीतर बैठ जायँ। उन के साथ जिन्दा सम्पर्क स्थापित करें। अपने आप उन लोगों को

एक नयी दृष्टि मिलेगी। नयी जिन्दगी का रास्ता खुलेगा। जमाना हमें यह चुनौती दे रहा है। उस को हम उठावें। वहाँ जो गुंडाशाही चल रही है उस से लोहा लें। वहाँ जाकर हम परचा निकाल सकते हैं। शुरू में एक ही पन्ने का परचा हो तो भी हर्ज नहीं।

सुन्दरलाल—इस मामले में मैं अपना तजरबा भी आपलोगों के सामने रख दूँ। रोहतक के शरणार्थी कैंप में मैंने फिजीकल, साइकॉलॉजिकल और मॉरल रेक्स—शारीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टि से तबाह व्यक्ति—देखे हैं। रोहतकमें सत्तर हजार और मुजफ्फरपुर में आठ-दस हजार के पड़ाव हैं। वहां हर किस्म का रचनात्मक कार्य हो सकता है। वहाँ की सरकार की इजाजत और मदद के बिना हरगिज दखल न दें। आप अपनी तजवीज बनायें और राजेन्द्रबाबू को अधिकार दें कि उन उन सरकारों से पत्र-व्यवहार करें। विनोबा चाहें तो रुपया और आदमी लेकर वहाँ बैठ जायँ।

राजेन्द्रबाबू—पत्र-व्यवहार करना आसान है। पहले हमें यह पता चले कि कौन-कौनसी दिक्कतें हैं और उनको दूर करने में हम क्या क्या कर सकते हैं, यह तै करें, तब पत्र व्यवहार का समय आयेगा।

कृपलानीजी—हाल में दो एजन्सियाँ काम कर रही हैं। सरकार का एक महकमा है और कांग्रेस की केन्द्रीय सहायक समिति है। उनकी दिक्कतें जान लें तब हम अपनी योजना तैयार कर सकेंगे।

काम और घर देने का प्रश्न

सुचेता कृपलानी—इसके बारेमें बापू से बात हुई थी। सरकार जो नहीं कर सकती वह हम करें। मगर सरकार का दखल हर चीज में होता है। फिर भी कुछ काम हम कर सकते हैं। केन्द्रीय सहायक समिति का देहली में तीस हजार का उपनिवेश है। उसके लिये हमने अपना एक कार्यक्रम बना लिया है। लेकिन हमको सरकार की मार्फत काम करना पड़ता है। हम स्वतंत्ररूप से काम नहीं कर सकते। सरकार का अपना एक तरीका होता है। उनकी मशीनरी इतनी टेढ़ी है कि जो पैसा मंजूर होता है उसके मिलने में हफ्तों लग जाते हैं। अगर मार्च महीनेके भीतर खर्च न हो तो पैसा जब्त हो जाता है। यानी पैसा मिलते मिलते उसकी मियाद खतम होनेका वक्त आ जाता है। जो शरणार्थी ट्रान्स्फर ब्यूरो की मार्फत आते हैं, उन्हींको सहायता मिलती है। आप अगर ऊपर से इतना करा दें कि सारी जिम्मेवारी केन्द्रीय सहायक समिति को सौंप दी जाय, तो हमारा रास्ता सुगम हो जायगा।

असली सवाल शरणार्थियों को काम और घर देनेका है। उनमें से सत्तर फीसदी हाथ का काम नहीं कर सकते। सिर्फ दूकानदारी कर सकते हैं। देहली में सबको दूकाने दें तो स्थानीय दूकानदारों में और प्रवासी दूकानदारों में आर्थिक संघर्ष होता है। जो दूकानदारी करना चाहें उनके लिये हिंदुस्तानभर में जगह जगह दूकानें खुलवाने का इन्तजाम होना चाहिये, जिससे वे एक ही जगह इकट्ठा न हो कर सब तरफ बँट जायें। कांग्रेस की तरफ से एक बस्ती बनवाकर सरकार के लिये नमूना पेश कर दें।

इस तरह अगर हम पर काम सौंप दिया जाय तो हम सरकार के सामने एक मिसाल खड़ी कर सकते हैं। शरणार्थियों के लिये जगह जगह औद्योगिक केन्द्र भी खोलने चाहिये। इन केन्द्रों के लिये विशेषज्ञों की जरूरत होगी।

बालासाहब खेर—सिन्ध से बम्बई में बहुतसे निर्वासित आये हैं। उनके बुरे हाल का वर्णन नहीं हो सकता। खेती का काम वे कर नहीं सकते। जिनके पास लाखों रुपयों की फैक्टरियाँ थीं, कारखाने थे, वे एक एक कपड़े के साथ आये हैं। घाटकूपर के सेवाभावी लोगोंने लाख-डेढ़ लाख रुपये उनके लिये खर्च किये हैं। कई बहनें बच्चों के लिये दूध का प्रबन्ध करती हैं। सबेरे चार बजे से वे काम में लग जाती हैं। हमारे यहाँ कोई ढाई-तीन लाख निर्वासित आये हैं। उनको जो जो शारीरिक और आर्थिक कष्ट हुए उसका असर उनके दिलपर हुआ है। जरा-जरासी बातपर मिजाज बिगड़ जाता है। सेवकों को मारने दौड़ते हैं। उनको सहायता पहुँचाने में कांग्रेस और प्रान्तीय सरकार मदद कर सकती है। लेकिन उनको घर और काम देने में केन्द्रीय सरकार ही समर्थ हो सकती है। जिन हलकों में जनसंख्या कम है वहाँपर इन निर्वासितों के लिये बस्तियाँ बसायी जायँ। वहाँ तालीम का काम रुग्ण-शुश्रूषा का काम, लोगों को हिम्मत देने का काम, है। यह सब सरकारी मशीनरी से नहीं पूरा हो सकता। ऐसे शुश्रूषा के और सांस्कृतिक काम के लिये केन्द्रीय सहायक समिति जगह जगह अपने विभाग खोले। इन कामों को कांग्रेस ही अंजाम दे सकेगी। गवर्नमेंट मशीनरी पूरी नहीं पड़ेगी।

शंकरराव देव—सभापति महोदय, अब सवातीन हो गये। चार बजे से हमें फिर बैठना है। इसलिये पहले संशोधन ले लें। उद्देश्य में तब्दीली के लिये श्री गुलझारीलाल नन्दाजी और प्यारेलालजीने संशोधन भेजे हैं। श्रीमनजी का भी एक सुझाव है।

राजेन्द्रबाबू—शरणार्थियों का प्रश्न जरूरी है। इसके लिये कल फिर मिलें। अब संशोधनों को ले लें।

संशोधन

गुलझारीलाल नंदा—हमारे उद्देश्य में सिर्फ निषेध की कल्पना नहीं होनी चाहिये। हम जो चाहते हैं उसका कुछ विधायक वर्णन होना चाहिये। इसलिये उद्देश्य में 'समूह और व्यक्ति को संपूर्ण विकास करने का अवकाश हो' ये शब्द जोड़ दिये जायँ।

प्यारेलाल—हम यह कहें कि इस समाज के नाम पर कोई चुनाव नहीं लड़ सकता।

राजेन्द्रबाबू—यह बात तो साफ ही है।

कृपलानीजी—इसके नाम पर कोई भी काम नहीं होगा, तो चुनाव कैसे लड़ा जायगा?

विनोबा—हमने जानबूझकर इसमें कोई शर्त्तें नहीं रखी हैं। इसको बिलकुल व्यापक रूप देनेके लिये सारी शर्त्तों को छोड़ दिया है। यह कोई पार्टी थोड़े ही है, जो चुनाव लड़े? उसके लिये काँग्रेस है। कांग्रेस यदि सत्ता की राजनीति छोड़ सकती, तो यह समाज बनाने की जरूरत ही न होती।

कोई संगठन न बने

देवदास गांधी——मैंने प्रस्ताव पढ़ा और व्याख्यान भी सुने। मुझे एक-दो बातें समझने में दिक्कत हुई। वे कुछ निरर्थकसी मालूम होती हैं। उनसे दूसरों को सन्तोष होता है, इसलिये विनोबाने कहा, रहने दो। हम इस तरह का सर्वोदय समाज बनाने का आग्रह क्यों रखें? यदि विनोबा की कल्पना का समाज बनाने में हम अपने आपको असमर्थ पाते हैं, तो इस प्रस्ताव को छोड़ ही क्यों न दें? नामों की फेहरिस्त रखनेकी बात बिलकुल बेमतलब की है। समझ लीजिये दो सौ नाम आये, या दो हजार ही आये, तो दुनियापर क्या असर पड़ेगा? लोग समझेंगे कि गांधीवालों की संख्या मुट्ठीभर है। फिर क्या नाम लिखाने के लिये घर घर जायेंगे? मैं समझता हूँ कि यह समय ही नहीं जब हम कोई समाज स्थापित करें। इसलिये मैंने इस प्रस्ताव को दूसरे शब्दों में रखा है।

(अपना प्रस्ताव पढ़कर सुनाया)

मगनभाई देसाई—मैं देवदास भाई की बातका समर्थन करता हूँ कि आज की परिस्थिति में किसी समाज की स्थापना करना उपयोगी साबित नहीं होगा।

आर्यनायकम्‌जी—मैं समझता हूँ कि ऐसा कोई समाज बनना गलत है।

(चर्चा स्थगित)

खुला अधिवेशन

ता. १४-३-'४८, तीसरे पहर, तीन बजे

राजेन्द्रबाबू—पहले ऐसे संशोधनों को ले लेता हूँ, जिनके बारे में कोई मतभेद नहीं। श्री गुलझारीलालजी नंदा अपना संशोधन पेश करें।

भावरूप लक्षण

गुलझारीलाल नंदा—मेरा अपना यह खयाल है कि सर्वोदय समाज की कल्पना को ज्यादा स्पष्ट करना जरूरी है। मूल प्रस्ताव में हमने अपने इरादे को नकारात्मक भाषा में रखा है। उससे हमें

क्या नहीं चाहिये, यह स्पष्ट होता है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं होता कि गांधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार समाज की रचना कैसी हो। हम जाति नहीं चाहते, शोषण नहीं चाहते, यह तो सही है, मगर क्या, चाहते हैं, यह नहीं कहा गया है। समाजवादी, साम्यवादी और अन्यवादी भी, जातिभेद-रहित और शोषणहीन समाज चाहते हैं। लेकिन उसके लिये व्यक्ति की स्वतंत्रतापर आक्रमण करना पड़े तो भी उन्हें खास परवाह नहीं है। हमारी समाज की कल्पना अलग होनी चाहिये। उसमें कुछ नवीनता होनी चाहिये। समाज किस तरह का न हो, इतना कहना काफी नहीं है। उसका स्वरूप-लक्षण भी बतलायें। गांधीजी की कल्पना में मध्यवर्ती सिद्धान्त व्यक्ति के विकास का था। इसलिये इस प्रस्ताव में मैं यह वाक्य जोड़ देना चाहता हूँ,

"और जिसमें समूह और व्यक्ति दोनों को पूरा पूरा विकास करने का अवसर मिले"।

(संशोधन मंजूर हुआ)

फुटकर सुझाव

राजेन्द्रबाबू—अब कुछ फुटकर सूचनायें हैं, उनको ले लें। श्री रघुवरदयालजी मिश्र की सूचना है कि मेले के लिये तारीख के बदले तिथि रखें।

रघुवरदयाल मिश्र—देहाती लोग तिथि समझते हैं, तारीख का उतना पता उन्हें नहीं होता। हम तीस जनवरी के बदले पंचमी रखें, तो उनके लिये अधिक नजदीक की चीज होगी।

राजेन्द्रबाबू—इस बात की चर्चा हो चुकी है। अलग अलग तरह के पत्रे-पंचांग और तिथियाँ चलती हैं। चान्द्रमास और सौरमास का भेद भी है। तिथि रखने में दिक्कत है। हमारा कोई एक देशी कैलेंडर नहीं है। आप खुद इस बात का विचार करें।

(सूचना वापस ली गयी।)

गोकुलभाई भट्ट—'सेवक' शब्द में कुछ अहंकार की गंध है। और कुछ सेव्य-सेवक भाव भी है। इसलिये बराबरी की भावना के वाचक शब्द हों। 'सेवक' की जगह 'साथी' या 'संगाती' कहें।

राजेन्द्रबाबू—सेवक के साथ जिस तरह कुछ कल्पनायें लगी हुई हैं, उसी तरह साथी-संगाती के साथ भी दूसरी तरह की कल्पनायें लगी हुई हैं। 'कामरेड' के अनुवाद के रूप में भी इन शब्दों का इस्तेमाल होता है। हम अधिक से अधिक निरुपद्रवी शब्द ले लेते हैं।

[सूचना वापस]

हृदयनारायण चौधरी—'मेला' शब्द के बदले 'सम्मेलन' शब्द हो। मेला शब्द के साथ कुछ तमाशे की भावना जुड़ी हुई है।

राजेन्द्रबाबू—मेला शब्द सोच-समझकर रखा गया है। एक अर्थ मनमें रखकर मेला शब्द का इस्तेमाल किया है। सम्मेलन रखेंगे तो उसके लिये प्रबन्ध करना होगा। लोगों को निमंत्रण भेजना होगा। फिर उसी झंझट में पड़ जायेंगे। मेला शब्द ही ठीक है।

(सूचना वापस)

हृदयनारायण चौधरी—'निसर्गोपचार' की जगह 'प्राकृतिक चिकित्सा' कहें।

(सूचना मंजूर)

'समाज' शब्द पर आपत्ति

श्रीमन्नारायण अग्रवाल—नाम में 'समाज' की जगह 'मंडल', 'संघ' या 'संगम' शब्द हो।

राजेन्द्रबाबू—समाज में बन्धन की भावना कम से कम है, मंडल, संघ आदि शब्दों में एक गठे हुए संगठन का भाव आ जाता है। हमने हल्के से हलका शब्द पसंद किया है। समाज शब्द ही बेहतर है।

श्रीमन्नारायणजी—नामका काफी महत्त्व है। उत्तरभारत में 'समाजी' शब्द का बुरा अर्थ होता है। कट्टर 'आर्यसमाजी' के लिये उस शब्द का प्रयोग करते हैं। सर्वोदयसमाज कहने से गांधीजी के नाम पर और एक कट्टरवादी पंथ बन जायेगा। लोग गांधीसमाज कहने लगेंगे। समाज शब्द परिचित है, लेकिन संध या उससे भी बेहतर संगम शब्द है। एक और अपरिचित शब्द आ जानेसे समझाने का मौका मिलेगा। यों 'समूह' शब्द रखें तो भी मुझे हर्ज नहीं।

दिवाकरजी—'समूह' जानवरों का भी होता है और 'संगम' में नदियों की कल्पना आती है।

राजेन्द्रबाबू—समूह मनुष्यों का भी होता है। आखिर मनुष्य भी एक जानवर है, जीवधारी है।

स्वामी सत्यानंद—समाज शब्द अच्छे अर्थो में भी चल पड़ा हैं। युक्त प्रांत में अच्छे अच्छे उर्दू अखबार भी अच्छे अर्थ में उसका प्रयोग करते है।

ठक्कर बाप्पा—मूल में समाज शब्द है, वही अच्छा है।

(सूचना वापस)

मातृभाषा या प्रान्त भाषा?

चित्तभूषण—मातृभाषा की जगह प्रांतभाषा क्यों लिखा गया?

राजेन्द्रबाबू—मातृभाषा शब्द से कई गलत-फहमियाँ और झगड़े पैदा होते हैं। किसी की मातृभाषा एक हो और प्रान्तभाषा दूसरी हो, तो विरोध पैदा होगा। इसके अलावा बोलियों का सवाल खड़ा होगा,

सो अलग। हमारी मातृभाषा भोजपुरी है। हम उससे काम नहीं ले सकते। भाषाकी भित्तिपर प्रान्तों का गठन हो तो भी भोजपुरी का अलग स्थान नहीं।

चित्तभूषण—राष्ट्रपतिजी, समस्त जन मंडली, मातृभाषा शब्द बापूका है। उनकी अष्टादश रचनात्मक कर्मपद्धति का वह एक अंग है। बापूका एक एक लफ्ज बहुत सोचविचारकर तौल, तौलकर रखा जाता था। हम उसे न छोड़ें। प्रान्तीय भाषा शब्द से भाषा की भित्तिपर प्रान्तों के गठन की भावना पैदा होती हैं। यह बातें गोलमाल पैदा करनेवाली है। भाषा की नींवपर प्रदेशसंगठन के बारेमें गणपरिषद (विधान परिषद) ने कोई निर्णय नहीं किया है, तबतक हम मातृभाषा शब्द ही रहने दें।

राजेन्द्रबाबू—बापूजीने भी अपनी अंग्रेजी पुस्तक में 'प्रॉविन्शियल लैंग्वेज' (प्रान्तीय भाषा) शीर्षक दिया है।

कृपलानीजी—हमारे इस संघकी सारी प्रवृत्तियाँ अखिल भारतीय स्वरूपकी होंगी। बापूने अपने कार्यक्रम में कोई प्रान्तीय बात नहीं रखी है। उस वक्त मातृभाषा इसलिये रखी कि अंग्रेजी चलती थी। अंग्रेजी के मुकाबले में उन्होंने मातृभाषाको स्थान दिया। लेकिन अब अंग्रेजी हट गयी है। इसलिये प्रान्तीय भाषाका प्रश्न प्रान्तीय हो जाता है। और मातृभाषा का प्रश्न सेक्शनल—विशिष्ट समुदाय का—हो जाता है। हमारे रचनात्मक कार्यों की सूची संपूर्ण नहीं है। इस में हम प्रान्तीय और विशिष्ट प्रश्न क्यों लावें? आप इसमें से 'प्रान्तीय भाषा' और 'मातृभाषा' की बात ही हटा दीजिये तो इस निरर्थक विवाद से बच जायेंगे।

चित्तभूषण—मैं इससे सहमत हूँ

जनताकी भाषाकी प्रतिष्ठा

काकासाहब कालेलकर—मातृभाषा का समावेश रचनात्मक कार्य में सिर्फ अंग्रेजी के डर से नहीं किया गया, बल्कि संस्कृत, फारसी, हिन्दुस्तानी आदि के डरसे भी किया गया। ये सब भाषायें साहित्य की भाषायें हैं। जनता की भाषायें नहीं है। हिन्दुस्तानी प्रान्तोंकी जनता की भाषा नहीं है। इसलिये हमें सावधानी रखनी चाहिये कि उसका प्रान्तीय भाषापर आक्रमण न हो। उसी तरह यह भी सावधानी रखनी चाहिये कि संस्कृत, फारसी आदि पंडितोंकी भाषाओं का मातृभाषापर आक्रमण न हो। हमें जनता तक पहुँचना हो तो जनताकी भाषा को अपनाना होगा। उसी भाषाके जरिये जनता को हम अपना सन्देश देंगे और जनता का हृदय बोलेगा। आप उसकी बोलीका, अवधी या भोजपुरी का, या तो विकास करें या उसे विचारपूर्वक छोड़ दें। उन बोलियोंको प्रान्तीय भाषाओंमे विलीन कर दें। इस प्रश्नको हम प्रादेशिक या विशिष्ट समुदायों का समझकर छोड न दें। यह एक अखिल भारतीय सांस्कृतिक प्रश्न है। कहीं भाषिक साम्राज्यवाद न आ जाय। अगर हम इसे प्रान्तीय

बात कहते हैं, तो अस्पृश्यता-निवारण को भी जातीय कहना होगा। और स्त्रियों की बात विशिष्ट संप्रदाय-संबंधी हो जायगी। अगर प्रान्तीय भाषाका विकास न होगा तो मैं राष्ट्रभाषा का या हिन्दुस्तानीका प्रचार नहीं कर सकूँगा! नहीं करना चाहूँगा।

देश की भाषाएँ

किशोरलाल मशरूवाला—मैं समन्वयवादी होने के लिये प्रसिद्ध नहीं हूँ। फिर भी समन्वय करने का भार अक्सर मुझपर आता है। मैं सुझाता हूँ कि हम प्रान्तीय भाषा और मातृभाषा दोनों प्रयोग छोड़ दें। 'देशकी भषाओं का विकास' कहें।

[संशोधन मंजूर]

रंगभेद, देशभेद

राजगोपाल कृष्णैया—हम एक ऐसा नियम भी बनावें कि इस समाज में रंगभेद और देशभेद को मिटाने की भी कोशिश होगी। संसार में सिर्फ जातिभेद और वर्गभेद ही नहीं हैं। अफ्रिका में देखिये क्या चल रहा है। अमरीका में नीग्रो समस्या है। हमारा समाज सिर्फ हिन्दुस्तान के लिये नहीं है। तमाम दुनियाके लिये है। इसलिये हमको अपने कामों में रंगभेद-निवारण और देश-भेद-निवारण भी शामिल कर लेना चाहिये।

(सूचना वापस)

पार्लियामेंटरी काम

रामलिंगम रेड्डी—इस समाज का सेवक राजनीति में शामिल हो या न हो, पार्लियमेंटरी काम में जावे या न जावे, इस के बारे में नियम बनाना चाहिये।

राजेन्द्रबाबू—हम इस समाज के जरिये से कोई काम करना या कराना नहीं चाहते, समाज किसी राजनैतिक मामले में या चुनाव वगैरह में भाग नहीं लेगा। सदस्य चाहे जो कर सकता है। यह उस की अपनी आत्मा के निर्णय का सवाल है। समाज किसी काम में नहीं पड़ेगा। सदस्य के लिये बंधन नहीं है।

नृशंसता का निषेध हो

स्वामी सत्यानंद—सदस्य के लिये कोई भी नियम न हो यह तो ठीक नहीं। हम को इकट्ठा करने के लिये कोई बुनियाद तो हो। कुछ तो आधार हो। नहीं तो हमारे पैरों के नीचे धरती ही नहीं रहती। कम से कम इतना कहिये कि फलाना काम इस समाज का आदमी नहीं कर सकता। और कुछ नहीं, तो यह कहिये कि इस समाज का सदस्य किसी हालत में भी नरहत्या नहीं करेगा। बस, यह जमीन होगी जिसपर हम खड़े होंगे। इस बातको हिम्मत के साथ, मजबूती के

साथ, ऊँची आवाज से कहें। हिन्दू के लिये जैसी मर्यादा है कि जो गौहत्या करेगा वह हिन्दू नहीं रह सकेगा, उसी तरह हमारी मर्यादा हो कि जो नरहत्या करे वह मनुष्य नहीं रह सकेगा। यह हमारी लक्ष्मण की रेखा हो।

राजेन्द्रबाबू—आप की बात में बहुत कुछ सार है। आज कुछ ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है कि लोग नरहत्या को भी मामूली चीज, एक हलकीसी बात, समझने लगे हैं। इसलिये यह कहना जरूरी हो गया है कि मनुष्य नरहत्या न करे। लेकिन हम इसी को अपना नियम बना लेंगे तो कुछ ऐसा अर्थ निकलेगा कि नरहत्या से कुछ कम पातक की इजाजत मिल जाती है।

स्वामी सत्यानंद—व्यंजना से भी ऐसा अर्थ नहीं निकलता।

राजेन्द्रबाबू—फिर भी नरहत्या के निषेध का नियम बनाकर हम मनुष्य का अपमान क्यों करें ? नरहत्या से कम पातक भी हम मना करते हैं।

स्वामी सत्यानंद—लेकिन आज ऐसा जमाना आ गया है। जब सब तरफ नरहत्या का सिलसिला जारी है। हम कम से कम हर हालत में और हर तरह की नरहत्या को निषिद्ध करार दें। यह हमारा लोहेका खूँटा हो, वज्र की लकीर हो।

[संशोधन नामंजूर]

सैनिककार्य और राजनैतिककार्य

काका कालेलकर—नरहत्या के सवाल में से एक सवाल पैदा होता है। क्या सैनिक हमारे समाज का सभासद बन सकता है ?

राजेन्द्रबाबू—इस का निर्णय तो वह स्वयं करेगा।

भाऊ धर्माधिकारी—रचनात्मक कामों की सूची में राजनैतिक कामों का समावेश क्यों नहीं किया गया ?

राजेन्द्रबाबू—इसलिये कि समाज कोई राजनैतिक काम नहीं करेगा। व्यक्ति कर सकेगा।

भाऊ धर्माधिकारी—समाज की तरफ से तो किसी भी तरह का काम न होगा। फिर भी हमने कामों की एक तालिका बनायी है। उन में राजनैतिक काम भी शामिल क्यों नहीं किया जाता ?

राजेन्द्रबाबू—राजनैतिक काम की व्याख्या करना असंभव है, इसलिये।

काकासाहब कालेलकर—ये जितने काम बतलाये गये हैं सभी राजनैतिक हैं।

कान्ति मेहता—क्या सरकारी अफसर हमारे सदस्य बन सकते हैं ?

राजेन्द्रबाबू—जो अपने को मानें, वे सब हो सकते हैं।

स्त्री-पुरुष की समान प्रतिष्ठा

विनोबा—एक सुझाव आया है कि 'स्त्रियों को पुरुषों की बराबरी के हक दिलाना' की जगह 'समाज में स्त्री पुरुष की परस्पर-प्रतिष्ठा बराबर कराना' ये शब्द हों।

सरलाबेन साराभाई—यह संशोधन मेरा है। मैं यह नहीं कहती कि उन शब्दों की जगह ये हों। मूल में ये शब्द जोड़ दिये जायँ। हमें वास्तविक और तात्विक दोनों बाबतों की जरूरत है। हक और प्रतिष्ठा दोनों चाहिये। इसलिये हक की बात हटानी नहीं चाहिये।

वासन्ती बहन—उसमें हक की बात न हो।

'अधिकार' भी चाहिए

सुशीला पै—हक तो चाहिये ही। लेकिन हक के साथ समभाव की भी बात हो। संशोधन में दोनों का समावेश करना चाहिये।

सरलाबेन साराभाई—मैं थोड़ासा खुलासा कर देना चाहती हूँ। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी नहीं हैं। लेकिन आज समाज में काम करते समय जो अनुभव हुआ उसके कारण स्त्रियों के उद्धार की बात रचनात्मक कार्यक्रम में रखनी पड़ी। हमारी आर्यसंस्कृति में स्त्रियों का स्थान बहुत बड़ा है। लेकिन दुःख की बात है कि समाज में उनका स्थान बहुत नीचा है। मैं यह नहीं कहती स्त्रियों को देवी समझकर पूजा जाये। लेकिन स्त्री-पुरुष दोनों में परस्पर प्रतिष्ठा की भावना और बराबरी का नाता हो, यह बात जरूरी है। इसलिये मूल प्रस्ताव में मेरी बात जोड़ दी जाय। उसके स्थान में यह रखने का सुझाव नहीं है।

किशोरलाल भाई—मैं भी इस मामले में थोड़ा खुलासा करना चाहता हूँ। मैंने सरलादेवी के कारकुनका काम किया। इस विषय में थोड़ी गलतफहमी हो गयी है। मूलशब्दों के बदले ये शब्द रखे जायँ ऐसी मन्शा नहीं थी। मैंने सरलाबहनको अपना खयाल समझाया और मैंने मान लिया कि वे समझ गयीं। अलग अलग बहनों के सुझावों का इसमें समन्वय है। कुछ बहनोंने 'स्त्रियों के प्रति पुरुषों का समभाव और पुरुषों के प्रति स्त्रियों का समभाव' या 'परस्पर-समभाव' ये शब्द सुझाये थे। कुछ बहनोंका हकपर जोर था। इसलिये 'समभाव' शब्द से 'प्रतिष्ठा' शब्द श्रेयस्कर समझा गया। इसमें योग्य हक, योग्य चरित्र, योग्य विद्या, योग्य शक्ति, सभी बातों का समावेश हो जाता है। 'समान हक' शब्द का लोग मजाक उड़ाया करते हैं। वे कहते हैं, 'आखिर माँ तो आपको ही बनना पड़ेगा'। बराबरीका अर्थ एकरूपता मान लिया जाता है। इसलिये हकका खास जिक्र न करते हुये प्रतिष्ठा शब्द रखा गया। लेकिन इतने से बहनों को सन्तोष न हो तो अधिकार की बात भी साफ कर देना जरूरी है। इसलिये मूलमें जो शब्द हैं, उनको रखकर सरलाबेन का संशोधन जोड़ लिया जाय।

सुशीला पै—यह प्रस्ताव कायमी चीज़ है। इसलिये उसे जितना निर्दोष रूप दिया जा सके, देना चाहिये।

मातृत्व सबसे बड़ी प्रतिष्ठा

आशादेवी—मुझे यह चर्चा सुनकर बड़ा दुख हुआ है। अधिकार और प्रतिष्ठा शब्दों के बारे में यह झगड़ा क्यों? प्रतिष्ठा कहीं विवाद से मिली है? स्त्री को प्रतिष्ठा तो प्रकृति से ही मिली है। मातृत्व के अधिकार से बड़ी प्रतिष्ठा और कौनसे हो सकती है? जैसा कि विनोबाजी ने कहा, ईश्वर के बाद संसार में सब से प्रतिष्ठित शब्द माँ है। इतना होते हुये भी समाज में स्त्री अगर पुरुष के बराबर प्रतिष्ठा न पाती हो तो वह उसका अपना दोष है। उसकी अपनी कमजोरी है। उसके लिये तपस्या, साधना, की जरूरत है। विवाद और बहस की नहीं। आर्यसंस्कृति का यही मार्ग है।

(संशोधन मूल में जोड़ दिया गया। और 'दिलाना' शब्द निकाल दिया गया।)

नाम हिन्दुस्तानी में हो

मुन्नालाल शहा—मेरा यह संशोधन है कि इस समाज का नाम बदल दिया जाय। सर्वोदय शब्द बापू उस वक्त काम में लाये थे जब उन्हें हिन्दी-उर्दू का फर्क मालूम नहीं था। आज वे होते तो हिन्दुस्तानी का कोई शब्द रखते। बापू के दिये हुये पुराने नाम संस्कृत हैं। जैसे गुजरात विद्यापीठ, राष्ट्रीय शाला, सत्याग्रह-आश्रम वगैरह। बाद के नाम हिन्दुस्तानी में रखे गये हैं। जैसे तालीमी संघ आदि। नाम से भी प्रचार होता है। नाम ऐसा होना चाहिये कि बिना पूछे समाज के मकसद का पता चले। अम्तुस्सलाम पंद्रह साल बापू के पास रहीं। वे तक सर्वोदय शब्द नहीं समझ सकीं। देहाती मुसलमान इसे कहाँ से समझ सकेंगे? उत्तर के हिन्दुस्तानी नहीं समझेंगे। इसलिये इसे बदलना चाहिये। नामकरण संस्कृत के बदले हिन्दुस्तानी हो। 'गांधी समाज' या 'लोकसेवा समाज' नाम हो। गांधीजी के नाम से डरनेकी जरूरत नहीं।

स्वामी जगदीशनारायण—मैं मुन्नालाल शहा के संशोधन से सहमत हूँ। गांधी का नाम लेते ही लोगों की समझ में आ जायेगा।

संस्कृत शब्द हिन्दुस्तानी के हैं

काकासाहब कालेलकर—हिंदुस्तानी में फलाँ शब्द आता है और फलाँ नहीं आता, यह कहने-वाले हिन्दुस्तानी के ये पुरोहित कौन हैं? यह शब्द हिन्दुस्तानी का है और यह नहीं है, यह कहना व्यर्थ है। क्या हिन्दुस्तानी को संस्कृत शब्दों से परहेज़ है? संस्कृत कोई गुनहगार भाषा तो नहीं है। हिन्दुस्तानी में वे तमाम हिन्दी और तमाम उर्दू शब्द आते हैं जो मौजूदा हों और आइंदा गढ़े-जानेवाले हों। उसमें दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व की भाषाओं के शब्द भी आते हैं। उसे न

संस्कृत के शब्दोंमें परहेज है, न अरबी-फारसी के। जो अच्छे शब्द होंगे, जनता जिनको अपनायेगी, वे टिकेंगे। जो जनता के गलेसे सहज नहीं निकलेंगे या सुन्दर नहीं होंगे, वे नहीं ठहरेंगे। हिन्दुस्तानीके मामले में सुन्दरलालजी के पुरोहितपन से मैं घबड़ा गया हूँ। कदम कदम पर हिन्दुस्तानी के नाम पर वे ऐतराज उठाते हैं। यह शब्द चलेगा वह शब्द नहीं चलेगा, कहकर भाषामें प्रचलित सुन्दर सुन्दर शब्दोंको भी निकाल देना चाहते हैं। इस तरह संस्कृत शब्दोंके प्रति प्रतिकूलता से एकता नहीं बढ़ेगी, झगड़ा बढ़ेगा। मुझे सुन्दरलालजी के प्रति आदर है। लेकिन वे जो भाषा बोलते हैं वह राष्ट्रभाषा नहीं, प्रान्तभाषा है। हम प्रान्तीय भाषाभाषी राष्ट्रभाषा बनायेंगे। हर शब्द पर आपत्ति उठाकर हमें बात बातमें परेशान क्यों किया जाता है? हमारे साधुसंतोंने जनता में अध्यात्मका प्रचार किया। अध्यात्मके कठिन से कठिन शब्द जनता समझने लगी। हमें सिर्फ उतने ही शब्दोंका प्रयोग नहीं करना है जिनको जनता समझती और बरतती है। नये नये शब्द रूढ़ करके जनता की समझने की शक्ति भी बढ़ानी है। जिन शब्दों में विचार और भावनाकी ताकत होगी, वे जनता के हृदयमें स्थान पायेंगे। जनता में जो शब्द प्रचलित हैं उन्हींको लेकर हम बैठ जायेंगे तो न हिन्दुस्तानीका विकास होगा न जनताका। इसलिये यह ऐतराज बिलकुल गलत है।

'सर्वोदय' शब्द हिन्दुस्तानी है

सुन्दरलालजी--मुझे काकासाहबसे सचमुच शिकायत है, गहरी शिकायत है। काकासाहबने इस बहस में मेरा नाम फिजूल घसीटा। मैं सिर्फ दो बातें कह देना चाहता हूँ। एक, जिस भाषामें वह प्रस्ताव पहले लिखा गया था, वह हिन्दुस्तानी नहीं थी। मैंने उसकी भाषा सुधार ली है। जिन्होंने प्रस्ताव बनाया उन्होंने मेरी बात मान ली। काकासाहबकी भाषा हिन्दुस्तानी नहीं है। कभी हो भी नहीं सकती। वे तो प्रान्तीय भाषाभाषी हैं। लेकिन मेरी माँ, दादी, नानी, सबकी भाषा हिन्दुस्तानी थी। मैं हिन्दुस्तानी में पैदा हुआ, उसीमें पला हूँ। इसलिये हिन्दुस्तानीका अधिकारी मैं हूँ। अमुक शब्द हिन्दुस्तानी है या नहीं, इसके विषयमें प्रमाण मैं हूँ, काका नहीं हो सकते। एक बात और। मैंने यह कभी नहीं कहा कि सर्वोदय शब्द हिन्दुस्तानी नहीं है। मैंने उसपर ऐतराज नहीं उठाया। मैं उसे हिन्दुस्तानी मानने के लिये तैयार हूँ। संस्कृत के आसान शब्द जो मुसलमानोंके गलेसे निकल सकते हैं और अरबी-फारसी के वे शब्द जो हिन्दुओंके गले से निकल सकते हैं, सब हिन्दुस्तानी हैं। मैंने इससे कब इन्कार किया?

(**निर्णय**—'सर्वोदय शब्द' रहे।)

उद्देश्य में संशोधन

मुन्नालाल शहा—मेरा दूसरा संशोधन उद्देश्य में परिवर्तन करने के बारेमें है।

[परिशिष्ट देखिये]

ठक्कर बाप्पा—मेरा 'पॉइन्ट ऑव ऑर्डर' है। क्या यह चीज पहले ही तै नहीं हो चुकी है? अब कोई संशोधन कैसे लाया जा सकता है?

राजेन्द्रबाबू—नहीं, निर्णय नहीं हुआ था, सिर्फ बहस हुई थी।

मुन्नालाल शहा—हमारे कार्यक्रम में जो बातें लिखी गयी हैं, उनमें से पहली चार बातें लें। वे इतनी महत्त्वकी हैं कि उनका स्थान उद्देश्य में होना चाहिये।

राजेन्द्रबाबू—यहाँ जितनी बातें लिखी गयी हैं वे सब दृष्टान्त के रूपमें समझिये। इस संशोधन का विचार विषय-नियामक समिति कर लेगी।

हिन्दुस्तानी के बदले हिन्दी

व्यौहार राजेन्द्रसिंह—हिन्दुस्तानी प्रचार के बदले हिन्दी प्रचार शब्द रखा जाय। हिन्दी का व्याकरण, भाषा, नियम सब निश्चित है। इसलिये हिन्दुस्तानी के बदले हिन्दी कहें। जो भाषा हजारों वर्षों से सन्तोंकी भाषा रही है उसी को क्यों न लें? हिन्दी हिन्दुओं की भाषा है ऐसा नहीं। इस भाषा का प्रचार पुराने जमाने में मुसलमानों के द्वारा भी काफी हुआ। उन्होंने इसे 'हिन्दवी' नाम दिया था। हिन्दुस्तानी नाम अंग्रेज़ों का दिया हुआ है। हिन्दी भाषा गुजराती, मराठी बंगाली आदि प्रान्तीय भाषाओं के निकट है। पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से भी संस्कृत से ही प्रान्तीय भाषायें शब्द लेती हैं और हिन्दी भी उसी सम्मिलित निधिसे लेती है। हिन्दीका स्वरूप निश्चित है। हिन्दुस्तानी के स्वरूप के बारे में काकासाहब और सुन्दरलालजी ऐसे उसके दो तगड़े प्रचारकों में भी इतना मतभेद है। इस के अलावा लिपियोंका झगड़ा है। हिन्दी-उर्दूकी खिचड़ी बनाकर उसे दोनों लिपियों में लिखने की बात व्यर्थ है। बापू तो केवल एक राष्ट्रभाषा चाहते थे। वह हिन्दी ही हो सकती है।

'हिन्दुस्तानी' ही क्यों?

काका कालेलकर—मैं चाहता था कि सर्वोदयसमाज की स्थापना के वक्त हमारे ये हर रोज के झगड़े न आते। पंद्रह सालतक मैंने हिन्दीवालों के साथ काम किया है। और अनुभव के बाद 'हिन्दुस्तानी' नाम स्वीकृत किया है। हिन्दी नामसे ग़लतफ़हमी होती है। 'हिन्दुस्तानी' शब्द शुद्ध है। वह अंग्रेज़ों का दिया हुआ नहीं है। उत्तरभारत के लोग और उनकी भाषा हिन्दुस्तानी कहलाती रही। आज भी दक्षिण भारत के लोग उसे हिन्दुस्तानी कहते हैं। नामदेव के भजन हिन्दुस्तानी भजन कहलाते हैं। जब कोई उत्तर की भाषा में बोलता है तो दक्षिण के पुराने आदमी कहते हैं 'यह हिंदुस्तानी में बोलता है।' हम दक्षिण के लोग शुरू से राष्ट्रभाषा को हिन्दुस्तानी के नामसे पहचानते आये हैं। उसका साहित्य भी है। बाद में उसके दो प्रवाह हो गये—हिन्दी और उर्दू। दोनों को मिलाने के लिये गांधीजी ने हिन्दुस्तानी नाम पसंद किया। उन्होंने सोच-समझकर हिन्दी नामको छोड़ा और हिन्दुस्तानी शब्द को अपनाया। मुझे राष्ट्रभाषा के लिये हिन्दी या उर्दू इनमें से कोई भी नाम ले लिया जाय तो भी ऐतराज नहीं। लेकिन ये दोनों दो सिरे हो गये हैं। हमारा

उनको दोनोंको मिलानेका इरादा हिन्दी या उर्दू नाम से स्पष्ट नहीं होगा। इसलिये हिन्दुस्तानी नाम श्रेयस्कर समझा गया। सुन्दरलालजी की भी यही राय है। उनके साथ मेरा झगड़ा घरेलू है। हिन्दुस्तान का भविष्य न हिन्दी के हाथमें है न उर्दू के, बल्कि हिन्दुस्तानी के हाथ में है।

'हिन्दुस्तानी' जनता की बोली

सुन्दरलालजी—मैं तो यह गलतफहमी दूर करना चाहता हूँ कि हिन्दी किसी सूबेकी ज़बान है। व्यौहार राजेन्द्रसिंहजी की यह गलतफहमी है कि हिन्दी उत्तर-भारत की भाषा है। बनारस में, अलाहाबाद में, मेरी भाषा समझी जायेगी। हिन्दुस्तानी बोल-चाल की भाषा है। हिन्दी और उर्दू दोनों बनावटी भाषायें हैं। मेरी कुदरती हिन्दुस्तानी जीयेगी, तुम्हारी बनावटी हिन्दी, उर्दू, दोनों मरेंगी। 'उम्र' के लिये 'आयु', 'धरती' के लिये 'पृथ्वी', यह सब कृत्रिम भाषा है। हिन्दुस्तानी बोली है। यानी वह जनता की भाषा है।

[संशोधन नामंजूर। हिन्दुस्तानी शब्द रहा]

नागरिकता की शिक्षा

कोंडा वेंकटप्पय्या--मैं भी प्रस्ताव में संशोधन चाहता हूँ। हमको बापूजी की सारी मुख्य मुख्य बातों का समावेश अपने कार्यक्रम में करना चाहिये। बापूजी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सभी मामलों में सलाह और मार्गदर्शन देते थे। यह समाज भी उसी तरह राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक क्षेत्रों में शिक्षण दे। नागरिक का धर्म क्या हो, इसका शिक्षण देना आज बहुत ज़रूरी है। लोगों का चरित्र इसके बिना बन नहीं पावेगा। हमको अगर अपने राष्ट्र का निर्माण करना है, तो इस शिक्षण का समावेश सर्वोदयसमाज के कार्यक्रम में होना चाहिये।

किशोरलाल भाई—पूज्य कोंडा वेंकटप्पय्या पंतलुगारु ने जो संशोधन पेश किया है, उसका मतलब यह है कि कार्यकर्ताओं को शिक्षण देने का काम यह समाज करे। अध्यक्ष ने इसके बारे में पहले ही खुलासा किया है कि सर्वोदयसमाज अपनी तरफ से कोई काम नहीं करेगा। यह तो एक भाईचारा है। सब संघों के एकीकरण से जो महासंघ या मिलापी संघ बनेगा उसके दायरे में यह कार्य आ सकता है। श्री कुमारप्पा और जाजूजी के पास यह संशोधन भेज दिया जाय।

[संशोधन वापस]

राजेन्द्रबाबू--अब सारे संशोधन खत्म हो गये हैं। इस प्रस्तावपर ज्यादा बहस की जरूरत नहीं है। इसलिये मैं अब-संशोधित प्रस्तावपर वोट लेता हूँ।

[संशोधित प्रस्ताव सर्वानुमति से मंजूर]

कल सबेरे आठ बजेसे विषय-निर्वाचिनी की सभा होगी।

[बैठक स्थगित]

विषय-निर्वाचिनी समिति

ता. १५-३-'४८, सबेरे, आठ बजकर बीस मिनिटसे

राजेन्द्रबाबूः—आज हमको जरा देर हुई, आप लोग माफ़ करें।

धोत्रेजी—रचनात्मक संघों में से पांच संघों को मिलाने की बात तै हुई।

मिलापी संघ की योजना

विनोबा—सब संघों को एकत्रित करना मुश्किल काम है। हरेक के अलग अलग विचार हैं। बेहतर यह है कि कम से कम संघों से आरंभ करें। बाद में ज्यादा मिला लें। बापूने पांच कहे। ये ज्यादा मालूम होते हों तो तीन रखें। ज्यादा को अेकदम शामिल करने में देर लगेगी, मुश्किलें पैदा होंगी। इसलिये अभी समग्रसमिति पांच या तीन की बने।

किशोरलाल भाई—आदेश देने का अधिकार हमें नहीं है। हम विज्ञप्ति मात्र करें या सिफारिश करें। कितने संघ रहें और कब शामिल हों, ऐसी हिदायत देने का हमें अधिकार नहीं है। पहले से उनकी अनुमति ले ली होती, तो बात दूसरी थी। हम अपनी तरफ से अनुरोध करें कि पाँच से अधिक संघ शुरू में न रखे जायँ। मानने-न-मानने का उन संघों को अधिकार है।

जाजूजी—जो आपकी अिच्छा है वही रचनात्मक संघवाले भी चाहते हैं। आप केवल अिच्छा प्रदर्शित करें। तफ़सील में न उतरें। संघों के प्रतिनिधियों की सभा कौन बुलावे, वगैरह, लिखने की जरूरत नहीं। इस सूचना पर अमल करने के लिये कुमारप्पाजी को अधिकार दे दें।

कुमारप्पा—मैं किशोरलाल भाई से सहमत हूँ। इस बात का निर्णय रचनात्मकसंघ स्वयं करें। यह बात उनकी प्रवृत्तिपर छोड़ दी जाय।

गोपाळराव काळे—इस कामका नेतृत्व चरखा संघको दिया जाय।

किशोरलाल भाअी—वह तो कुमारप्पा को सौंपा जा चुका है।

जाजूजी—आज मैंने रातको बैठक बुलायी है।

धोत्रेजी—मैं प्रस्ताव का मसौदा सुनाता हूँ।

[प्रस्ताव नं० ३ पढ़ सुनाया। परिशिष्ट देखिये]

शरणार्थियों का प्रश्न

राजेन्द्रबाबू—शरणार्थियों का प्रश्न अब हम फिर से लेते हैं। यह मामला जरा टेढ़ा है। सरकार की मदद के बिना हम कुछ नहीं कर सकते हैं। न हमारे पास अख्तियार है, न पैसा है, न

साधन-सामान है और न जमीन है। हमारा काम दूसरे किस्म का हो सकता है। एक तो लोगों के मोराल (धीरज) को कायम रखना और दूसरे उनकी कठिनाइयाँ कम करना। हम अपनी मर्यादाओं को समझें तभी कुछ व्यावहारिकरूप से मदद कर सकेंगे। लोगो की अन्दर की बुराइयों को हटाने में भी एक हदतक ही हमारा उपयोग हो सकता है। शरणार्थियों में दो तरह के लोग हैं। खेतीवाले और व्यापारी। खेती करनेवालों को जमीन देनी होगी और पहली फसल होनेतक मदद देनी होगी। जो लोग दूकानदारी ही कर सकते हैं उनका सवाल थोडा मुश्किल है। पहले से हर शहर में व्यापारी हैं ही। तो फिर ये कैसे खपें? उनको अलग अलग शहरों में बांटना होगा। नौकरीवालों का क्या किया जाय? व्यवसायों में या सरकारी मुलाजिमत में जगह खाली नहीं है। यहाँ के लोगों का अिन्तजाम करना भी मुश्किल हो गया है। ये सब सवाल सरकार की मदद के बिना हम अपने बल पर हल नहीं कर सकते।

यह सवाल जितनी जल्दी हल हो सके उतना ही अच्छा। क्यों कि उसके कारण परिस्थिति बिगड़ती जाती है। इधर बिहार में या देहली में भी पहले के बाशिन्दों में कम्यूनल टेन्शन—साम्प्रदायिक तनाज़ा—कम हो गया है। जो लोग बाहर से आये हैं उनका दिल रंज से भरा हुआ है। यहाँ न रोजगार है, न आराम है। बेकारी के सबब से जो क्लेश सहने पड़ते हैं उनके कारण दिलमें गुस्सा भरा रहता है। वह दूसरों पर निकलता है। जहाँ मुसलमान होते हैं वहाँ उन पर निकलता है। अब मुसलमान हट गये हैं इसलिये दूसरों से उलझ जाते हैं। जहाँ और कोअी न हो। वहाँ आपस में झगड़ने लगते हैं। सरकार कोई दस लाख रुपये रोज उनको खिलाने में खर्च करती है। ऐसा कितने दिन तक चल सकता है? गवर्नमेंट का काम सुस्ती से चलता है। हम शरणार्थियों की सहायता के लिये संगठन कर के थोड़ी-बहुत मदद पहुँचा सकते हैं। मुख्य काम उनके दरमियान जाकर रहने का और उन्हें सम्हालने का है। केवल ज़बानी उपदेश से क्या होगा? उन्हें अपनी गुजर करने का मौक़ा मिलना चाहिये। इसलिये सरकार की मदद हो तभी हमारे रहने का कुछ असर हो सकता है। इस तरह यह सवाल काफ़ी जटिल है। आप सोचें कि हम इसमें क्या कर सकते हैं। जो कैंप अच्छा होता है उसमें भीड़ अधिक होती है। तब सवाल यह होता है कि हम भीड़वाले कैंम्प में जायें या जहाँ इन्तजाम में दोष है ऐसे कैंप में जायँ?

काम के सुझाव

देवप्रकाश नैयर—मुझे बिहार का तजरबा है। वहाँ का कैंप अच्छा है, तो सब वहीं आ जाते हैं। सरकारी और गैरसरकारी कमिटियों में सहयोग कराने के लिये एक कोऑर्डिनेटिंग कमिटी है। वहाँ कई तरह की समस्यायें हैं। एक तो विद्यार्थियों की समस्या है। यह समस्या बहुत बड़ी है। विद्यार्थियों के लिये फीस और किताबें चाहिये। दूसरी समस्या है, माँगें कहाँतक जायज है, अिसका पता लगाना। लोग अपनी माँगे बहुत बढ़ाचढ़ाकर बताते हैं। ग़ैरसरकारी चन्देमें से कालिज के लड़कों को पेशगी रुपया दिया जा सकता है। सबसे बड़ी बात विबक डिस्पोजल—योजना पर जल्द

से जल्द अमल करने की—है। तीसरी बात, कितने सूत्रों में किस तरह की गुंजाइश है, इसकी जानकारी मिलनी चाहिये। इसके लिये एक केन्द्रीय कमिटी हो। कहाँ कहाँ किस किस किस्मके आदमियों की जरूरत है, इसका यह कमिटी पता लगाये। जहाँ खेतीवालों की जरूरत हो वहाँ खेती करनेवालों को भेजा जाय, जहाँ रोजगारियों की जरूरत हो वहाँ रोजगारियों को भेजा जाय। जिलावार कमिटियाँ शरणार्थियों को इत्तिला और मुहलत दें कि हमारे पास ये ये जगहें तुमको खपाने के लिये हैं, इतने दिनों में चुन लो। सरकार की बात उन्हें अखरती है। हमारा नाता सेवा का होता है। इसलिये हम कड़वी बात भी समझा सकते हैं। व्यापारियों का सहकार गैरसरकारी संस्थायें ज्यादा प्राप्त कर सकती हैं। चौथी बात, पैसा इकट्ठा करने की है। पांचवी बात, उनको कोई न कोई उद्योग सिखाना, जो उद्योग वे जानते हैं उनको तरक्की देना। छठी बात, मकानात बनवाने में मदद करना। इसमें एक दिक्कत है। हिन्दुस्तानियों का तरीका कुछ ऐसा है कि हरेक का अलग अलग रहन-सहन होता है। इसलिये छोटी छोटी टेंपररी झोपड़ियाँ बनवायी जायँ। एक स्वास्थ्यपूर्ण बस्ती बने। जिससे लोग अनीति और रगड़-झगड़ से बचें। सातवाँ काम, उनके बीच रहकर तालीम देना है। आठवीं बात, जो हिन्दी नहीं जानते हैं उन्हें हिन्दी सिखाना। नौवीं बात, किताबें अिकट्ठी करना। दसवीं बात, उनकी संख्या के बारे में सब तरह के आंकड़े अिकट्ठे करना और उन्हें अलग अलग जगहों पर भेजना। नहीं तो बहुत मुश्किलें पैदा होती हैं। मसलन, बिहार के हिस्से में दस हज़ार शरणार्थी आने चाहिये थे। उसकी जगह बाईस हजार आ गये हैं। इनको रोज़गार देना है। काम का चुनाव तो शरणार्थियों पर ही छोड़ना पड़ेगा। ये सब बातें हैं। मुख्य चीज गवर्नमेंट के काम में तेज़ी और लचीलापन आना चाहिये। इसके लिये बफर और शॉक-अॅब्सॉर्बर का काम करनेवाली एक कोऑर्डिनेटिंग कमिटी हो।

किशोरलाल भाई—आपकी सिफारिश क्या है? क्या यहाँ कोअी कमिटी बनायें?

देवप्रकाश नैयर—चाहें यहाँ बनायें या और कहीं बने। चोटी के आदमियों की, प्रातिनिधिक और प्रतिष्ठित आदमियों की, कमिटी बने।

आश्वासन की जरूरत

मृदुलाबेन साराभाई—मुझे पंजाब और बिहार में जो अंगत (निजी) अनुभव हुआ, उसके आधार पर कुछ बातें कहना चाहती हूँ। पंद्रह अगस्त से पहले बापूके साथ बिहार में रहने का मौका मिला। दो बातें खास तौर पर ध्यान में आयीं। १) बंगाल और बिहार में जो कुछ हुआ वह सिर्फ़ कम्यूनल-साम्प्रदायिक—नहीं था। उसमें एक पद्धति थी। एक व्यूहरचना के मुताबिक काम हुआ। धीरे धीरे द्विराष्ट्रवाद का बाक़ायदा विकास किया गया। २) पंद्रह अगस्त के बाद जो कुछ पंजाब में हुआ, उसकी सारी तैयारी पहले से हो रही थी। पंजाब में जो दावानल हुआ वह वहाँ की जनताने नहीं किया था। जिन लोगों को द्विराष्ट्रवाद के द्वारा पाकिस्तान बनाना था, उन लोगोंने व्यवस्थित

रूप से इसकी तैयारी की थी। पंद्रह अगस्त के बाद और उससे पहले भी कांग्रेस अपना घर सम्हालने में लगी थी। जनता में जो शक्तियाँ जागृत हुईं थीं, उनका उपयोग कांग्रेस नहीं कर सकी। इस अवसर से विरोधियों ने फ़ायदा उठाया। राष्ट्रद्रोही शक्तियाँ आज भी वहाँ अपना काम करती जा रही हैं। बापूने बिहार और नवाखाली में जिस प्रक्रिया से काम लिया उसकी ज़रूरत है। पंजाब और बंगाल में हमारे अनुभवी और मँजे हुअे कार्यकर्ता जा कर बहुत कुछ मदद पहुँचा सकते हैं। पहला काम तो अल्प-संख्याकों की हिफ़ाज़त का है, और दूसरा प्रजा की भीतरी शक्ति बढ़ाने का है। पंद्रह अगस्त के बाद दो सरकारें हुईं। दो नई सीमाअें कायम हुईं। अब वहाँ हमें फ्रान्टियर की—सरहद की—मनोवृत्ति पैदा करनी है। वहाँ नैतिक पुनर्निवास की आवश्यकता है। हम अपने काबिल कार्यकर्ताओं को पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल की सीमाओंपर भेजकर लोगों का नीतिधैर्य बनाये रखने का काम करें। दूसरी बात, पाकिस्तान का यह दावा कि हम अल्पसंख्याकों की हिफाजत करेंगे कहाँतक सही है, यह भी देखना चाहिये। एक तटस्थ समिति इसकी जाँच करे। वहाँ घबड़ाहट है। अल्पसंख्याक लोग भयभीत हैं। एक तरह की वॉर ऑव नर्व्हज़—एक दूसरे के मनोधैर्य को तोड़ने की कोशिश—हो रही है। मैं सिन्ध होकर आई हूँ। वहाँ लोगों में आर्थिक घबड़ाहट है। वे लोग इसलिये भयभीत हैं कि उनकी जायदाद सुरक्षित नहीं। गुड़गांव में से लोगों को खाली करने की योजना बनानी पड़ी। इन सब बातों के लिये एक 'फैक्ट फाईंडिंग' कमिटी की जरूरत है, जो असली परिस्थिति की जाँच करे और सही सही जानकारी देश के सामने रखे। आज बाहरी सहायता की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी कि नैतिक आश्वासन की है। सरकार और शरणार्थियों के बीच में अेक अैसे मध्यस्थ-संगठन की ज़रूरत हैं जो सरकार के काम में तेज़ी और सहानुभूति लाये और शरणार्थियों में धीरज और आशा पैदा करे। तीसरी बात, अब शरणार्थियों के बीच जो काम होगा, वह स्वावलंबन की बुनियाद पर होना चाहिये। हम उनको हमेशा के लिये शरणार्थी और परावलंबी नहीं रख सकते। अगर वे हमेशा दूसरों की मदद के मुहताज रहेंगे, तो उनका नीतिबल और मनोबल समाप्त हो जायगा। उनके नैतिक बल को कायम रखने के लिये नवाखाली और बिहार की टेक्निक बरती जाय। ये तीन अलग अलग तरह के काम हैं। इन में सामंजस्य हो, लेकिन उनको एक दूसरे में मिलाया न जाय।

चार काम

अम्तुस्सलाम—हमारे सामने चार काम हैं। मुझे नवाखाली और भावलपुर में जो तजरबा हुआ, उसकी बिनापर ये बातें पेश कर रही हूँ।

(१) यहाँ से पाकिस्तान गये हुए मुसलमानों में से जो लौटने को तैयार हों, उनको लौटाने की कोशिश की जाय। उनको लौटने के लिये तैयार करने को यहाँ से डेप्युटेशन—शिष्ट मंडल—भेजे जायँ, जो लोगों की तरफ से उन्हें दिलासा दे। इसका बहुत अच्छा नैतिक असर होगा। हुकूमत की तरफ से दिलासा दिलाने से काम नहीं होगा।

(२) मन्दिरों और मस्जिदों का इन्तजाम ठीक ठीक हो। जहाँ मस्जिदों पर या मन्दिरों पर दूसरे मजहबवालों ने कब्जा कर लिया हो, वहाँ उन्हें लौटाने की तजवीज हो।

(३) लोग घबड़ाहट में औरतों को पीछे छोड़कर चले आते हैं। ऐसी औरतों के अलावा भगाई हुई औरतों का भी सवाल है। इनमें से कुछ औरतों का जबर्दस्ती धर्मान्तर करा लिया गया है। जो औरतें वापस आवेंगी उनको गोलीसे उड़ा दिया जायेगा, इस तरह का प्रचार आर. एस. एस. और आर्यसमाजी कर रहे है। जो भगाई हुई या धर्मान्तरित औरतें मिलें, उन्हें फिरसे उनके घर वापस भेजना चाहिये। और उनकी इज्जत होनी चाहिये। हिन्दु और मुसलमान दोनों इसके विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं। जबतक भगायी हुई औरतों का पता न चले तबतक हिन्दुओं को अपना घर छोड़कर उनकी खोज करनी चाहिये। इससे हमारी जो नैतिक विजय होगी उसकी बहुत बड़ी कीमत होगी।

सुचेता कृपलानी—उन औरतों को समाज में और घर में वापस लिया जाय, इसकी भी कोशिश होनी चाहिये।

अम्तुस्सलाम—(४) जहाँ जो अल्पसंख्याक हों उनको अपने अपने मज़हबपर कायम रहने की हिम्मत दिलानी चाहिये और यह कोशिश करनी चाहिये कि वे किसी लालच या डरकी वजह से अपना मज़हब न छोड़ें; वहाँ निडर होकर रहें।

राजनैतिक 'सेल्स'

मृदुलाबेन साराभाई—ये चार काम बहुत महत्त्व रखते हैं। पूर्व पंजाब में करीब दो लाख मुसलमानों को हिन्दू बनाकर रखा गया है। उनके मज़हब का रक्षण आप किस तरह करा सकते हैं? दो बड़ी भारी रुकावटें हैं। एक तो आर. एस. एस. और दूसरा अकाली दल। ये दोनों राजनैतिक दल हैं। वे पूर्व पंजाब को मुसलमानों से पूरी तरह सुरक्षित (सेफ) करना चाहते हैं। भरतपुर और अलवर में अिस तरह की कोशिश व्यवस्थितरूप से हो रही है। शरणार्थी अपने आप फसाद नहीं करते। उनके भीतर कुछ राजनैतिक 'सेल्स' घुस जाती हैं और तूफान मचाती हैं। उनके अलावा रिश्वतखोर और बेईमान अफसर कांग्रेस सरकार को असफल बनाने की कोशिश करते हैं। इनकी मदद से शरणार्थिओं का प्रश्न हल हो भी कैसे? आप लोगोंमें से कुछ प्रभावशाली लोग वहाँ जावें तब ये अडंगे दूर हो सकेंगे। इसमें ह्यूमन अप्रोच—सहृदयता—की ज़रूरत है।

मॉडेल बस्ती बसावें

सुन्दरलालजी—संक्षेप में मृदुलाबहन ने हमारे सामने तीन तरह का काम रखा:—(१) दोनों जगहों की माईनारिटियों—अल्पसंख्याकों—को दिलासा दिलाना। पूर्वी पंजाब और पश्चिमी युक्तप्रांत में पुलिस और मैजिस्ट्रेट जो बदमाशी कर रहे हैं उसका मुकाबला करना है। थोड़े से आदमियों को बिखर जाना है। बहुत खतरे का काम है। बहुत कम कद्रदानी का, बहुत नाजुक, मगर बहुत ज़बर्दस्त। दूसरा

पुनर्निवासन का काम। फैला हुआ, आपके लिये सबसे कम अहम, शुभ भले ही हो। लोग और सरकार कर भी रहे हैं। पहले काम के लिये ऐसे आदमियों की ज़रूरत है जिनके दिल के किसी कोने में भी साम्प्रदायिकता की बू न हो। तीसरा काम, एक इलाका बनाकर आदर्श बस्ती बसा सकते हैं। गांधीजी की कल्पना के मुताबिक आदर्श ग्राम बसाने का यह मौका अनायास हाथ लगा है। विनोबा भावे जैसों की देखरेख में एक मॉडेल बस्ती तैयार करें। मॉडेल आबादी उसमें बसायें। वहाँ मॉडेल स्वराज्य का नमूना कायम करें।

हैदराबाद का मामला

कोंडा वेंकटप्पय्या—शरणार्थियों के लिये अन्न और आश्रय, सफाई और रचनात्मक काम, ये प्रत्यक्ष सवाल हैं। हैदराबाद में हरिजनों को मुसलमान बनाया जा रहा है। हैदराबाद की सरकार मुसलमानों की संख्या बढ़ाने के लिये यह सब कर रही है। उसके लिए बेहिसाब पैसा खर्च कर रही है। कम्युनिस्ट लोग अलग अपना प्रचार कर रहे हैं। वे परिस्थिति को और भी उलझाते हैं। हैदराबाद में आज इत्तिहादे मुसलमीन की सरकार है। मुसलमान सिर से पैरतक हथियारों से लैस हैं। हिन्दू निहत्थे हैं। हैदराबाद का मामला दिन दिन भयानक होता जा रहा है।

राजेन्द्रबाबू—उस मामले पर विचार करना हमारे अधिकार-क्षेत्र में नहीं आता। उसका निपटारा सरकार करेगी। हम शरणार्थियों के मामले पर विचार करें।

प्रचार और कष्टनिवारण

देवप्रकाश नैयर—(१) ठीक प्रचार और कष्टनिवारण, ये दो चीज़ें अलग अलग न करें। शीघ्र सहायता का काम बहुत अहम है। उससे उनके दिलों पर पकड़ आ जाती है।

(२) कांग्रेस सत्ताकी राजनीति में मशगूल है और रचनात्मक कार्यकर्ता अपने अपने काम में महदूद हैं। इसलिये प्रचार और कष्ट-निवारण के लिए एक स्वतंत्र कमिटी बनायी जाय।

मेरा दुःख और लज्जा

विनोबा—इस मामले में मैंने अपने ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेवारी महसूस की है। इसलिये मैं कुछ कहना चाहता हूँ। मैं उस प्रान्त का हूँ जिसमें आर. एस. एस. का जन्म हुआ। जाति छोड़ कर बैठा हूँ। फिर भी भूल नहीं सकता कि उसकी जाति का हूँ जिसके द्वारा यह घटना हुई। कुमारप्पाजी और कृपलानीजी ने फ़ौजी बन्दोबस्त के खिलाफ परसों सख्त बातें कहीं। मैं चुप बैठा रहा। वे दुःख के साथ बोलते थे। मैं दुःख के साथ चुप था। न बोलनेवाले का दुःख जाहिर नहीं होता। मैं इसलिये नहीं बोला कि मुझे दुःख के साथ लज्जा भी थी। पौनार में मैं बरसों से रह रहा हूँ। वहाँ पर भी चार-पांच आदमियों को गिरफ्तार किया गया है। बापू की हत्या से किसी न किसी तरह का सम्बन्ध होने का उन पर शुबाह है। पौनार के लोगों से मेरा परिचय हो ऐसी अपेक्षा है। वहाँ भी

ऐसी बात हुई। इसकी मुझे शर्म है। वर्धा में गिरफ्तारियाँ हुई, नागपुर में हुई, जगह जगह हो रही हैं। यह संगठन इतने बड़े पैमाने पर बड़ी कुशलता के साथ फैलाया गया है। इसके मूल बहुत गहरे पहुँच चुके हैं। मृदुलाबेनने अभी बतलाया कि पंजाब में भी उसका उपद्रव काफी हुआ है।

फॅसिस्ट संगठन

यह संगठन ठीक फैसिस्ट ढंग का है। उसमें महाराष्ट्र की बुद्धिका प्रधानतया उपयोग हुआ है। चाहे वह पंजाब में काम करता हो या मद्रास में। सब प्रान्तों में उसके सालार और मुख्य संचालक अक्सर महाराष्ट्रीय, और अक्सर ब्राह्मण, रहे हैं। गुरुजी भी महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। इस संगठनवाले दूसरों को विश्वास में नहीं लेते। गांधीजी का नियम सत्य का था। मालूम होता है, इनका नियम असत्य का होना चाहिये। यह असत्य उनकी टेक्नीक–उनके तंत्र—और उनकी फिलासफी—तत्त्वप्रणाली—–का हिस्सा है।

फिलासफरों का संगठन

एक धार्मिक अखबार में मैंने उनके गुरुजी का एक लेख या भाषण पढ़ा। उसमें लिखा था कि हिन्दु धर्म का उत्तम "आदर्श अर्जुन है। उसे अपने गुरुजनों के लिये आदर और प्रेम था। उसने गुरुजनों को प्रणाम किया और उनकी हत्या की। इस प्रकार की हत्या जो कर सकता है वह स्थितप्रज्ञ है।" वे लोग गीता के मुझ से कम उपासक नहीं हैं। वे गीता उतनी ही श्रद्धा से रोज पढ़ते होंगे जितनी श्रद्धा मेरे मनमें है। मनुष्य यदि पूज्य गुरूजनों की हत्या कर सके तो वह स्थितप्रज्ञ होता है, यह उनका गीता का तात्पर्य है। बेचारी गीता का इस प्रकार उपयोग होता है। मतलब यह कि यह सिर्फ़ दंगाफसाद करनेवाले उपद्रवकारियों की जमात नहीं है। यह फिलासफरों की जमात है। उनका एक तत्त्वज्ञान है और उसके अनुसार निश्चय के साथ वे काम करते हैं। धर्मग्रंथों के अर्थ करने की भी उनकी अपनी एक ख़ास पद्धति है।

गांधीजी की हत्या के बाद

अब गांधीजी की हत्या के बाद प्रतिक्रिया हुई। महाराष्ट्र की कुछ अजीब हालत है। यहाँ सबकुछ आत्यंतिक रूप में होता है। गांधीहत्या के बाद गांधीवालों के नाम पर जनता की तरफ़ से जो प्रतिक्रिया हुई वह भी वैसी ही भयानक हुई, जैसी पंजाब में पाकिस्तान के निर्माण के वक्त हुई थी। उसके परिमाण में या मात्रा में अन्तर जरूर है। लेकिन नागपुर से लेकर कोल्हापुर तक भयानक प्रतिक्रिया हुई। सानेगुरुजी ने मुझे आवाहन दिया कि मैं महाराष्ट्र में घूमूँ। जो पवनार को भी न सम्हाल सका, वर्धा-नागपुर के लोगों पर असर न डाल सका, वह महाराष्ट्र में घूमकर क्या करता? मैं चुप बैठा रहा।

रा. स्व. संघ से हमारा हमेशा विरोध

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की और हमारी कार्यप्रणाली में हमेशा विरोध रहा है। जब हम जेल में जाते थे, उस वक्त उनकी नीति फ़ौज और पुलिस में दाखिल होने की थी। जहाँ हिन्दु-मुसलमानों का

झगड़ा खड़ा होने की संभावना होती, वहाँ वे पहुँच जाते। उस वक्त की सरकार इन सब बातों को अपने फायदे की समझती थी। इसलिये उसने भी उनको उत्तेजन दिया। नतीजा हमको भुगतना पड़ रहा है।

साधन-शुद्धि का मोर्चा

मैं मानता हूँ कि आजकी परिस्थिति में मुख्य ज़िम्मेवारी मेरी है, महाराष्ट्र के लोगों की है। यह संगठन महाराष्ट्र में पैदा हुआ है। महाराष्ट्र के लोग ही उसकी जड़ोंतक पहुँच सकते हैं। इसलिये आप मुझे सूचना करें, मैं अपना दिमाग साफ रखूँगा और अपने तरीके से काम करूँगा। मैं किसी कमिटी में 'कमिट' नहीं हूँगा। आर. एस. एस. से भिन्न, गहरे और दृढ़ विचार रखनेवाले सभी लोगों की मदद लूँगा। जो इस विचार पर खड़े हों कि हम सिर्फ़ शुद्ध साधनों से काम लेंगे, उन सब की मदद लूँगा। कांग्रेस पार्टी या सोशालिस्ट पार्टी की मदद का सवाल नहीं है। हमारा साधन-शुद्धि का मोरचा बने। उसमें सोशालिस्ट भी आ सकते हैं और दूसरे सभी आ सकते हैं। हमको ऐसे लोगों की ज़रूरत है जो अपने को इन्सान समझते हैं। ऐसे मनुष्य हम लोगों में भी कम हैं। सुन्दरलालजी का हृदय टटोलने का जुमला मुझे बहुत अच्छा लगा। मैं अपना हृदय भी टटोलूँ। संभव है कि मेरे दिलमें भी कहीं कोई बुरी चीज छिपी हो। इसी दृष्टि से मुझे देखना चाहिये। केवल ऊपरी या बाहरी खिदमत की दृष्टि से नहीं। कमिटी बनाने से बाहरी काम होगा। देखनेवालों को कुछ सन्तोष होगा। लेकिन वह असली चीज़ नहीं होगी। मेरे दिल को शांति नहीं मिलेगी। क्यों कि उससे कोई ठोस काम न होगा।

मृदुलाबेन ने कहा कि यह प्रश्न केवल सांप्रदायिक नहीं है। यह राजनैतिक प्रश्न भी है। है। जवाहरलालजीने भी कहा कि अकेली सरकार मामले को नहीं सुधार सकती। यह भी सही है। लेकिन अकेली सरकार अच्छी तरह बिगाड़ सकती है। बिगाड़ रही है, ऐसा मैं नहीं कहता। सरकार में मेरी श्रद्धा और विश्वास है।

परन्तु यह मानता हूँ कि अकेली सरकार काफी नहीं है। इसलिये कांग्रेस की तरफ से कमिटी बने। हमारी इस छोटीसी जमात की तरफ से नहीं। केवल नैतिक हैसियत, सिर्फ इखलाकी ताकत काफी नहीं है। नैतिक शक्ति के लिये किसी समिति या उपसमिति की भी ज़रूरत नहीं। उसके लिये एक व्यक्ति भी काफी होता है।

सक्रिय प्रतिकार

प्यारेलालजी ने कहा कि अिस मौके पर पैसिव रहना—अप्रतिकार की नीति अख़्तियार करना—ठीक नहीं। उन्होंने अिस परिस्थिति के प्रतिकार के लिये उपवास का मार्ग सुझाया। मेरी स्थिति बड़ी दयनीय है। उपवास में मेरा विश्वास है। इसीलिये मैं उसकी मर्यादा और प्रसंग जानता हूँ। शायद आपलोग नहीं जानते कि १९४२ के आन्दोलन के पहले बापू ने कुछ लोगों को बुलाया। बापू का

अपना एक तरीका था। उनकी राय पक्की होने पर भी वे अपने से छोटों से पूछ कर उसे और पक्का किया करते थे। उन्होंने हम लोगों से पूछा, "जैसे ज्ञानी फ़ाका कर सकता है, उसी तरह उसकी आज्ञा से उसमें श्रद्धा रखनेवाला अज्ञानी भी कर सकता है या नहीं?" वे खुद जेल में जाते ही अनशन —आखिरतक फाका—करनेवाले थे। उनके बलिदान का ही सवाल था। सवाल बड़ा भयंकर था। एक तरह से वह उनकी मृत्युको अनुमति देने के समान था। बड़ी भयानक बात थी। सब लोगों ने खिलाफ राय दी। मुझे एक क्षण भी रुकना नहीं पड़ा। विचार बदमाश होता है। वह रुकता नहीं है। मैंने कहा, 'यह ठीक है।' मित्रों ने मुझे बहुत-से खत लिखे। कहा कि बड़ी भयंकर बात हुई। बात स्वाभाविक थी। अगर बापू खुद उपवास करने की बात न छेड़ते, तो सभी लोग उनका सिद्धान्त तुरन्त मान लेते। क्योंकि तब तो दूसरों के ही उपवास करने की बात रहती। लेकिन शुभ कार्य का आरंभ वे स्वयं किया करते थे। फिर भी मैंने उनकी बात का समर्थन किया। जब तक मेरे पाँव बाहर थे तबतक मैं कुछ नहीं कर सकता था। लेकिन जब नौ अगस्त को गिरफ्तार हुआ, तो मेरे लिये रास्ता खुल गया। मैंने जेल में कदम रखते ही फ़ाका शुरू कर दिया। रातको प्यारेलाल और किशोरलाल भाईने डी. सी. (डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट) के द्वारा सन्देशा भेजा कि विनोबा से कहो कि उपवास शुरू न करें। मुझे वह विचार छोड़ देना पड़ा। चार महीने के बाद जब बापू का उपवास शुरू हुआ, तब मैंने किया।

उस वक्त उपवास का प्रश्न मेरे लिये उतना कठिन नहीं था, जितना आज है। आज मेरे सामने तत्त्वज्ञानी खड़े हैं। उनका सामना करना है। मैं प्रति क्षण इसका विचार कर रहा हूँ। खद्दर को भी एक कोने में रखकर अिस विषयपर सोच रहा हूँ। लेकिन 'कमिट' (वचनबद्ध) होने की शक्ति मुझमें नहीं है। आपलोगों के बीच अपनेपनका अनुभव होता है। इसलिये मैंने अपने मनका हाल आपके सामने रखा। इस तरह से और कभी किसी के सामने नहीं रखा था।

प्यारेलाल—विनोबा की बात मेरी समझ में आ गयी। इस वक्त उपवास के लिये उपयुक्त परिस्थिति नहीं है। कमिटी के बारे में मेरी राय है कि कमिटी के द्वारा हम बहुत काम नहीं कर सकेंगे। हम सरकार और शरणार्थियों के बीच में मध्यस्थ का काम ही कर सकते हैं। सवाल दर असल सरकार ही हल कर सकती है। हम सेवा के बहाने शरणार्थियों में प्रवेश पाकर उनकी मनःस्थिति सुधारने का और कुछ हदतक कष्ट-निवारण काम कर सकेंगे। यह हमारी मर्यादा है।

प्रफुल्लचंद्र घोष—सरकार की तरफ से काम हो रहा है। कांग्रेस की सहायक समिति है, अब एक तीसरी कमेटी बनाने से क्या फायदा?

इसे रचनात्मक कामों में जोड़ दें

स्वामी सत्यानंद—बापू के अठारह रचनात्मक काम थे। हमने उनमें चार और जोड़ दिये। तो फिर इतने बड़े काम को रचनात्मक काम में शामिल क्यों न कर ले? यहाँ ऐसे ऐसे तगड़े आदमी

हैं, जिन्होंने शून्यपर इमारत खड़ी की है। गांधीजी के बाद संगठन में शक्ति है। अब सौ-दो-सौ सालतक गांधीजी का सिखापन काफी है। उनके जैसा अब कोअी पैदा नहीं होगा। क्यों कि जरूरत ही नहीं है। हमने जिस तरह खादीकार्य के लिये विभाग खोले, विद्यालय चलाये, उसी तरह इस काम के लिये एक अलग विभाग होना चाहिये। कांग्रेस में यह ताकत नहीं है। इसकी जड़ बहुत नीचे, बहुत गहरी है। इस समस्या से हमको मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमको यही सिखाती है। हमारा दिमाग और हमारा दिल बदलनेवाला विभाग खोला जाय। उसमें ऐसे आदमी न हों जिनके दिल में रंचमात्र भी सांप्रदायिक भावना हो। कुष्ठरोगसे भी यह हजार गुना दुष्ट रोग है। अच्छे अच्छे कांग्रेसवालों के दिल में गुरुजी ने घर किया है। इसलिये राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का इतना प्रचार हुआ। इस बीमारी के प्रतिकार के लिये हम विद्यालय खोलें या मौजूदा विद्यालयों में उसका पाठ्यक्रम रखें। बाईस कामों में यह तेईसवाँ काम जोड़ दें।

कमिटी की ज़रूरत

गुलझारीलाल नंदा—कमिटी नहीं बनेगी तो काम नहीं होगा। गांधीजीने जो काम गिनाये वे एक एक कर के बढ़ते गये थे। जो काम सामने आ जाता, उसे ले लेते थे। शरणार्थियों का काम व्यापक है। वह राजनैतिक काम है। सारी अठारह-बीस प्रवृत्तियों का उपयोग इस काम में हो सकता है। नहीं तो वे प्रवृत्तियाँ खतम होंगी। इस काम को यदि हम संगठितरूप से नहीं करेंगे, तो वह नहीं होगा। स्वराज्य के बाद शरणार्थियों का प्रश्न सब से बड़ा प्रश्न है। सर्वोदयसमाज अपनी पूरी ताकत इसीमें लगाये। हमें सरकार के मुकाबले में नहीं खड़ा होना है। दूसरे लोग जो काम कर रहे हैं वह भी हम न करें। जो काम और कोई नहीं कर रहा हो, उस तरह का काम हमें करना चाहिये।

बाबा राघवदास—युक्त प्रान्त की जेलों में आज भी आर. एस. एस. की तैयारियाँ हो रही हैं। जेल को उन्होंने प्रचार की छावनी बना लिया है। आर. एस. एस. के तमाम कामों के पीछे एक तत्त्व-ज्ञान है। सर्वोदयसमाज उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। हम पर इसकी जवाहरलालजी से भी ज्यादा जिम्मेवारी आती है। क्योंकि आप सेवाग्राम बैठे हैं। बापू ने सबकी जिम्मेवारी का ठेका लिया था। यह काम आपको संगठितरूप से करना होगा। दूसरों के लिये ये सब राजनैतिक चालें हैं। लेकिन बापू के हर एक काम के पीछे सेवाभाव होता था। उनके चरखे के पीछे आश्वासन, मानवता, आजादी, की भावना थीं। दलितों, दुखियों की, चाहे वे शरणार्थी हों या निराश्रित हों, सब की, सहायता करनी चाहिये। नहीं तो बापू का मिशन अधूरा रह जाता है।

शंकरराव देव—विषय आर. एस. एस. है या शरणार्थी है ?

राजेन्द्रबाबू—दोनों मिले हुए हैं।

विष के लिये मंत्रप्रयोग

कमलनयन बजाज—यह सवाल हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य से पैदा हुआ है। जिस तरह पिताजी का (स्व० श्री जमनालालजी का) आखिरी काम गोसेवा था, उसी तरह बापू का आखिरी काम शरणार्थियों की सेवा का था। उसीमें उनका बलिदान हुआ। इस दृष्टि से शरणार्थियों का काम पहले स्थान का हकदार है। हमारा चरित्रबल कम हो गया है। उसको बढ़ानेवाला यह काम है। मंत्र में अद्‌भुत शक्ति होती है। बापू ने 'क्विट इंडिया' का मंत्र दिया। वह अपना काम कर गया। 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम' दूसरा मंत्र दिया। बचपन में मुझे जब भूत का डर लगता था, तो माँ ने हनुमानजी का नाम लेने को कहा था। हनुमानजी का नाम लेते ही भूत का डर भाग जाता था। यह मेरा अनुभव है। 'ईश्वर अल्ला' मंत्र का प्रचार संप्रदायवाद के भूत को भगा देगा। उसमें यह ताकत है। आगे चलकर मन्दिर-मस्जिद एक होंगे। हिन्दुस्तान के मुसलमान हिन्दू समाज में, हिन्दू धर्म में, अपनी विशेषता रखकर, खप जायेंगे। चीन के बौद्धधर्मीय में और यहाँ के बौद्धधर्मीय में हम जो अन्तर देखते हैं, वह इस बात को स्पष्ट कर देता है। 'ईश्वर अल्ला' मंत्र में जो शक्ति है, उसका प्रयोग हम करें। यह बापू का आखिरी मंत्र है। विनोबाजी जैसों का चिन्तन अगर अधूरा कहा जाय, तो हमारे जैसे मनुष्यों के सामने तो अंधेरा ही रहेगा। इसलिये विनोबा को इस काम में हमारा मार्गदर्शन करना चाहिये।

किसी प्रान्तको दोष न दें

आर्यनायकमजी—मैं बंगाल में रहा, और अब महाराष्ट्र में हूँ। दोनों जगह की अच्छी से अच्छी बुद्धिशक्ति गलत रास्ते से गयी है। बंगाल की बुद्धिमत्ता आतंकवाद में खप गयी और महाराष्ट्र की उत्कृष्ट बुद्धिशक्ति आर. एस. एस. में चली गयी। मेरा वर्धा का अनुभव यह है कि सारे शिक्षण का वातावरण विषाक्त हो गया है। ब्रिटिश सरकार ने उसे बढ़ने दिया। ग्रेज्युएट्स, प्रोफेसर्स संघ में हैं। सेवाग्राम में दो मुसलमान कुटुंब हैं। पंद्रह अगस्त के बाद हैदराबाद जानेकी हवा फैली। मुसलमान डर गये। लेकिन हमारे यहाँ पढ़नेवाले मुसलमान लड़के को कोई डर नहीं लगा। एक पीढ़ी बिगड़ गयी। अब शिक्षण हमारे हाथ में है। लेकिन अभी शिक्षण-केन्द्रों में हमारा प्रभाव नहीं है। हमारे बुनियादी शिक्षण-केन्द्र में भी जो लड़के हैं, वे महाराष्ट्रीय ही हैं। सात साल की बुनियादी तालीम के बाद सोलह लड़कों की जो टुकड़ी तैयार होगी, वह आर. एस. एस. से जमकर मुकाबला करेगी। उन लड़कों में ब्राह्मण से लेकर महार तक, सभी जातियों के महाराष्ट्रीय लड़के हैं। किसी प्रान्त को दोष देना गलत है। इससे प्रान्तीयता पैदा होती है। यह महाराष्ट्र प्रान्त का दोष नहीं है। यह तो गलत शिक्षण का दोष है। सात साल पूरा करनेवाले विद्यार्थियों को बापू स्वयं सनद देनेवाले थे। उस सनद का नमूना भी उन्होंने बनाया था। मुख्य बात शिक्षण का वातावरण बदलने की है।

टुकड़ों में प्रस्ताव करें

ज़ाकिर साहब—मैं समझता हूँ, अब बहस काफ़ी हो चुकी है। हम अपने प्रस्ताव को टुकड़ों में बाँट दें।

(१) जैसा कि विनोबाजी ने कहा, हम अपने सब मेम्बरों से कहें कि सब कामों में अच्छे तरीके बरतें। अच्छे कामों में बुरे तरीके बरतने से भी बुरा फल निकलता है। मक़सद अच्छा हो और जरिये भी अच्छे हों। सबको हिदायत दें कि इस बात पर ध्यान रहे।

(२) शरणार्थियों को फिरसे बसाने के सवाल की तरफ तालीमी संघ, चरखा संघ, की तवज्जह दिलायें। दूसरे तामीरी संघ भी मुख्तलिफ कामों में मदद पहुँचायें।

(३) कमिटी से कहें कि ये अच्छे ज़रिये कौनसे हो सकते हैं, इसका फैसला करें।

(४) हमारी कमिटी सरकार के साथ मिलकर काम करे।

मृदुलाबेन साराभाई—सरहदपर नये सवाल पैदा हो रहे हैं। सिक्ख और हिन्दुओं का वैमनस्य बढ़ रहा है। जैसी हवा पंजाब में है वैसी अगर मुल्क में फैलेगी, तो सारे मुल्क को खा जायगी। इस मामले को हम भूल नहीं सकते। 'फैक्ट फाइंडिंग' करें, कुछ तो करें।

सुन्दरलालजी—ज़ाकिर साहबने जो मसौदा सुझाया, वह अपने में ठीक है। लेकिन हमारा असली सवाल कम्यूनल वायरस—सांप्रदायिकता के जहर से लड़ने का है। आप साफ शब्दों में कहें कि हम इस सांप्रदायिक जहर से लड़ेंगे। यह हिन्दू, यह मुसलमान, यह बात आपके दिमाग़ में न रहे।

किशोरलाल भाई—ज़ाकिर साहब ने जो कहा है वह ठीक मालूम होता है। हम अपना प्रस्ताव टुकड़ों में करें।

[श्रीमन्जी का मसौदा, सत्यनारायणजी का मसौदा और लक्ष्मीबाबू का मसौदा पढ़ा गया।]

कमिटी न बनावें

शंकरराव देव—हम कोई कमिटी कायम न करें। सरकार काम कर रही है। काँग्रेस की अपनी समिति है ही। हम एक तीसरी समिति बनाते हैं, तो पैरेलल औरगैनाइजेशन—प्रतिस्पर्द्धी संस्था—बन जाती है। यह गलत क़दम होगा। हम व्यक्तिगतरूपसे कम करें। नैतिक दृष्टि से इस प्रश्न को हल करने में मदद पहुँचायें। हम सरकार और कांग्रेस की मदद किस तरह कर सकते हैं, इस के बारे में सूचना करने के लिये कमिटी बनायें। शरणार्थियों में काम करने के लिये कमिटी बनाने से बड़ा गलत क़दम दूसरा न होगा।

दिवाकरजी—यह सम्मेलन सिर्फ़ अपने कामकाज के लिये समिति नियुक्त कर सकता है। इससे अधिक इसका अधिकार नहीं है। बाहर के किसी काम के लिये समिति नियुक्त करना इस सम्मेलन के लिये उचित नहीं है। क्यों कि यह सम्मेलन अपनी तरफ से कोई बोझ नहीं उठाता है।

हमारा खास हिस्सा

मंज़रअली सोख्ता—इसमें कुछ गलतफहमी हो रही है। सरकार और कांग्रेस की कमिटियाँ शरणार्थियों को फिरसे बसाने का काम जरूर करती हैं, लेकिन अब वे वहाँ से एक ऐसे मुकामपर पहुँची हैं

कि जहाँ अब वे काम नहीं कर सकतीं। अब बात एक ऐसे प्लेन—सतह—पर पहुँची है कि वहाँ हम कांग्रेस या सरकार के पीछे नहीं चल सकते। उसमें खूबसूरती नहीं है। अब ऐसी एक सूरत पैदा हुई है जहाँ सरकार और कांग्रेस आपकी मदद करें। दोनों को हमारे पीछे चलना पड़ेगा। हम गांधीवाले हैं। हमें अपनी खुसूसियत पर अमल करने का मौका मिला है। इसी वक्त हम अपना कान्ट्रिब्यूशन—देन—दुनिया को दे सकते हैं। ईश्वर की कृपा से आज हम को यह रोशनी मिली है। यह काम ऐसा है जिसमें महात्मा गांधी ने अपनी जान-देना भी मुनासिब समझा। हम सिर्फ सरकार और कांग्रेस के मददगार नहीं हो सकते। हमारी भूमिका दोयम नहीं होगी। हम अपने ढंग से काम करें। अगर ज़रूरत हो तो उसी में मरमिटें। अगर यह सवाल हम नहीं लेते तो हमारी हस्ती मिट जायेगी।

देवप्रकाश नैयर—कमिटी तो बनानी ही चाहिये। काम दोहराया नहीं जायेगा। जितने साधन मौजूद हैं उन सबको इकट्ठा करके हम सरकार और कांग्रेस के पास पहुँचा सकते हैं। यह काम कोई छोटा नहीं है।

प्रत्यक्ष कार्य की ज़रूरत

राजेन्द्रबाबू—आज जो सहायक समितियाँ काम कर रही हैं उनकी खास दिक्कतें हैं। उन्हें अच्छे आदमी नहीं मिलते। तालीम का काम है, चरखा और दूसरे रोजगार सिखाने का काम है। इसके लिये आदमी चाहिये। चरखा संघ, तालीमी संघ, ग्राम उद्योग संघ, यहाँ से कुछ आदमी दे सकें तो कुछ काम हो। दूसरी बात लोगों की मनोवृत्ति को बदलना है। यह प्रचार का काम है। लेकिन महज व्याख्यानों से नहीं होगा। वहाँ जाकर, उन लोगों में रहकर, उनके दिलोंपर असर करना होगा। सरकारी अफ़सर इस तरह की मदद चाहते हैं। हमारी गवर्नमेन्ट से बात हुई है। सरकारी नौकरों का काम करने का तरीका अलग और हमारा अलग है, यह सरकार समझती है। यहाँसे कुछ चुने हुए आदमी जा सकें तो कुछ काम होगा। कमिटियाँ तो काफ़ी मौजूद हैं। जरूरत होगी तो और भी कायम कर लेंगे। असली ज़रूरत आदमियों की है। बिहार का यही अनुभव है। बिहार पर जब भूकंप की विपत्ति आयी तब सब तरफ़ से लोग वहाँ पहुँचे। सिर्फ़ पैसे ही नहीं, आदमी आये। उनकी बुद्धि, कार्यकुशलता और तजरबा हमारे काम आया। आज जो दूसरे दूसरे कामों में लगे हैं, ऐसे कुछ आदमियों को शरणार्थियों में भेजना है। इस तरह से काम की योजना करने का कुछ सोचें। जो व्यक्ति जाना चाहें, केन्द्रीय सहायक समिति के साथ उनका सम्बन्ध जोड़ दें।

बाबा राघवदास—कुरुक्षेत्र में सरकारी अफसरों का बरताव बहुत बुरा है। यहाँ सेवाग्राम में शरणार्थियों की सेवा का शिक्षण देनेवाला एक वर्ग खोला जाय। चरखे का और दूसरे रोजगारों का शिक्षण लेने के बाद कार्यकर्ता शरणार्थियों के बीच भेजे जायँ। इस तरह से सौ सवा सौ चरखा-मास्टर दो महीने में हम भेज सकें तो शरणार्थियों का नैतिक वातावरण कुछ सुधरेगा।

राजेन्द्रबाबू—इस काम के लिये भी जब हमें काबिल आदमी मिलें तभी काम होगा। योग्य आदमियों की जरूरत सब से पहले है।

सर्वोदयसमाज की कमजोरी

शंकरराव देव—मेरी समझ में सर्वोदयसमाज की मर्यादा का उलंघन करना ठीक न होगा। हम अपने मक़सद और कार्यक्रम अमल में लाने के लिये समिति भले ही बनायें, सीधे समाज की तरफ से कोओी काम न हो। और फिर यह भी है कि हमें कोई नई जमात नहीं खड़ी करनी है। इस काम का बजट करीब बीस लाख का होगा। कार्यकर्ताओं की ज़रूरत होगी। इसके लिये तो हमें एक स्वतंत्र महकमा बनाना होगा। आप इस तरह का कोओी काम यहाँ न करें। आप अपनी रचनात्मक संस्थाओं और सदस्यों को हिदायतें दें; अपनी तरफ से कोओी कमिटी न बनायें।

सुचेता कृपलानी—हमें कष्टनिवारण के काम के लिये स्थानीय स्वयंसेवक मिल जाते हैं। वह ठीक काम भी कर लेते हैं। लेकिन संगठन और संयोजन करनेवाले कार्यकर्ता नहीं मिलते। असली जरूरत ऐसे कार्यकर्ताओं की है। कष्टनिवारण के काम के साथ साथ हमें शांतिप्रचार काम भी करना है। शांतिप्रचार का काम मामूली स्वयंसेवक नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त, आर. एस्. एस्. की समस्या का मुकाबला करना है। विनोबाजी जैसे कोई महान् व्यक्ति मिलें, तो इस काम में जान आ सकती हैं। इसके लिये अलग संगठन की जरूरत है। यह काम हमीं कर सकते हैं। सरकार या कांग्रेस नहीं।

अम्तुस्सलम—इसमें गलतफ़हमी है। सर्वोदयसमाज का काम इखलाकी है। शरणार्थी अपने अपने मज़हब में और अपनी अपनी जगह में डँटे रहे इस के लिये उनमें जान पैदा करना, यह सर्वोदयसमाज का काम हो सकता है। कमिटी भी बने तो इस काम के लिये बने।

लक्ष्मीबाबू—समिति बनाने पर जो अैतराज उठाये जा रहे हैं, वे सही हैं। हमारे पास सिर्फ़ खास तरह का टेक्निकल ज्ञान है। उसे हम बिना किसी शर्त्त के सरकार और कांग्रेस को देने के लिये तैयार रहें।

गांधी-स्मारक निधि

राजेन्द्रबाबू—हमारी चर्चा की रोशनी में प्रस्तावका मसौदा बाद में तैयार कर लिया जाय। अब हम गांधीस्मारक कोष का विचार करें। इसमें बहुत काम नहीं हुआ है। अभी तक सूबों में सिर्फ़ कमिटियाँ मुक़र्रर हुई हैं। सब से निवेदन है कि अपनी अपनी जगह उत्साह के साथ काम करें।

एक करोड़ चरखों की योजना

बाबा राघवदास—नारायणदास भाओी का प्रस्ताव है कि सारे देश में एक करोड़ चरखे चलें। उस के लिये उन्हें कार्यकर्ता चाहिये।

राजेन्द्रबाबू—इसे सम्मिलित समिति पर छोड़ दें।

प्रौढ़शिक्षण

बाबा राघवदास—नारायणदास भाओी का प्रौढ़-शिक्षण के बारे में भी एक प्रस्ताव है। मेरे मित्र श्री शालिग्राम 'पथिक' ने प्रौढ़-शिक्षा का काफी काम किया है। एक अंग्रेज सज्जन उनकी मदद करते हैं। करीब सौ पुस्तकें सरल भाषा में लिखी हैं। प्रौढ़शिक्षा का सवाल महत्त्व रखता है। जनतंत्र के लिये साक्षरता की अनिवार्य शर्त होनी चाहिये। बालिग मताधिकार के लिये इसकी ज़रूरत है। इस देश के किसानों की यह प्रतिज्ञा हो कि हम पढ़ेंगे, तभी बालिग मताधिकार सफल होगा।

ज़ाकिर साहब—यह काम नई तालीम के दायरे में आता है। हमको नई तालीम की झीलमें से आम जनता की तालीम के महासमिंदर में जाना है। इसलिये यह काम तालीमी संघ के सिपुर्द किया जाय।

नवयुवकों का संगठन

रामकृष्ण बजाज—यहाँ नवयुवकों के संगठन का कोई विचार नहीं हो रहा है। यह अच्छे से अच्छा काम है। और इसके लिये अच्छे से अच्छा आदमी मिलना चाहिये। कृपलानीजी जैसे व्यक्ति को यह काम सौंपा जाये।

किशोरलाल भाई—विनोबा का और मेरा खयाल है कि विद्यार्थियों का संगठन भी रचनात्मक काम का एक हिस्सा है। इसलिये यह काम मिलापी संघ को सौंपा जाय।

[चर्चा समाप्त]

तालीमी संघ का दीक्षान्त समारोह

ता. १५-३-'४८, दोहपर, चार बजे

खुले अधिवेशन से पहले उसी मंडप में तालीमी संघके विद्यार्थियों को सनद देने का समारोह दोपहर ढाईबजे हुआ। सब से पहले **ज़ाकिर साहबने** कहा, "यह सनद देने का समारोह बापू के हाथों से होनेवाला था। लेकिन अब राजेन्द्रबाबू के मुबारक हाथों से हो रहा है। यह एक अनोखे क़िस्म की सनद है। जिसे बापूने बनाया। सनद बापू की बनायी हुई और देनेवाले मुबारक हाथ राजेन्द्रबाबू के। इसलिये हम तो अैसा ही समझते हैं कि जैसे इन सोलह बच्चोंने बापू के ही हाथों से सनद पाई। सनद आशादीदी पढ़कर सुनायेंगी।"

(आशादेवीने सनद पढ़कर सुनायी। सनदें बाँटने के बाद विद्यार्थियों से राजेन्द्रबाबूने कहा,)

राजेन्द्रबाबू"गांधीजीने जो नयी शिक्षापद्धति चलायी इसके पहले फल आप हैं। आप ही को देखकर हम

जाँचनेवाले हैं कि इस तालीम का कैसा फल निकल सकता है। आपसे देश बहुत-कुछ आशा रखता है। अबतक लोगोंको शंका है कि इस शिक्षाका नतीजा किस तरहका निकलेगा। ईश्वर की दया से आपको हमारी उम्मीदें पूरी करने की ताकत मिले। आपने कई तरह की तालीम पाई है। कपड़ा बुनना वगैरह आपको सिखाया गया है। आपको मिली हुई शिक्षा की हर चीज हर जगह जाँचने का मौका हर आदमी को आगे चलकर नहीं मिलेगा। लेकिन एक चीज़ ऐसी है, जिसकी जाँच जिन्दगी के हर क्षेत्रमें होगी। वह है आपका चरित्र। ईश्वर आपको बल दे कि आपका चरित्र देखकर इस नयी पद्धति में लोगों का विश्वास बढ़े। आप बगैर प्रचार किये इस पद्धति के जीते-जागते इश्तेहार बनें।"

(आचार्य बदरीनाथ वर्मा ने बुनियादी तालीम का अगला सम्मेलन अठारह अप्रैल से इक्कीस अप्रैल तक बिहार की तरफ से निमंत्रित किया।)

खुला अधिवेशन

[चार बजे से सर्वोदय सम्मेलन का खुला अधिवेशन शुरू हुआ]

तीसरा प्रस्ताव

काका कालेलकर—मैं तीसरा प्रस्ताव आपको पढ़कर सुनाता हूँ। [परिशिष्ट देखिये]। मिलापी या सम्मिलित संघ की योजना के बारे में यह प्रस्ताव है। बात आप लोगों के सामने कई महीनों से है। रचनात्मक कार्य करनेवाले लोगों ने बहुत पहले से यह महसूस किया है कि उनके कार्य एकांगी होते हैं। सब संस्थायें एक-दूसरे के काम में अगर हिस्सा न ले सकें, तो कम-से-कम उन कामों के लिये आस्था और अभिरुचि उनके दिल में हो, ऐसा संकल्प सब के मन में उठता रहा है। एक-दूसरे के पास आने का यह संकल्प अब दृढ़ होने लगा है और उसका तरीका भी सूझने लगा है। महात्माजी की मौजूदगी में ही देहली में यह विचार स्थिर हुआ था। हम यह कदम उनकी मृत्यु के कारण नहीं उठा रहे हैं।

स्वावलंबन और स्वयंपूर्णता

महात्माजी हमेशा कहा करते थे कि मेरे सारे काम एक ग्रहमाला की तरह एक-दूसरे के साथ बँधे हुए हैं। उन्होंने चरखे को इस ग्रहमाला का सूर्य कहा था। अन्न-वस्त्र, आश्रय और औजार, ये चार चीज़ें मनुष्य के जीवन के लिये जरूरी हैं। हमारा देश इन चारों बातों में स्वावलंबी और स्वयंपूर्ण था। जमीन तो दुनिया भर में सभी जगह है। लगभग सभी देशों में खेती भी थोड़ी-बहुत हुआ करती थी। लेकिन वस्त्र की कला दुनिया को हमारी ख़ास देन है। एक दफा दुनिया ने यह कला हम से सीखी है। उसकी बदौलत किसी जमाने में हमने दुनिया को लूटा है। हमारे पाप का नतीजा यह हुआ कि उलटी गंगा बहने लगी। हम मैंचेस्टर के कपड़े के मोहताज हुए।

रचनात्मक संस्थाओं का विकास

हमारा देश कृषिप्रधान है। यहाँ हमेशा अन्न की विपुलता रही है। वस्त्रकी भी कमी कभी नहीं रही। आज दोनों का दुर्भिक्ष है। बापूने चरखे को सूर्य कहा, क्योंकि इस देश की संस्कृति जनपद संस्कृति है, पौर संस्कृति नहीं। इस जनपद संस्कृति के संवर्धन के लिये बापूजी ने अनेक कार्यक्रम रखे। उनका हरएक नया कार्यक्रम पहले के कार्यक्रममें से पैदा होता गया। सबका समन्वय करनेवाला शिरोमणि कार्यक्रम बुनियादी तालीम का है। इसलिये सब कामों को एक करने की ज़िम्मेवारी दो संघोंपर आ जाती है। चरखा संघ से आरंभ हुआ इसलिये वह एक सिरा है। चरखा ग्रामोद्योगों का प्रतिनिधि है। तालिमी संघ दूसरा सिरा है, जो जनपद संस्कृति का प्रतिनिधि है। औद्योगिक और सांस्कृतिक दृष्टियों का एकीकरण न हुआ तो, जीवन एकांगी बन जाता है। इसलिये जनपद के उद्योग और जनपद की संस्कृति का समन्वय करना एकीकरण की इस योजना का उद्देश्य है।

पिंडीकरण या समन्वय ?

हमारे सामने दो तरह के सुझाव हैं। एक, सबके पिंडीकरण का है। इसके अनुसार अलग अलग संघों का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त करके उन्हें एक नयी संस्था में विलीन कर देना है। यानी सब प्रवृत्तियों का एक ही स्थूल साधन या शरीर होगा।

दूसरी सूचना अलग अलग संस्थाओं के समन्वय की है। इसमें हर संस्था का स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व बनाये रखना है।

आप किसी भी पद्धति का एकीकरण मंजूर फरमाइये। दोनों में सिर्फ पद्धति का भेद है। बात एक ही है। हमारे रचनात्मक कार्यक्रम देखने में अनेक प्रतीत होते हैं; लेकिन वास्तव में एकही हैं: या एक ही रत्न के भिन्न भिन्न पहलू हैं। ये सारी प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं। सबको मिलाने से एक समग्र वस्तु बनती है।

कौन से संघों से शुरू करें ?

अब सवाल होता है कि कितने संघों से आरंभ किया जाय ? यह जरा नाजुक सवाल है। एक या दो संघों के नाम आप लेंगे तो बाकी के कहेंगे कि क्या इनके अलावा और संघ नहीं हैं ? हरिजनसेवक संघ, आदिवासीसेवा मंडल, आदि का काम भी रचनात्मक काम है। इसके बाद हिन्दुस्तानी प्रचार सभा है। मेरे सब कामों में सबसे श्रेष्ठ यह काम है, ऐसा उसके बारे में बापूने कहा था। क्योंकि इस में सांप्रदायिक एकता की कुंजी है। आत्माको सुदृढ़ करनेवाली यह चीज है। मैंने कहा, 'दो लिपियों का बोझ होगा।' बड़े नाराज हुए। कहने लगे, "बात लोगों के गले नहीं उतरती तबतक क्षमा करूँगा। मेरे मत से दोनों लिपियाँ साथ चलनी चाहिये। लेकिन फिलहाल एकसाथ न सिखाओ तो न सही। मगर परीक्षा तो दोनों लिपियों में एक साथ हो। अमृतलाल नाणावटी की लगन देखो। उससे सबक सीखो।"

हिन्दुस्तानी संस्कृति

इस तरह बापू का दो लिपियों का आग्रह रहा। एक लिपिपर दो लिपियों में से जाना पड़ेगा। कोई पूछते हैं कि 'जब एक लिपि जानेही वाली है तो उसे शुरू से ही क्यों न छोड़ दिया जाय?' यह तर्क गलत है। दूध के दाँत अपने आप उम्र बढ़ने पर गिरते हैं। समय से पहले उन्हें कोओी निकालता नहीं। अक्ल के दाँत भी जब आते हैं तभी आते हैं। दूध के दाँतों का भी अपना स्थान है। हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तान की संस्कृति का बढ़ाचढ़ा संस्करण है। हमें हिन्दु संस्कृतिमें से हिन्दुस्तानी संस्कृति की तरफ कदम बढ़ाना है। इसलिये बापूने कहा था कि मेरे साथ कोओी न रहा, मैं अकेला रह गया, तो भी हिन्दुस्तानी चलाता रहूँगा।

तीन मंजिलें

चरखा संघ, बुनियादी तालीम और हिन्दुस्तानी, ये हमारी तीन मंजिलें हैं। इनके जरिये जो संस्कृति बनेगी वह बेढब न बने इसलिये सामंजस्य की जरूरत है, सब कामों में मेल पैदा करने की जरूरत है। हिन्दुस्तानी में सांस्कृतिक सामंजस्य की कल्पना है। इसलिये दो लिपियों का आग्रह रखा गया। विनोबा ने इस में एक संशोधन सुझाया है। वे कहते हैं कि दो लिपियों के अलावा दक्षिण भारत की भी एक लिपि आवश्यक कर देनी चाहिये, दक्षिण और उत्तर का भी मिलाप होना चाहिये, तब सांस्कृतिक समन्वय पूरा होगा। अगर एक लिपि का आग्रह एकांगी है तो दो लिपियों का भी अधूरा है। हमारी हिन्दुस्तानी संस्कृति की तिपाओी तीन पैरों की होगी। उनकी बात बिलकुल तर्कसंगत है। लेकिन जहाँ दो लिपियों की बात समझाने में इतनी दिक्कत होती है, वहाँ तीसरी लिपि का जिक्र करने की हिम्मत नहीं होती।

यह मिलापी संघ भी एक लचीला संगठन हो। केवल कुछ संघोंतक ही सीमित न रहे। रचनात्मक काम करनेवाली सभी संस्थाओं को उसके अन्दर आने की गुंजाइश हो। उसका विधान लचीला रहे। महात्माजी ने श्री जे. सी. कुमारप्पाजी को इसका आचार्य—डाक्टर— बनाया है। वे इस सबके विशेषज्ञ हैं। इसलिये इस प्रस्ताव से उनको यह काम सौंपा जा रहा है।

एकाग्रता और एकांगिता

जाजूजी—काकासाहब ने जो प्रस्ताव पेश किया उसका मैं समर्थन करता हूँ। काकासाहब हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के प्राण हैं। वे उसके साथ कितने तन्मय हो गये हैं यह उनके भाषण पर से स्पष्ट है। मेरे बाद श्री कुमारप्पाजी का भाषण होगा। वे ग्रामोद्योग संघ के प्राण हैं। मेरा सम्बन्ध चर्खासंघ से है। संयोगवश हो, या जानबूझकर हो, इस प्रस्तावपर हम तीनों के भाषण हो रहे हैं। प्रस्ताव में 'संघ' शब्द की जगह 'संस्थाएँ' शब्द रखें। सब संस्थाएँ गांधीजी की ही बनायी हुई हैं। सब का मूलभूत मनोरथ एक ही है। जैसा कि काकासाहब ने कहा, एक पहलू में से दूसरा पहलू सामने आता गया और धीरे धीरे पूरे रत्न का दर्शन हुआ। इन सारी संस्थाओं में हेतु का मिलाप तो रहा ही। यानी एकीकरण की मुख्य

शर्त हमेशा मौजूद रही। किसी एक संस्थाने दूसरी संस्था के कार्य का ध्यान न रखा हो, ऐसी बात नहीं। लेकिन अपना अपना एक ही तरह का काम करते करते एक मनोवृत्ति बन जाती है। उसमें कुछ एकाग्रता तो आती है, लेकिन एकांगिता भी आ जाती है। यह एक बड़ी भारी त्रुटि है। इसलिये इन संस्थाओं के कार्य में समग्र जीवन की दृष्टि लाने की आवश्यकता है।

भिन्न भिन्न सुझाव

हर संस्था के सामने यह विचार रहा है। कोई बाकायदा निर्णय नहीं हुआ। सब संस्थाओं के सदस्यों ने मिलकर भी इसपर विचार नहीं किया। उन संस्थाओं में से जो व्यक्ति यहाँ इकट्ठे हुए हैं उन्होंने थोड़ा विचार किया है। उसका थोड़ासा ब्यौरा मैं बता देता हूँ। सब संघों को एकदम शामिल करने से कुछ अड़चनें पैदा होंगी और काम में रुकावट होगी। इसलिये जो ज्यादा नजदीक के हैं उनके एकीकरण से शुरू करें। एक सुझाव यह है कि सारी संस्थाओं को तोड़कर एक ही संस्था कायम करें। दूसरा सुझाव यह है कि मौजूदा संस्थाओं को बिना तोड़े नजदीक लावें। सम्मिलित संघ के कार्यकारी मंडल में सब संघों के प्रतिनिधि हों। सबके प्रतिनिधि मिलाकर जितनी संख्या हो उसके कुछ अंश में बाहर के सदस्य लिये जायँ। इस संघ का अध्यक्ष सब संघों का अध्यक्ष हो। इस तरह यह सब संघों को जोड़नेवाली कड़ी होगी।

पहले भी इस तरहकी योजनाएं थीं। मगर अमल में न लायी जा सकीं। हम देश भर में जाकर इन बातों का प्रचार तभी कर सकते हैं जब उन्होंने हमारे जीवन में स्थान पाया हो। सारे संघ जब एकत्र हो जाते हैं, तो उस सम्मिलित संघ के सदस्यों को हरेक संघ की विशेष बात अपने जीवन में लानी होगी। उदाहरण के लिये, उन्हें पहले तीनों लिपियाँ सीखनी होंगी। इसलिये यह सोचा गया कि सभी संघों की जो सामान्य बातें हैं, उनमें विश्वास रखनेवाले और उनमें से किसी एक बात पर अमल करनेवाले इस सम्मिलित संघ में हों। वे अलग अलग संघों में निकट का संबंध प्रस्थापित करें। इस सम्मिलित संघका काम समग्र जीवन की प्रणाली–वे ऑव लाइफ-समाज के सामने रखना है।

तीसरी एक मुश्किल और है। सम्मिलित संघ के निर्णय सभी संघों के लिये लागू होंगे। अब सवाल यह है कि ये निर्णय साधारण बहुमत से हों या दो-तिहाई बहुमत से हों? क्यों कि अगर बहुमत कोई ऐसा निर्णय करे जो किसी खास संघ को प्रतिकूल मालूम होता हो, तो फिर दिक्कत होगी।

इस के अलावा, सामान्य बातों का तै करना भी आसान नहीं है। हिन्दुस्तानी का, हरिजन सेवा का या आदिवासीसेवा का काम करनेवालों के लिये खादी की और कताई की शर्त हो या न हो, यह तै करना सरल नहीं है।

इन सब बातों का विचार कर के हमें सम्मिलित संघ का रूप तै करना होगा।

कृपलानीजी—मिलापी संघ का मामला उनके घर का मामला है। उन्होंने पहले ही ठहरा लिया था। अब हम लोग यहाँ आ गये हैं, इसलिये प्रस्ताव बना दिया गया। यह उनका आपस का सवाल है। इसलिये असल में यहाँ कोई प्रस्ताव रखने की जरूरत नहीं थी।

बुनियादी विचार

मैं एक दूसरा पहलू आपके सामने रखना चाहता हूँ। बापू के जो रचनात्मक कार्य हैं, उनके बारे में फिर से बुनियादी विचार करने की जरूरत है। इस सम्बन्ध में मैं अपने खयालात पेश करता हूँ। बड़ी मुश्किल से, पचीस बरस मेहनत कर के अंग्रेजी सीखे। किसी तरह से अंग्रेजी में अपने खयाल प्रकट कर लेता हूँ। अब यह हिन्दुस्तानी आयी। हम हिन्दुस्तानी सीख नहीं पाये। जैसी टूटी-फूटी आती है उसमें बोलने की कोशिश करूँगा।

काका कालेलकर—हिन्दुस्तानी में अंग्रेजी शब्द ला सकते हैं। कृपलानीजी ला भी रहे हैं।

पुरानी चीज़ों का पुनरुज्जीवन

जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बापू ने रचनात्मक काम शुरू किये उन पर आप निगाह डालें, तो उनके बारे में बुनियादी तौर पर विचार कर सकेंगे। बापू ने पुरानी चीजें हमारे सामने रखीं। बुनियादी तालीम भी कोआी नआी चीज नहीं है। समाजवादियों ने उन्हें रिवाअिवॅलिस्ट—देखिये फिर दिक्कत आई। मैं रिवाअिवॅलिस्ट के लिये हिन्दी शब्द नही जानता—(किसी ने 'पुनरुद्धारक' शब्द सुझाया।) 'उद्धारक' शब्द में वह सेन्स (मतलब) नहीं आता। समाजवादी और साम्यवादी कहते हैं कि बापू की रिवाइवॅलिस्ट ऐक्टिविटी थी—पुरानी चीज़ों के पुनरुज्जीवन की कोशिश थी।

क्रान्तिकारकता की पहचान

मेरी समझ में उन्होंने पुरानी चीजों को क्रान्तिकारक चीजें बना दिया। क्रान्तिकारक पद्धति जमाने की माँगको पूरा करने का एक तरीका है। जिस जमाने की जो क्रांति-प्रेरणा होती है, उसे पूरा करनेवाली चीज क्रान्तिकारक साबित होती है। गांधीजी जब दक्षिण आफ्रीका से लौटे, उस वक्त जमाने की माँग परदेसी राजको हटाने की थी। यही उस वक्त की क्रान्तिप्रेरणा थी। परदेसी राज हटाने की कोशिश करनेवाले दो तरह के थे। नरमदलवाले और गरमदल वाले। दोनों का तरीका क्रान्तिकारक नहीं था। नरमदलवालों का विश्वास विनय, निवेदन और निषेध (प्रेअर, पिटिशन और प्रोटेस्ट) पर था। दूसरा तरीका बमवादियों का था। हिन्दुस्तान की परिस्थिति में बमगोले का तरीका दूर तक नहीं ले जा सकता था। महात्मा का अहिंसक तरीका उससे भी अधिक क्रांतिकारक था। क्योंकि वह तरीका जमाने की माँग से मेल रखता था। बमका तरीका बेमौजू था। इसलिये लोगों को निडर न बना सका। गांधीजी का अहिंसक तरीका बम के तरीके से भी पुरअसर साबित हुआ।

क्रान्ति के साथ जोड़ने का तरीका

मैं सन सत्रह, अठारह, उन्नीस और बीस में इतिहास का प्रोफेसर था। चरखा रखना बेवकूफी की बात समझता था। मेरी वृत्ति, शिक्षा-दीक्षा, सब कुछ उसके खिलाफ था। लेकिन उस बूढ़ेने चरखे का सम्बन्ध क्रान्ति के साथ जोड़ दिया, तो मुझे चरखा लेना ही पड़ा। ग्रामउद्योग देहातों में घर घर चलते थे। आज भी थोड़े-बहुत चलते हैं। लेकिन गांधी ने उनको भी क्रान्ति के साथ जोड़ दिया। किसी चीज़ को क्रान्ति के साथ जोड़ देने का तरीका बड़ा कारगर तरीका है। बड़ा तेज़ तरीका है। महात्मा की सब प्रवृत्तियाँ क्रान्ति के साथ जुड़ गयीं।

प्रार्थना भी क्रान्ति का साधन

और तो और, प्रार्थना भी क्रान्तिकारक हो गयी। मैं एक अच्छा आदमी हूँ। इसलिये मैं प्रार्थना में नहीं जाता था। लेकिन हमारा नेता राजनैतिक बातें प्रार्थना में ही करता था। वह प्रार्थना में क्रान्ति लाया। जो लोग बिलकुल बे-ताल थे, उन्हें उसने अनुशासन सिखाया। रामधुन सुर में गाओ, तालियाँ ताल में बजाओ। जहाँ दो आदमियों का मिलकर गाना बेसुर होता था, वहाँ बड़ी बड़ी सभाओं को एक सुर में रामधुन गाना सिखाया। बेतालों को ताल सिखाया। हिन्दुस्तानी आदमी कभी चुपचाप बैठना तो जानता ही नहीं। इतनी बड़ी प्रार्थना-सभाओं में उसने लोगों को एक-दूसरे के साथ मिलकर चुपचाप बैठना सिखाया। भंगी का काम इस देश में कौन-सा सभ्य आदमी करता? लेकिन उसने उसे भी स्वराज्य के काम के साथ जोड़ दिया। उसने कहा कि मैं बतलाता हूँ कि अंग्रेजों को कैसे निकाला जाय। हमने कहा, बतलाओ। उसने कहा, चरखा लो, झाड़ू लो। इसलिये इन चीजों को अपनाना पड़ा। जिस चीज का जमाने की इन्कलाबी माँग के साथ ताल्लुक होता है, वह पुरानी होकर भी नया अर्थ लेकर आती है और क्रान्तिकारक रूप ले लेती है।

नमक नहीं क्रान्ति बनायी।

जबतक खादी का सम्बन्ध अंग्रेजोंका व्यापार और राज ख़त्म करनेसे था, तबतक लोगोंने बड़े उत्साहसे खादी को अपनाया। अब वह मतलब पूरा हो गया। अब फिर मिलके कपड़े की बात शुरू हो गयी। उन्नीस सौ तीस में बुड्ढेने कहा, नमक बनाओ। मोतीलालजी हँसते थे। लेकिन फैक्ट्स को डिमॉलिश करनेवाला विजन—वस्तुस्थिति को मात देनेवाला दिव्य दर्शन—गांधी के पास था। गांधी साबरमतीसे निकला! पैदल! बुलककार्ट मेंटैलिटीवाला—बैलगाड़ी की मनोवृत्तिवाला—यह आदमी भला बैलगाड़ी में तो चलता! वह तो पैदल चला! हर कदम पर क्रान्तिकी बिजली फैलाता चला। दांडी के समुद्र के किनारे उसने नमक नहीं, रेवोल्यूशन मैन्युफैक्चर किया—इन्किलाब बनाया। मगनवाड़ीमें हमको कड़वे नीमकी पत्ती खिलायी। खली तक खिलाई। हमने चुपचाप खाई। करते क्या? स्वराज जो चाहते थे! इन बातों के पीछे क्रान्तिकी प्रेरणा थी।

बुढ़िया का शगल ?

अब इन चीज़ोंमें वह जान क्यों नहीं है ? इसलिये कि क्रान्तिकी पुरानी प्रेरणा खत्म हो गई। जिस उद्देश्य से हमनें उन्हें अपनाया था, वह उद्देश्य पूरा हो गया। अब हमें इन प्रवृत्तियोंको 'ओल्ड डेम्स ऐक्टिविटी–बुढ़िया का शगल–नहीं बनाना है। हमको क्रान्तिकारियों से अब सुधारवादी नहीं बनना है।

क्रान्तिप्रेरणासे अनुबन्ध

इस का यह अर्थ हुआ कि इन चीज़ों को आजकी क्रान्ति-प्रेरणा के साथ जोड़ना होगा। हमको अपने चरखा, ग्रामोद्योग, आदि कामोंको क्रान्तिके साथ बाँधना होगा। सिर्फ़ आर्थिक कारण बतला देना काफ़ी नहीं है। स्वदेशी के ज़माने में हमने देशकी आर्थिक उन्नतिका कारण बतलाया। वह बात लोगों के दिल में नहीं जमी। जब उसका मेल अंग्रेजोंको भगाने के साथ लगाया गया, तो स्वदेशी के आन्दोलन से देश सुलग उठा। अब अंग्रेज़ चले गये। अब आपको आजकी परिस्थिति में नई क्रान्तिकी व्याख्या करनी होगी और उस मुख्य क्रान्ति के साथ रचनात्मक काम का कोरिलेशन–अनुबन्ध–बतलाना होगा।

नई क्रान्ति का उद्देश्य

नई क्रान्ति का उद्देश्य इक्वेलिटैरियन सोसायटी–समतापूर्ण समाज–है। चरखा, ग्रामोद्योग, बुनियादी तालीम, पाखाना-सफ़ाई, इन सब को इस उद्देश्य के साथ जोड़ देना होगा। वरना अब इनके दिन लद गये। गांधीने अंग्रेजी राज के विनाश की परिभाषा में चरखे की फिरसे व्याख्या की। और इस तरह मरे हुए चरखे को फिरसे जिलाया। अब उस चरखे की नई क्रान्ति की परिभाषा में, नये सिरे से व्याख्या करो। यही बात दूसरे सारे कामों के लिये लागू है।

विकेन्द्रीकरण की जरूरत

शुरू शुरू में काम के बदन के साथ उसकी रूह भी होती है। बाद में वह सिर्फ यांत्रिक रह जाता है। रूह नहीं रहती। आज के बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण के जमाने में उस परिभाषा में चरखे की व्याख्या करनी होगी। हम लोकसत्ता कायम करना चाहते हैं। उसका साधन औद्योगिक विकेन्द्रीकरण है। विकेन्द्रीकरण के सिवा जनतंत्र की बात झूठ है। केन्द्रीकरण से नौकरशाही आती है। ब्यूरोक्रसी या टेक्नॉक्रसी–नौकरशाही या तांत्रिकशाही—दोनों लोकसत्ता की समानरूप से दुश्मन हैं। और जहाँ जनतंत्र नहीं, वहाँ अहिंसा नहीं। हम जवाहरलाल नेहरू से कहेंगे कि अगर आपको असली जनतंत्र से ग़रज़ है, तो केन्द्रीकरण का लालच छोड़ना होगा। जिस हद तक केन्द्रीकरण होगा, उस हदतक जनतंत्र भी कम होगा।

इस विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से आप अपनी कार्यप्रणाली की नयी व्याख्या कीजिये। अब गाँव गाँव में बिजली पहुँचेगी। तेल और कोयले का ज़माना बीत रहा है। अब मोटरों के हिस्से, जहाजों

और हवाई जहाज़ों के हिस्से, छोटे छोटे कारखानों में बनेंगे। अमेरिका में विकेन्द्रीकरण की पद्धति से बड़े बड़े जहाज युद्धकाल में बने। ज़माना विकेन्द्रीकरण का है।

पुरानी चीजों की नयी व्याख्या का महत्त्व

हमारे धर्म में पुरानी चीज की नयी व्याख्या का बहुत महत्त्व है। वेदों पर, पुराणों पर, गीता पर नये नये भाष्य लिखे गये और लिखे जा रहे हैं। तिलक ने, अरविंद ने, लाला लाजपतराय ने और बापू ने भी पुरानी गीता के नये अर्थ लगाये। किसी चीज को जिन्दा रखने का यह सब से कारगर तरीका है। अगर आप सारे रचनात्मक संघों का एकीकरण करते हैं, तो जरूर कीजिये। बात बहुत अच्छी है। लेकिन मेहरबानी कर के ध्यान में रखिये कि आपको अपनी प्रवृत्तियों की फिर से व्याख्या करनी है! किस दृष्टि से नयी व्याख्या करनी है, यह भी मैंने थोड़े में बतलाया।

मिल कर काम करने की कला

एक बात और। हमारे देश में एक एक आदमी अकेला बहुत अच्छा काम कर लेता है। इसलिए वह चाहता है कि हरेक बात उसकी मर्जी के मुताबिक हो। अपनी बराबरीवालों के साथ काम करने की कला हम लोगों में नहीं है। कुमारप्पा, जाजूजी, नायकमजी, ये सब डिक्टेटोरियल टाइप—तानाशाही छाप—के आदमी हैं। उन के दफ्तर में उनके सामने कोअी चूँ भी नहीं कर सकता। हमको एक-दूसरे के साथ मिल कर काम करने की कला बढ़ानी है। हम बाहर के आदमियों से मोहब्बत का रिश्ता जोड़ते हैं। लेकिन साथियों से बात करने को भी फुरसत नहीं। गांधीजी से एक बड़ी भूल हुअी। उन्होंने हम से कहा कि अपने दुश्मनों से प्रेम करो! यहाँ तो भाइयों से भी प्रेम नहीं करते! इसलिये हमने भाइयों के साथ काम करना भी छोड़ दिया। हमारे स्टैंडर्ड–दर्जे–के लिये तो यही नियम हो सकता है कि मित्रों को प्रेम दो और दुश्मनों को न्याय दो। मुझ में भी यह नुक्स है। मैंने अपनों से प्रेम करना नहीं सीखा! कुछ आदमियों का यह ख़याल है कि मित्रों के साथ अन्याय किये बिना विरोधियों के साथ न्याय नहीं हो सकता!

न्यूटन और बिल्लियाँ

रचनात्मक संघों के संचालक अगर एक-दूसरे के साथ मिलजुल कर काम करने लगेंगे, तो हमारे बीच भीतरी मुहब्बत और सहयोग क़ायम होगी। इस एक ही संत्र से भाईचारे का काम भी हो सकेगा। इन संस्थाओं के मिलाप के लिए अलग संघ और आदमियों के मिलाप के लिए अलग संघ बनाने की बात सुनकर मुझे न्यूटन का किस्सा याद आता है। वह अपना कमरा बंद कर के अध्ययन करने बैठता। लेकिन अपनी प्यारी बिल्ली के लिए उसने दरवाजे में सूराक बना दिया। बिल्ली के जब बच्चा हुआ तो न्यूटन ने बड़ी बुद्धिमानी से बच्चे के लिए छोटा सूराक बनवाया। मानो बड़ा सूराक दोनों के लिए उपयोगी न था! हम भी इस तरह के छोटे और बड़े सूराक बनाने के चक्कर में न पड़ें।

राजेन्द्रबाबू—मैं समझता हूँ, अब इस प्रस्ताव पर काफी बहस हो चुकी है।

नवराज गोपालकृष्णय्या—मैं इसका विरोध करता हूँ।

स्वामी जगदीशनारायण—बिछड़े हुए संघ एकत्रित करने से ज्यादा काम होता है। मैं महात्माजी के साथ रहा हूँ। उनकी आत्मा को जानता हूँ। वृत्तिको जानता हूँ। हमारे शरीर के अलग अलग अवयव हैं। वे अपनी मर्जी से अलग अलग काम करें तो शक्ति नहीं पैदा होती। इन्द्रियों को मिलकर काम करने की प्रेरणा आत्मा देती है। जड़ प्रकृति में यह गुण नहीं है। इन सारी संस्थाओं की आत्मा गांधीजी थे। आप इस सम्मिलित संघ की आकृति में महात्माजी जैसी आत्मा डालिये।

[प्रस्ताव मंजूर]

जे. सी. कुमारप्पा—प्रस्ताव सं० ४ [परिशिष्ट देखिये।]

मित्रो !

काकासाहब ने कहा कि हिन्दुस्तानी में अंग्रेजी शब्द आ जाते हैं। मैं उनकी यह व्याख्या स्वीकार करता हूँ और सारे अंग्रेजी के ही शब्द बरतता हूँ। मेरी इस हिन्दुस्तानी में अंग्रेजी के सिवाय दूसरे शब्द नहीं होंगे, यह देखकर आप दंग रह जायेंगे।

'रचना' का असली अर्थ

आचार्य कृपलानीजी ने अपनी अनुपम और उपहासात्मक पद्धतिसे हमारे सामने क्रान्तिकारक सिद्धान्त रखें हैं। क्रान्तिकारक इस लिये कि हम दूसरी दिशामें चले गये हैं। पहियों को वापिस घुमाना होगा। जब हम ऐसा करेंगे तब लोग अपने पैरोंपर खड़े हो सकेंगे। गांधीजी इस धरतीपर सत्य और अहिंसा एक नये रूपमें लाये। उन्होंने उसे रचनात्मक कार्य की शक्ल दी। पाश्चात्य देशोंने सुख-सामग्री के निर्माण को ही रचनात्मक कार्य समझा। महज़ चीज़ें बनाना रचनात्मक कार्य नहीं है। खादी बुनना, गायका दूध पीना, नीमकी पत्ती खाना या खली खाना, ये सब रचनात्मक प्रवृत्तियाँ हो भी सकती हैं; और नहीं भी हो सकतीं। अगर वे हमको स्वयं अपनी रचना करने में, अपने आपको संयम और नियंत्रण में रखने में, मदद पहुँचाती हों तब तो वे रचनात्मक हैं; अन्यथा नहीं।

बुद्ध, ईसा और गांधी

भोगविलास और आत्मप्रकाशन हमेशा रचनात्मक नहीं होता। अमेरीका में पचास पचास तल्लों के मकान हैं। मनुष्य का चित्त अशान्त है। उसकी यह प्रतिक्रिया है। मानो बिल्लीका बच्चा गेंदके साथ खेल रहा है। मनुष्य में जो बड़ी से बड़ी और ऊँची से ऊँची चीज़ है, उसके लिये हमारा रचनात्मक काम हमें तैयार करे। सत्य और अहिंसा तो बुद्ध भगवान् और हजरत ईसा ने भी सिखायी। लेकिन

उन्होंने उसका सम्बंध परलोक के साथ जोड़ा। गांधी उन चीज़ों को आसमान से ज़मीन पर लाये। बुद्ध, ईसा और गांधी में यह बहुत बड़ा अन्तर है। इस में गांधीकी विशेषता है। ईसाने कहा कि अगर हम अपने पितासे प्रेम करते हों, तो हमें उसकी इच्छापर अमल करना चाहिये। गांधी ने कहा, हम उसीकी इच्छा तो पूरी कर रहे हैं—भूखों को खिलाते हैं, नंगों के तन ढाँकते हैं, बीमारोंका इलाज करते हैं। रचनात्मक कार्यक्रम और क्या चीज़ है? ईसाने यही करने को तो कहा था।

ऊपर से बिजली पानेवाली ट्रामगाडी

ईसा कम उम्र में मरे। जब उनकी मृत्यु हुई उस वक्त उनके सत्तर शिष्य थे। उन्होंने समझा कि अब तो सूरज डूब गया। हमारा मसीहा जाता रहा। ये सत्तर शिष्य येरुशलम में एक गुप्त कोठरी में जमा हुये। हमारे साथ भी कुछ ऐसा ही हो रहा है। यहाँ हम कँटीले तारों की बागुड़ में अिकट्ठा हुअे हैं। हमने बिल्कुल गलत रास्ता पकड़ा है। हम दुनिया से घबड़ाते हैं, अपनी परछाईं से डरते हैं। जवाहरलालजी का यहाँ आना हमारी अयोग्यता का प्रत्यंतर है। हमने भीतर से कोई ताकत पैदा नहीं की है। हमारा दीया बुझ गया। बिजली पैदा करनेवाली कोअी शक्ति भीतर नहीं है। हमारी हालत उन ट्रैमगाडियों जैसी है जिनकी चोटी पर बिजली का तार होता है। अगर ऊपर का तार टूट जाय तो गाड़ी रुक जाती है। हमारा भी यही हाल है। हम सरकार का मुँह ताकते हैं। इसीलिये तो जवाहरलालजी को यहाँ आना पड़ा। गांधीजी कहते थे कि प्रेरणा का खजाना हमको बनना चाहिये। हमारे यहाँ से सरकार को शक्ति मिले। हम में से हर एक शक्ति का स्रोत बने। रचनात्मक कार्य का यही उद्देश्य है।

अहिंसक अणुबम

स्वराज मिलने के बाद और गांधीजी की मृत्यु के बाद हम अपने को अन्धेरे में पाते हैं। हमें नहीं सूझ पड़ता कि अब स्वराज्य के साथ क्या करें? यही अवसर है जब कि हम रचनात्मक कार्य से नई प्रेरणा पा सकते हैं। रचनात्मक कार्य की ज़रूरत केवल हिन्दुस्तान के ही लिये नहीं, बल्कि सारी दुनिया के लिये है। और सब से अधिक मेरे और आप के लिये है। जहाँ पर संयम और आत्मनियंत्रण होता है, वहीं सत्य और अहिंसा की प्रगति होती है। हममें से हरएक को अहिंसक अॅटम बम बनना चाहिये।

यूरप प्रतियोगिताके रास्ते पर

यूरप प्रतियोगिताके रास्तेपर कदम बढ़ाता जा रहा है। वहाँ वास्तविक जनतंत्र नहीं है। जहाँ केन्द्रीकरण आया वहाँ जनतंत्र नहीं ठहरता। वहाँ प्रतियोगिता का अर्थशास्त्र अपनी सत्ता जमाता है। आप जहाँ जाइये प्रतियोगिता का बाजार गर्म है। पार्लमेंट में भी सरकार और विरोधी पक्ष की चढ़ाऊपरी चलती है। सरकार और लोगों के बीच भी लागडाँट जारी है। सरकार विरोधी दलको भी पैसा देती है। दोनों एक-दूसरे का तौल सम्हाले रहते हैं। दोनों में स्पर्धा और ईर्ष्या होती है। लेकिन आर्थिक क्षेत्र में

प्रतिस्पर्धा कायम रखने की नीति है। इसलिये राजनैतिक क्षेत्र में भी सहयोग स्पर्द्धा का रूप लेकर ही आता है। होड़ ही उनकी सहायता है।

जनतन्त्र का अर्थ विकेंद्रीकरण

जनतंत्र का अर्थ राजनैतिक सत्ताका विकेन्द्रीकरण है। केन्द्रित अधिनायकत्व भी जनतंत्र के प्रतिकूल है। नर्मदाकी दोनों तरफ बड़ी बड़ी चट्टानें हैं। वे उस नदी के प्रवाह की रक्षा करती हैं। लेकिन उसके प्रवाह में जाकर नहीं बैठतीं। चट्टानें नदी के पात्र में बैठने लगें, तो उस के बहाव को रोक देंगी। हम भी सरकार में नहीं जाना चाहते। सरकारी कुरसियों पर नहीं बैठना चाहते। सरकारके दोनों तरफ त्यागी लोगोंकी दीवार खड़ी कर देना चाहते हैं। नदी के पात्र में नहीं बैठना चाहते। सरकार हमारे पास आये और मार्ग-दर्शन तथा सत्ता माँगे। सारे मंत्री गांधीजी के कदमों के पास आते थे। हम भी अपनी अल्प शक्ति के अनुसार वह शक्ति प्राप्त करें। इस से लोगों के चरित्र का निर्माण होगा।

चारित्र्य के अभाव का परिणाम

कालाबाजार, चारित्र्य के अभाव का परिणाम है। हमको अपना रचनात्मक कार्य सारे देश में नये प्रकार से करना चाहिये। पश्चिम के ढंग का जनतंत्र बिना लंगरवाले जहाज के समान है। उसकी गतिका नियंत्रण नहीं हो सकता। वह पानीकी सतह पर उतराता झोके खाता रहता है। रचनात्मक कार्यक्रम जनतंत्र के लिये लंगरका काम करे। तब कहीं हमारी यह नाव सुरक्षित रहेगी।

जीवन की रुचिरता

रचनात्मक कार्यका एक पहलू और है। वह हमारे शरीर को स्वस्थ और सुडौल बनाता है और हमारे व्यक्तित्व का विकास करता है। नंगे-बदन शरीरश्रम करनेवाले उन लड़कों के शरीरोंकी सुन्दरता देखिये। संयम और आत्म-नियंत्रण से व्यक्तित्व का विकास होता है। जीवन में सादगी आती है। तड़क-भड़क का अभाव होता है। मेरा मतलब ऊपरी सादगी से नहीं है। वह सादगी हमारी वृत्ति की सरलताका प्रतिबिंब है। साधनों की बहुलता में जीवन की रुचिरता नहीं है। मैं कोई कल्पना की बात नहीं कह रहा हूँ। यूरपको देखिये। कैसी साधनों की सम्पन्नता है। मिलें हैं, कलें हैं, कारखाने हैं। लेकिन जनता दीन और दरिद्री है। जनपद सारा ऊजड़ हो गया है। केन्द्री-करण के कारण अन्न, वस्त्र, सभी कुछ, मुट्ठीभर लोगोंके हाथोंमें केन्द्रित हो गया है। लोगों को रोटियों के लाले पड़े हैं। तन ढँकने के लिये कपड़ा नहीं। चरित्र काफूर हो गया है! नैतिक भावना का, सहानुभूतिका, कहीं पता नहीं। सारी चीजें, सारी बातें, हवा हो गयी हैं।—गॉन विथ दि विंड!

आन्तरिक रचना

जीवन की सुन्दरता बाहरी चीज नहीं है। वह भीतरी चीज है। रचनात्मक कार्यक्रम हमारी आंतरिक रचना करेगा। नई तालीम जिस तरह से बच्चों का भीतर से निर्माण करती है, उसी तरह से रचनात्मक कार्यक्रम जनतंत्र का चरित्र निर्माण करेगा। नई तालीम में काम का रिश्ता ज्ञान के साथ जोड़ दिया है। हम जिसे काम कहते हैं वह, बच्चे जिसे खेल के नाम से पुकारते हैं उस चीज से अलग नहीं है। अगर हम रचनात्मक कार्य का उचितरूप से संयोजन कर सके तो हमारा राष्ट्र एक चारित्र्यवान राष्ट्र बनेगा।

जनहित के लिए उत्पादन

मुझे बहुत चीजें पैदा करने में रुचि नहीं हैं। उन में मूलभूत एकता होनी चाहिये। उन के प्रमाण में तारतम्य होना चाहिये। हमें पर्वताकार राक्षसों की जरूरत नहीं हैं, जिनका एक एक अंग प्रमाण से अधिक बढ़ गया हो। इन सब संघों को एकत्र करना चाहिये। रचनात्मक कार्य में भी सामंजस्य की जरूरत है। उत्पादन निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष है।

हमारा मार्ग केवल अहिंसक पद्धति से चीजों का निर्माण करना नहीं है। उस में स्वयंपूर्णता भी चाहिये। हम अपनी प्राथमिक आवश्यकतायें स्वयं पूरी कर लें। इस तरह के ग्राम-समुदायों का संगठन करें। बीस या तीस गाँवों का एक क्षेत्र शायद बनाना पड़े। मैंने इसका एक नक्शा बनाया है। देहातों में स्वास्थ्य और खेती के कामों में काफी मदद की जरूरत है। अब समय आ गया है कि हम खेती का काम भी हाथ में लें। आज बाजार के लिये उत्पादन हो रहा है। तिलहन और कुछ दूसरी चीजें सिर्फ बाजार के लिये उपजायी जाती हैं। उत्पादन में पारस्परिक समन्वय और अनुबन्ध की जरूरत है। बड़े पैमानेपर चलनेवाले उद्योग सरकार के हाथों में हों। तभी उत्पादन जनहित के लिये होगा, व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं।

राजनैतिक काम

मैं राजनैतिक काम को अपने दायरेसे बाहर नहीं समझता। हाँ, सत्तावादी राजनीति से हमको अलग रहना चाहिये। लेकिन स्त्रियों का प्रश्न, मजदूरों और किसानों का प्रश्न, विद्यार्थियों का प्रश्न, ये सब प्रश्न सामाजिक होते हुए भी दर असल राजनैतिक हैं।

सार्वभौम जीवनप्रणाली का विकास

इसके अलावा प्रचार का भी काम है। ये बीज हमको सब तरफ बोने हैं। इसके लिये प्रकाशन की जरूरत होगी। हमारे ग्रामकेन्द्र प्रचार के भी साधन होंगे। ग्रामकेन्द्रों में काम करनेवाले समय समय पर एक जगह मिलकर सारे देश के लिये ही नहीं बल्कि सारी दुनिया के लिये संयुक्त कार्य की योजना बनायेंगे। हमपर बहुत बड़ी जिम्मेवारी है। इसलिये हमको आंतरिक शक्ति का विकास

करना चाहिये ! यू. एन. ओ. में आंतरिक शक्ति का अभाव है। वह चकनाचूर हो जायगी। वह लगभग चौंतीस राष्ट्रों को बुलाती है और सम्मिलित जीवन के विकास का स्वाँग भरती है। हम यदि रचनात्मक कार्यप्रणाली के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति एकनिष्ठ रहें तो सार्वभौम जीवनप्रणाली का विकास हमारे यहाँ से होगा। (अंग्रेजीसे)

राजेन्द्रबाबू—पाँच में पांच मिनिट हैं। अब हमको इसे जल्दी खत्म करना है, क्यों कि अभी तीन प्रस्ताव और हैं।

शोषणहीन समाज की प्रतिष्ठा

प्रफुल्लबाबू—मैं कुमारप्पा के प्रस्ताव की ताईद करता हूँ। कृपलानीने कहा कि हमारी आर्थिक योजना का क्रांति के साथ मेल होना चाहिए। शोषणविहीन समाज की प्रतिष्ठा के लिये इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं। अगर कोई दूसरा वैज्ञानिक रास्ता बताये तो हम उसे मान लेंगे। हम एक–दूसरे की टीका–टिप्पणी में समय नष्ट न करें। इस योजना का मकसद गाँवोंको रहने लायक बनाना है। आज हमारे शहर रहने लायक नहीं रह गये हैं। वहाँ धूम्र है, धूल है और भीड़-मड़क्का है। शोषणका तो कोई ठिकाना नहीं। नब्बे फीसदी काम शोषण से चलते हैं। कुमारप्पाजीकी सूचना के अनुसार हमारे कार्यकर्ताओं को ग्रामसमुदायों की एक एक इकाई लेकर बैठ जाना चाहिये। रचनात्मक कार्य के द्वारा ग्रामों का रूप और रौनक बदल देनी चाहिये। जहाँ तालीमी संघ के स्कूल खुलेंगे वहाँ दूसरे स्कूलों की कोई जरूरत नहीं रहेगी। हमें तत्त्वज्ञान की जितनी जरूरत है उससे कहीं ज्यादा जरूरत अमली काम की है। हम अपने काम से देहात का नक्शा नहीं बदलेंगे तो सारा तत्त्वज्ञान धरा रह जायगा। क्रान्ति सिर्फ किताब में रहेगी। जो गिरे हुये हैं उनको हम नहीं उठायेंगे, तो खुद धूल में मिल जायेंगे। काम से ही तत्त्वज्ञान में शक्ति आती है और समाज को जीवन मिलता है। हम इस प्रस्ताव को मंजूर करें।

(प्रस्ताव मंजूर।)

सुचेता कृपलानी—प्रस्ताव नं. ५। (परिशिष्ट देखिये)। मैं आपके सामने पाँचवा प्रस्ताव पेश करती हूँ।

(प्रस्ताव पढ़कर सुनाया)

बापू को यह चीज चुभ रही थी

बापूने नवाखाली में, कलकत्ते में, बिहार और दिल्लीमें प्रायश्चित्त किया। अब हम सोचें कि हमको क्या करना चाहिये ? मेरा दिल कहता है कि यही काम सब से अहम है। बापूने यही काम क्यों किया ? क्यों कि उनके दिल में यह चीज चुभ रही थी। जैसा कि कल कृपलानीजीने कहा, कि उनके बदन में कुरता चुभने लगा था, उसी तरह यह सवाल उन्हें चुभने लगा था। अब उनका काम

हमें आगे चलाना है। सबसे पहली जगह इस काम को मिलनी चाहिये। पहला काम मदद पहुँचाने का है। जो आते हैं उनकी मदद करनी चाहिये। बम्बई में मैंने खुद देखा। सिन्ध से आनेवाले लोगों का हाल बहुत बुरा था। कितने ही लोगों के पास एक चटाई भी नहीं थी। बम्बई-सरकार अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें मदद करती है। कांग्रेस के लोग भी सहायता पहुँचाते हैं। फिर भी यह काफी नहीं है।

शरणार्थियों को बसायें कैसे ?

दूसरा प्रश्न इन लोगों को बसाने का है। करोड़-डेढ़ करोड़ आदमियों को बसाना कोई मखौल नहीं है। यह काम सरकार ही कर सकती है। सब शरणार्थी एक ही तरह का काम नहीं कर सकते। जहाँ जिस प्रकार के लोगों की जरूरत हो, वहाँ उस तरह के लोग भेजे जाने चाहिये। गवालियर में सिर्फ खेती करनेवाले लोगों की जरूरत है। वहाँ की सरकार दूसरे शरणार्थियों को लेना नहीं चाहती। हर जगह की सरकारें अपनी अपनी जरूरत के मुआफिक माँग करती हैं। हर जगह के लिये खेती-किसानी करनेवाले शरणार्थी कहाँ से लावें ? शरणार्थी जिस तरह के व्यवसाय जानते हैं, उन्हीं व्यवसायों को करने की सुविधा होनी चाहिये। यह सवाल इसी सबब से कुछ पेंचीदासा हो गया है।

हम पहले इम्तिहान में ही फेल न हों

तीसरा सवाल लोगों को बचाकर लाने और भगाई हुई औरतों को वापस न लाने का है। इस के अलावा जो लोग विधर्मी बनाये गये हैं उन लोगों को फिर से उनके धर्म में लाने का सवाल भी काफी टेढ़ा है।

ये काम हमारे सामने हैं। राजपरिवर्तन के कारण हमारा दिमाग दूसरी तरफ लगा हुआ है। इस तरफ जितना चाहिये उतना ध्यान नहीं है। लेकिन यह काम इतना भयंकर है कि दिनरात बराबर कर देने पर भी मुश्किल से कुछ कर पाते हैं। इस में हमारी जिम्मेवारी काफी है। शरणार्थी गांधीजी को और नेताओं को कोसते हैं। कहते हैं तुमने हमें स्वराज का रास्ता दिखलाया, हमें तबाह किया। एक किस्सा है। एक दिन शरणार्थियों ने बापूपर गालियों की बौछार की। कहने लगे, 'तेरी वजह से हम बरबाद हो गये। तेरे कारनामोंने हमें चौपट किया। अब तू ही हमें बसा दे।' बापूने कहा, 'इन के दिल का जहर जबानमें से निकल रहा है। इसे मैं बुरा नहीं मानता।' हम सभी अपराधी हैं। पंद्रह अगस्त से पहले पश्चिम पंजाब से भागनेवाले लोगों को हमने रोका। इस आशा से कि पंद्रह अगस्त के बाद झगड़ा-टंटा खतम हो जायगा, हम उन्हें बचा लेंगे। लेकिन न बचा सके। हमारा दुख बहुत बड़ा है। लेकिन वे तो हमारे नेतृत्व में ही बरबाद हुए। अब अगर हम उनकी मदद न कर सके, तो पहले इम्तहान में ही फेल हो जायेंगे।

शरणार्थियों के खिलाफ़ हवा

प्रान्तों में शरणार्थियों के खिलाफ हवा पैदा हो रही है। क्योंकि वहाँ शरणार्थियों के कारण आर्थिक क्षेत्र में स्पर्धा शुरू हो जाती है। लोग कहते हैं, 'ये शरणार्थी यहाँ आकर जगह अड़ाते हैं।' लेकिन वे जायें भी कहाँ ? घरबार तो गँवा बैठे हैं। इसलिये वे कांग्रेस पर बिगड़ते हैं। कहते हैं, 'कांग्रेसवाले ईमानदारी से काम नहीं करते।' इस में कुछ सचाई तो है। हम कांग्रेसवालों को जितना करना चाहिये था उतना नहीं कर पाये। अगर हम शरणार्थियों के लिये घरों का इन्तजाम नहीं करेंगे तो देश में शांतिस्थापना का प्रश्न हल नहीं होगा।

वातावरण में जहर का असली कारण

शांतिस्थापना का काम बहुत बड़ा काम है। शरणार्थियों का खून खौल रहा है। उनका मसला तै न हुआ तो शांति नहीं रहेगी। वे बदला लेने के लिये उबल रहे हैं। अशांति का असली कारण राजनैतिक है। वातावरण में जबर्दस्ती जहर फैलाया गया है। इसी जहर के कारण बापू की हत्या हुई। हम को इसे हटाना है। सरकार की पुलिस और सेना इस जहर को नहीं हटा सकती। यह काम बापू के तरीके से ही होगा। सरकार इस जहर को हटाये भी कैसे ? सरकारी नौकरियों में आर. एस. एस. के आदमी हैं। आर. एस. एस. के मामूली कार्यकर्ता जेलों में भेजे गये हैं। लेकिन उन के बहुत से असली आदमी सरकारी नौकरियों में बैठे हुअे हैं। इस तरह से तो सारा शासन हवा में तितर-बितर हो जायगा। सरदार पटेल ने खुद कॉन्स्टिट्युअंट असेम्बली में कहा कि आर. एस. एस वाले सरकारी नौकरियों में भी घुस गये हैं।

शान्ति का संगठन

इसका मुकाबला करने का एक ही तरीका है। हमको शान्तिका बड़ा संगठन बनाकर सारे देश में छा जाना है। जो नौजवान हताश और उद्विग्न हो गये हैं उनके लिये यह जबर्दस्त कार्यक्रम है। हम एक मज़बूत शान्तिसेना, बापूकी सेना, खड़ी करें। शान्तिका काम और शरणार्थियों का काम साथ साथ जाता है।

यह परिहास

लेकिन हम देखते क्या हैं ? यहाँपर बापूके खास आदमी एकत्रित हैं। यह बापूका पीठस्थान है, बापूका मंदिर है, यह सेवाग्राम अहिंसा का पुण्यक्षेत्र है। लेकिन यहाँ भी हमारी चारों ओर कँटीले तार हैं और हथियारबंद सिपाही हैं ! यह कैसा परिहास है। यह स्वराज तो गुलामी से भी बदतर है ! जबतक हम शस्त्रधारियों की सहायता की जरूरत महसूस करते हैं, तबतक बापूकी तत्त्वप्रणाली चरितार्थ नहीं होगी।

सबसे प्रमुख और पहला काम

कम से कम शरणार्थियों की सहायता के लिये मँजे हुए, समझदार आदमी मार्गदर्शन कराने के लिये आवश्यक हैं। ऐसे आदमी जो अपने जीवन से दूसरों का दिमाग ठीक करें। जब लड़ाई होती है तो सब कामों में पहला और प्रधान स्थान लड़ाई को दिया जाता है। स्वराज के बाद सब से प्रमुख और पहला काम शरणार्थियों का है। इस जर्जरित देशको फिरसे सुदृढ़ बनाना है। यह प्रस्ताव सिर्फ कागज़पर न रह जावे। जिन लोगोंको इस कामके लिये आस्था हो वे अपने अपने नाम दें।

सुझाव—'आदत' की जगह 'मनोवृत्ति' रखा जाय।

(सुझाव मंजूर)

मेरी व्यथा का कारण

विनोबा—मैं इस प्रस्ताव की ताईद करने के लिये खड़ा हुआ हूँ। बापू के जाने की खबर जब मुझे मिली तब दो-तीन दिन तक मेरा चित्त केवल शांत रहा। मेरी कुछ ऐसी आदत है कि किसी चीज का मुझ पर एकदम परिणाम नहीं होता। वैसे इस घटना का भी हुआ। लेकिन दो तीन दिनों के बाद परिणाम होने लगा। और चित्त में कुछ व्याकुलता भी आ गई। उन दिनों गोपुरी में रोज प्रार्थना में बोलना पड़ता था। सेवाग्राम के आश्रम में भी तीन दिन मैं बोला। पहले रोज वहाँ प्रार्थनाभूमि पर जब मैं बोलने लगा, तो मेरी आंखों से आंसू गिरने लगे। यह बात सुनकर किसी भाई ने पूछा "क्या विनोबा भी रोये?" मैंने कहा "हां भाई, मुझे भी भगवान् ने हृदय दिया है। उस के लिये मैं भगवान् का उपकार मानता हूँ।" लेकिन मेरी आँखों में आंसू आये वे बापू की मृत्यु के लिये नहीं थे। क्योंकि मैं मानता हूँ कि उनकी मृत्यु तो ठीक वैसी ही हुई, जैसी किसी भी महापुरुष की हो सकती है। इसलिये मेरे लिये तो वह आनंद की ही बात थी। मुझे दुःख इस बात का था कि हमारे भाइयों की इस हत्याकारी मनोवृत्ति को मैं रोक नहीं सका। यहां तक कि पवनार से भी कुछ लोग आर. एस. एस. के मामले में गिरफ्तार किये गये। वे गुनहगार ही होंगे ऐसा मैं नहीं मानता। कुछ भी हो, लेकिन भावार्थ यह हुआ कि जिस गांव में मैं दस सालों से रहता हूँ वहाँ वालों के हृदय तक भी मैं नहीं जा पहुँचा। और इसी बात का मुझे बड़ा दुख हुआ।

हम अपना दोष देखें

यह जो प्रस्ताव आपके सामने रखा गया है उसके पहले हिस्से में एक महान विचार है। हमें समझना चाहिये कि सारे हिंदुस्तान में सब का एक ही मकसद होना असंभव है। ऐसी स्थिति में अपने अपने मकसद के लिये लोग जो साधन इस्तेमाल करेंगे, वे अगर सच्चे और अहिंसक न रहे, तो हिंदुस्तान के टुकड़े टुकड़े हो जानेवाले हैं। हिंदुस्तान में यह घटना जिस प्रकार घटी उसका दुःख मेरे दिल में इतना है कि उसे प्रकट करने में मेरी वाणी असमर्थ है। लेकिन इस का सारा

दोष आर. एस. एस. वालोंपर रखने से हमारा काम नहीं होगा। वे तो हम से भिन्न विचार रखने वाले हैं। लेकिन उनमें भी कुछ भले और त्यागी लोग तो पड़े ही हैं। उनका हमें आदर भी करना चाहिये। दोष तो हमें अपना ही देखना चाहिये। १९४२ में हमने क्या किया? उसमें छिपे तरीके काम में लाये, हिंसा भी की। और यह सारा गांधीजी के नाम पर किया। इतना ही नहीं, बल्कि उसका बचांव भी किया। ऐसा यदि है, तो हम से भिन्न विचार रखनेवाले उसी तरह के छिपे और हिंसात्मक तरीकों से काम करें तो हम उन्हें क्या कहें?

एक नैतिक मोर्चा

इस प्रश्नपर मैंने काफी अंतःशोधन किया। अंत में इस नतीजेपर आया कि हमारे कितने भी अच्छे मकसद क्यों न हों, उनकी पूर्ति के लिये हम अच्छे ही साधन इस्तेमाल करेंगे ऐसा आग्रह अपने जीवन में रखनेवालों का एक आम मोरचा (कॉमन फ्रंट) हमें बनाना चाहिये। चंद लोग भी क्यों न हों, पर इस बात को मंजूर करके अपने जीवन में उसका अमल करने का आग्रह रखनेवाले होने चाहिये। तब वह एक नैतिक मोरचा (मॉरल फ्रंट) बन जाता है। और उसीकी आज बहुत जरूरत है।

पुलिस-बन्दोबस्त

पुलिस-बंदोबस्त के अंदर हमारी यह परिषद् हो रही है यह कितने दुःख की बात है! इससे व्याकुल होकर कुमारप्पा तो कुछ देर परिषद् में गैरहाजिर रहे। लेकिन उनके साथ सहानुभूति रखते हुए भी मैं मानता हूँ कि इसके सिवा चारा नहीं था। इसका अधिक से अधिक दुःख पं. जवाहरलालजी को हुआ है, ज़िसे उन्होंने अपने भाषण में प्रकट भी किया। उन्होंने कहा "अहमदनगर के किले में हम कैद थे लेकिन तब हम आज़ाद थे। कैद अब महसूस होती है।" उन्होंने यह भी कहा कि देखेंगे, एक दो महीनों तक कैसे चलता है। लेकिन अगर इस चीज को वे सहन नहीं करेंगे और पहले जैसे खुले घूमने लगेंगे, तो मैं कहूँगा कि आप मेरे जैसे नालायकों के प्रतिनिधि बनने योग्य नहीं हैं। क्यों कि मैं तो ऐसा मनुष्य हूँ जो अपने गाँववालों को भी नहीं सम्हाल सकता।

हमारी हिंसा और असत्य का कटु फल

अपना यह दुःख किस भाषा में मैं प्रकट करूं? मैं तो मानता हूँ कि बापूकी हत्या की जिम्मेवारी हमारे ऊपर है। बापू ने बार बार हमसे कहा कि अपने साधन शुद्ध रखो। हम उस बात में ऊपर ऊपर से तो 'हाँ' भरते गये। लेकिन उसके अनुसार हमने अपना जीवन नहीं बदला। ऐन मौके पर तो हमने असत्य और हिंसा से ही काम लिया। उसीका फल भगवान् हमें चखा रहा है, ऐसा मैं मानता हूँ।

जवाहरलालजी की सरल दलील

पंडितजी ने अपने भाषण में एक बात बहुत ही सहजता से कही। उन्होंने कहा कि जब बापू हमसे यह कहते थे कि अंग्रेजों के साथ अहिंसा से ही लड़ो, तब उनकी बात से मैं सहमत हो गया।

क्यों कि मैंने सोचा कि यदि अंग्रेजों से लड़ने के निमित्त हिंसा को हिंदुस्तान में स्थान मिला, तो उनके चले जाने पर वह हिंसा सारे हिंदुस्तान को खा जायगी। कितनी सरल दलील है यह।

लेकिन मैं देखता हूँ कि हमने इस चीज को अभी गहराई से नहीं सोचा है। क्या अहिंसा हमेशा का ही नियम है, क्या ऐसा मौका नहीं हो सकता जब कि हिंसा का उपयोग करना पड़े, ऐसी भी शंका हमें हुआ करती है। आज ही हमारे एक भाई ने सदर साहब को एक पत्र लिखा, जिसमें कुछ कुछ प्रसंगों पर हिंसा का सहारा लेने की सहूलियत रहनी चाहिये, ऐसी सूचना है।

अहिंसा में अपवाद की माँग न करें

इस सूचना पर टीका तो क्या करूं? लेकिन इससे दीखता है कि अभी भी हमारा दिमाग साफ नहीं है। अहिंसा के पालन में रियायत की माग क्यों होती है? अहिंसा की शर्त कड़ी क्यों लगती है? मान लो कि हमें इमारत बनानी है। सायन्स कहता है कि दीवार समकोन में, याने ९०° अंश में, ही खड़ी करनी होगी। तब क्या उसकी शर्त हम कड़ी मानेंगे? जब हम जानते हैं कि इमारत ९०° अंश में खड़ी नहीं करते हैं तो गिर जाती है, तो हम ऐसा थोड़े ही कहते हैं कि वह ८५° या ८०° अंश में क्यों न खड़ी की जाय? ९०° अंश का आग्रह रखते हुए भी बनाने में कुछ कसर रह गयी, तो वह दूसरी बात है। लेकिन छूट या अपवाद की गुंजाइश पहले से ही हम क्यों रखें? यह गुंजाइश आगे चलकर बढ़ जाती है और हमें पूरा ही खा जाती है। मान लो कि किसी ने खेत के इर्दगिर्द बाड़ लगा दी और बीच में कुछ जगह वैसी ही छोड़ दी, तो क्या होगा। भैंसें वहाँसे घुसकर सारा खेत खा जायंगी। इसी तरह इस बात को सोचो। अहिंसा का आग्रह रखने के बाद, उसका अमल करने की पूरी कोशिश करते हुए कभी भूल हो सकती है। लेकिन पहले से ही उसके लिये गुंजाइश नहीं रखनी चाहिये।

बुरे साधनों का नतीजा

अब प्रस्ताव के आखिरी हिस्से के बारे में। उसमें शरणार्थियों की सेवा की बात है। उस सेवा की आज अत्यन्त जरूरत है, और देश के सामने वह एक बड़ी भारी समस्या हुई है, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन मुख्य बात पहली ही है। सत्य-अहिंसा से ही काम लेंगे, ऐसी हमें प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। ऐसा मनुष्य अपनी जगह रहकर भी जो काम करेगा, उससे वह हिंदुस्तान को बचायेगा। कृपलानीजीने अपने सुंदर भाषण में एक बहुत महत्त्व की बात कही। उन्होंने कहा कि सेवा के काम जब किसी इन्किलाबी सिद्धांतों से जोड़ दिये जाते हैं, तब उनसे ताकत पैदा होती है। हमारे साधन सच्चे ही होने चाहिये, यह एक क्रांतिकारी सिद्धांत है। उसके साथ शरणार्थियों की सेवा को इस प्रस्ताव में जोड़ दिया है। बुरे साधनों का नतीजा ही ये शरणार्थी हैं। साधनशुद्धि का संकल्प करके अगर हम उनकी सेवा में लग जाते हैं तो हमारे जीवन में क्रांति हो जायगी। और हमारे जीवन में जब क्रांति होगी तो अंत में सारी दुनिया में वह होगी।

काम करते करते तालीम

आज दोपहर की बैठक में नये कार्यकर्ता तैयार करने की कुछ व्यवस्था होनी चाहिये, इस विषय पर चर्चा चल रही थी। कार्यकर्ताओं के अभाव में काम रुक रहा है, ऐसा जाजू साहब कहते थे। हमारे पूर्वजों ने तो बार बार इस बात को समझाया है कि आप किसी भी काम को करते रहिये, उसके साथ स्वाध्याय और प्रवचन होना ही चाहिये। मैं तो इस विचार का प्रतिदिन अमल करता आया हूँ। लेकिन सारे हिंदुस्तान की दृष्टि से देखा जाय तो यह आक्षेप सही है कि हमने इस ओर ध्यान नहीं दिया। इसलिये नये कार्यकर्ता तैयार करने के लिये शिक्षण की कोई व्यवस्था होनी चाहिये। उसके लिये लायक आदमी चाहिये और अपना चालू काम छोड़कर ही उनको इस काम में लग जाना चाहिये, ऐसी हालत थी। क्यों कि लायक मनुष्य बेकार नहीं होते, और बेकार मनुष्य लायक नहीं होते। तब यह समस्या कैसे हल हो? एक एक को पूछा जा रहा था। अपना अपना काम छोड़ना हर एक को मुश्किल हो रहा था। आखिर हरिभाऊजी (उपाध्याय) से पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि अगर मैं अपना चालू काम छोड सकूँ, तो शिक्षण का काम मैं अच्छी तरह कर सकूँगा। उसके लिये जरूरी व्यवस्था भी हमारे पास मौजूद है। लेकिन चालू काम छोड़ना ही है तो शरणार्थियों की सेवा में लग जाने की इच्छा होगी। यह सुनते ही बिजली जैसा एक विचार मुझे सूझ गया। मैंने कहा, ठीक है। शरणार्थियों के काम के लिये अगर अपना स्थान छोड़ने की हमारी तैयारी है, तो वहीं हमारा विद्यालय क्यों न हो? हमारे लोग शरणार्थियों में जायेंगे तो उनके साथ हम ८–१० विद्यार्थी देंगे। वे काम में मदद देंगे और साथ साथ तालीम भी पायेंगे। 'काम करते करते तालीम पाना' यही तो हमारी शिक्षण-दृष्टि है। इसलिये शरणार्थियों के काम में लग जाने की अगर तैयारी होती है, तो कार्यकर्ताओं को शिक्षण देने का प्रश्न अच्छी तरह हल हो सकता है। लेकिन इस काम में पड़ने की वृत्ति क्षणिक उत्साह से नहीं होनी चाहिये। धृतियुक्त उत्साह चाहिये।

जो लोग इस काम में लगेंगे वे शिक्षक की योग्यता रखते हों तो उस हैसियत से आयें, जो वैसी योग्यता न रखते हों, वे अपने को विद्यार्थी समझ कर आवें। उनको काम करते करते उत्तम शिक्षा मिलेगी। शरणार्थियों की सेवा का काम समाप्त होने पर फिर अपने अपने प्रांतों में ये लोग उत्तम विद्यालय चला सकेंगे।

इसलिए क्षणिक उत्साह से नहीं, लेकिन पूरा सोचकर और साधनों के बारे में दृढ़ निष्ठा बनाकर, हम इस काम में लग जायँ, तो देश का और दुनिया का बहुत भला होगा। देश पर आई हुई महान् आपत्ति भी संपत्ति का रूप लेगी। जो भाई-बहन इस काम में सहयोग देना चाहते हैं वे अपना नाम दे दें। अभी दे सकते हैं, बाद भी दे सकते हैं।

सुन्दरलालजी—मैं भी एक दृष्टि से अपने को इस सवाल के बारे में बोलने का हकदार मानता हूँ। मैंने भी थोड़ा-बहुत देखा है। मुझे संकोच था कि मैं बोलूं या न बोलूं? क्योंकि अपने को

सत्य और अहिंसा का अधिकारी नहीं पाता। लेकिन अपने आपको रोक नहीं सकता। जब कोई चीज दिलमें सुलग उठती है तो रहा नहीं जाता। कल की बात। सभापति के रोकनेपर भी फुदक फुदक कर यहाँ आया और बोलकर ही रहा। कसम लेकर कहता हूँ, उस आवेश के लिये मैं लज्जित हूँ। सभापति की और आपकी क्षमा माँगता हूँ।

ये चलती-फिरती लाशें

शरणार्थियों के बारे में जो कुछ कहा गया, उससे मैं सहमत हूँ। यह काम ही ऐसा है कि उसके लिये किसी की ताकत पूरी नहीं पड़ रही है। सुचेता बहन, मृदुला बहन जैसी जाँबाज स्त्रियाँ अपनी पूरी ताकत लगाकर काम कर रही हैं। मैंने मुसलमानों और हिन्दुओं के बड़े से बड़े कैंप देखे। उनकी शारीरिक, आर्थिक और मानसिक दुर्दशा देखकर दिल बैठ गया। सहानुभूति उमड़ आयी। मैं आप से क्या कहूँ? ये आदमी नहीं, ये चलती-फिरती लाशें हैं।

बढ़े हुए दरख्तों की अदलबदल

आबादी की अदलबदल एक ऐसा मसला है जिसे हम नहीं हल कर सकते। सरकार भी नहीं हल कर सकती। दुनिया की किसी सरकारने इतने बड़े पैमानेपर ऐसा प्रयोग नहीं किया है। एक जगह से उठाकर दूसरी जगह बसाना कोई हँसीखेल नहीं है। इस की तो पूरे बढ़े हुए दरख्तों से ही उपमा दी जा सकती है। जिन की जड़ें जमीन के अंदर गहरी पैठ गयी हों उन दरख्तों को एक जमीन से उखाड़कर पाँच सौ मील दूर ले जाकर फिर से लगाना बड़ा विकट काम है। नई जमीन में उन की जड़ें जमने नहीं पातीं।

हमारा खास काम

असली काम, और ज्यादा जरूरी काम, दूसरी तरह का है। शरणार्थियों को बसाने और उनका कष्टनिवारण करने का काम तो हम केवल अपना कर्तव्य पालन करने के लिये ही कर सकते हैं। जितना कर सकें उतने से ही तसल्ली कर लेनी चाहिये। वह हमारे बूते से बाहर का है। लेकिन यह दूसरा काम हमारा खास काम है। हम पूरबी पंजाब में और युक्तप्रांत में उन शहरों और मंडियों में जायें जहाँ आदमियोंने आदमियों का गला काटा। वहाँ द्वेषकी अग्नि कुछ धीमी पड़ी है। मगर बुझी नहीं है। किसी वक्त भी हवाके जरासे झकोरे से फिर सुलग सकती है। हम वहाँ जाकर प्रेम के साथ लोगों को समझा-बुझाकर इस आग को ठंढ़ा करें।

सत्य और अहिंसा कोरे उसूल नहीं हैं। वे हमारे जिन्दगी के सहारे हैं। जहर सिर्फ अेक तरह का नहीं है। वहाँ हिंदु-मुसलमानों के बीच द्वेष का जहर है। यहाँ ब्राह्मण-अब्राह्मण के बीच है। संप्रदाय-संप्रदाय, जाति-जाति और कौम-कौम के बीच जहर है। इस जहर का मुकाबला आपके सिवा और कौन करे? आप बापू के रास्ते पर चलनेवाले हैं। केवल वेही कदम रखें जो

पूरी तरह सांप्रदायिकता के जहर से अपने को मुक्त समझते हैं। अपना-अपना हृदय टटोलें। पाक हों तभी कदम रखने की हिमायत करें। ऐसे आदमी सब तरफ फैल जायेंगे तो इस देश में फिर अमन की आबहवा पैदा होगी। तमाम अलग अलग मजहबों के लोग निडर होकर हिल-मिलकर रह सकेंगे।

विनोबा को पाया

विनोबाने इस सम्मेलन में जो कहा वह पते की बात थी। मैं उनका एकेक शब्द पूरे ध्यान से सुन रहा था—सुन ही नहीं रहा था, अमृत की तरह पी रहा था। मेरा जी नहीं भरता था। इस सम्मेलन में आकर मैंने विनोबा को पाया।

सभापतिजी, मैं सुचेता बहन के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

(प्रस्ताव मंजूर)

प्रस्ताव नं. ६

श्रीमन्नारायण अग्रवाल——(प्रस्ताव पढ़कर सुनाया। परिशिष्ट देखिये)

युवकों का जोश कहां जाय ?

शरणार्थियों के प्रश्न का मुख्य कारण जातीयता का जहर है। अगर इस देश में जातीयता का विष न होता तो द्विराष्ट्रवाद न आता; और न देश के टुकड़े ही होते। पाकिस्तानी इलाकों में मुस्लिम नैशनल गार्ड्सने बराबर इसके बीज बोये। हमारे यहाँ आर. एस. एस. ने ज्यादा होशियारी से काम लिया। इस तरह से जातीयता का प्रचार किया कि हमको मालूम भी न पड़े। विद्यार्थियों और युवक-युवतियों के दिलपर उनकी गहरी पकड़ है। आर. एस. एस. को गैरकानूनी करार देने से काम नहीं चलेगा। उनका संगठन भलेही खत्म हो जाय, लेकिन जातीयता का जहर जमीन के अन्दर घुस जायेगा। आर. एस. एस. को तुड़वाकर आप चुप नहीं बैठ सकते। विद्यार्थियों और युवकों से आप यह नहीं कह सकते कि वे बेकार बैठे रहें। उनका सारा जोश और उमंगें कहां जायँ ?

शान्तिसेना एकमात्र उपाय

इसके लिये बापूजीने शांतिसेना की योजना बनायी थी। डेलांग के सम्मेलन में उन्होंने उस योजना को रखा था। वह बात उस वक्त रह गयी। लेकिन आज यह बुनियादी काम है। नवयुवकों के उत्साह और उनकी शक्तिको संगठित करने की आवश्यकता है, जिस से वे बहकने न पायँ। शांति-सेना में उन्हें अपनी वीरता और सेवा-भाव दिखाने का पूरा पूरा मौका मिलेगा। सर्वोदयसमाज की समिति शांतिसेना की योजना बनाये और आप लोग अपने अपने प्रान्तों में इस काम को लगन से उठायँ।

आचार्य जुगलकिशोरजी--मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ। इसके बारे में श्रीमनजीने जो कहा है उससे अधिक कहने की जरूरत नहीं है। मैं सिर्फ ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि इस प्रस्ताव में जो बातें लिखी हैं उन्हें पूरा करने की शक्ति वह हमें दे।

(प्रस्ताव मंजूर। इसके बाद सम्मेलन-मंत्री धोत्रेजीने आगे का कार्यक्रम बतलाया।)

धन्यवाद

दादा धर्माधिकारी—स्वागतसमिति की ओरसे धन्यवाद देने का काम मुझे सौंपा गया है। सब से पहले हमें अपने अध्यक्ष का निहोरा मानना है। हम उनको धन्यवाद क्या दें? हम उन्हीं के हैं। उन से हमें उत्साह और प्रेरणा मिलती है। इतने कमजोर शरीर में कितनी जबर्दस्त आत्मा रह सकती है, इसका वे उदाहरण हैं। हमारे लिये राजेन्द्रबाबू समन्वय की मूर्ति हैं। सरकार अपनी विपत्ति में उन्हीं की शरण लेती है। अन्न की समस्या आज सब से कठिन समस्या है। राजेन्द्रबाबू को मंत्री बनाकर उन्हें वही विभाग सौंपा गया। कांग्रेस में जब कठिन समय आया तब अध्यक्ष के आसन पर उन्हीं को बैठाया गया। यह राजेन्द्रबाबू की अद्वितीय विशेषता है। विधानपरिषद के अध्यक्ष के नाते हमने उनका एक रूप और देखा। सभ्यता और अनुशासन के सामंजस्य का ऐसा आदर्श और किसीने नहीं उपस्थित किया। हमें अहिंसा में अनुशासन दाखिल करना है। इसलिये हम उन के मार्गदर्शन में धन्यता का अनुभव करते हैं। हमको सिपाहियत में सज्जनता मिलानी है। राजेन्द्रबाबू इसकी जीती-जागती मिसाल हैं। एक महान वटवृक्ष के समान उन्होंने हमको आश्रय दिया और हमारी कमजेरियों को निबाह लिया। मैं उन्हें धन्यवाद देने की ढिठाई नहीं करूँगा। आप सब की तरफ से नम्रभाव से उन्हें प्रणाम करता हूँ।

हमारे दूसरे उपकारकर्ता जवाहरलालजी हैं। वे इस देशके एक अद्भूत और अनोखे नेता हैं। सचाई और प्रामाणिकता का अैसा सुन्दर संगम और कहीं देखनेको नहीं मिलता। एक राष्ट्रकी बागडोर सम्हालनेवाले धुरंधर राजनेता और प्रधानमंत्री में इतनी सत्यनिष्ठा और सह्रदयता आप जवाहरलालजी में ही पाइये। वे बाहर-भीतर एक-से हैं। बाह्यांग जितना सुन्दर है, अंतरग उतनाही सुहावना है। उनकी चर्या और भाषण में शोक के साथ उत्साह भी था। अगर विषाद था, तो आशा भी थी। उन्होंने हमें प्रांजलता के साथ साथ आशा और निष्ठाका संदेश दिया। हम कृतज्ञता का अनुभव करते हैं। उनके साथ मौलाना साहब भी तशरीफ़ लाये। उनके सुलझे हुये विचार हमें सुनने को मिले। हम एह-सानमन्द हैं। दूसरे भी महान् और प्रतिष्ठित नेताओंने यहाँ आकर हमें अनुगृहीत किया। उन सबके उपकार मानता हूँ।

यहाँ जो भाषण हुये वे सभी महत्त्वपूर्ण और उद्बोधक थे। लेकिन दादा कृपलानी के भाषण का खास उल्लेख करता हूँ। विनोदवृत्ति जागृत करके बोध दिलाना कोई आसान काम नहीं। बापूने

एक बार लिखा था कि अगर मेरी विनोदवृत्ति जाती रहे, तो मैं आत्महत्या कर लूँगा। जब हम गंभीर होकर मुँह बनाकर बैठ जाते हैं, तब विनोद की आवश्यकता होती है। उससे चित्त ठिकाने आता है। विचार में रुचि पैदा होती है। कृपलानीजी के भाषणोंमें पौष्टिक पक्वानों के साथ जायकेदार व्यंजन भी थे।

स्त्रियों के प्रश्नपर बड़ी दिलचस्प चर्चा हुई। स्त्रियाँ हर समारोह में शोभा और सुन्दरता लाती हैं। लेकिन हमारे सम्मेलन में उन्होंने काफी जोश का भी परिचय दिया। हम उनके आभारी हैं।

जिन्होंने व्यवस्था में हाथ बँटाया उन सबको धन्यवाद देता हूँ। हमारे यहाँ व्यवस्था भी रही, अव्यवस्था भी रही और अतिव्यवस्था भी रही। अव्यवस्था हमारी अपनी विशेषता है। उसका सारा श्रेय हमारा है। अगर वह न होती तो इस सम्मेलन में हमारी अपनी देन कुछ भी न होती। थोड़े-बहुत असन्तोष के बिना जीवन में स्वाद नहीं पैदा होता। हमने आपको असन्तोष और शिकायत का मौका दिया। हम भी तो कुछ धन्यवाद के पात्र हैं।

आप लोग यहाँ आये। आपके स्नेहकी सम्पत्ति हमको मिली। आपके सान्निध्य से एक तरह का नवजीवन हम लोगों को प्राप्त हुआ। आपका एहसान किन शब्दों में मानें? स्नेह के बदले स्नेह ही दिया जाता है। और वह तो हृदय की बात है। इस लिये मैं किसी के भी आभार न मानकर चुप हो जाता हूँ।

सुचेता कृपलानी--मैं अतिथियों की तरफ से स्वागत-समिति को धन्यवाद देने आयी हूँ। महाराष्ट्र आतिथ्यशीलता के लिये और व्यवस्था-कुशलता के लिये प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र के लोग मामूली सामान से बहुत अच्छी रसोई बना लेते हैं, इसका भी हम सब को यहाँ खूब अनुभव हुआ। मैं आतिथ्यकुशल व्यवस्थापकों को भूरि भूरि धन्यवाद देती हूँ।

अतिथियोंसे क्षमा-याचना

किशोरलाल भाई—धन्यवाद के भाषणों के बाद कुछ कहना सभा की परिपाठी के खिलाफ है। लेकिन मैं अपनी इच्छा से और विनोबा की सम्मति से कुछ कहने के लिये उद्यत हुआ हूँ।

गांधी सेवासंघ का एक माज़ी सदस्य गांधी सेवासंघ के दूसरे सदस्यों के साथ सुख-दुख की बातें बोलता है, इस हैसियत से मैं आप से बोलने आया हूँ। यहाँ जो बातें हुईं, हमारे बुजुर्गों और सन्माननीय अतिथियों का जो अपमान हुआ, उस के लिये मैं क्षमा माँगने आया हूँ। अहमदाबाद कांग्रेस की बैठक में बापूजी की कड़ी आलोचना कुछ लोगों ने की। चुपचाप सुनते रहे, लेकिन उन्हें इतनी चोट लगी कि बच्चे की तरह रो पड़े। वह प्रसंग मुझे याद आ रहा है। यहाँ भी कड़ी बातें कही गयीं। जिन्होंने ये बातें कहीं हैं, उन में से कुछ मुझ से बुजुर्ग हैं, सभी मेरे लिये आदरपात्र हैं। लेकिन जिस तरह से उन्हों ने अपने दिलका क्रोध प्रकट किया उस से हमारे पूजनीय अतिथियों का

अपमान हुआ। हमारे दिल के छोटेपन का यह दिखावा था। हमारे लिये यह शर्म की बात हुई। मेरे पास कुछ चिट्ठियाँ आयीं कि आईंदा रचनात्मक कार्यक्रम का जिम्मा विनोबा, कुमारप्पा वगैरह पर है। वहाँ जवाहरलालजी का और सरदार का क्या काम है? इस तरह की चर्चा भी यहाँ हुई। हम बापूजी के साथ भले ही रहे हों। बापूजी हम को जानते थे। लेकिन उन्होंने हम को अपना वारिस नहीं कहा। उन्होंने अपना वारिस जवाहरलाल को कहा। वे कहते थे कि जवाहर सचमुच रत्न है। लेकिन हम अपने को रचनात्मक कार्य के ठेकेदार समझते हैं। हमारा यह घमंड हमको डुबा देगा। आज जवाहरलाल की जगह कौन ले सकता है? वे दूसरे काम में लगे हैं और हम दूसरे काम में लगे हैं। इतने से हम उन से श्रेष्ठ कैसे हो जाते हैं? हमारा क्षेत्र पुण्यमय है और उन का क्या अपवित्र क्षेत्र है? हम अलग तरह का काम करते हैं, इसलिये हमारा क्या पाकिस्तान हो गया? राजेन्द्रबाबू ने जितनी शालीनता दिखलायी उतनी हम लोगों में से कितनों में है? कहाँ उन की शालीनता और कहाँ हमारा मिथ्याभिमान! यह मिथ्याभिमान हमें गिरानेवाला है। मौलाना साहब ने हमें कितनी स्फूर्ति दी? मैं,और अप्पा पटवर्धन राजेन्द्रबाबू के पास बैठते हैं। लेकिन अपने को उन की बराबरी के थोड़े ही समझते है? हम रचनात्मक काम कर रहे हैं इसलिये देश का सारा काम हमारी बदौलत चलता है, ऐसा अभिमान हम रखेंगे, तो हमारा पतन होगा। गुजराती में एक कविता है जिस में कहा गया है कि शकट के नीचे श्वान चलता है, वह समझता है कि गाड़ी मैं ही चला रहा हूँ। उसी तरह हमारे दिल में यह मिथ्याभिमान हो गया है कि रचनात्मक कार्य हमारा ही इजारा है। हम को इस मिथ्याभिमान को दफन करना चाहिये। यहाँ जो अनुचित बातें कही गयीं उन के लिये मुझे खेद है और मैं व्यवस्थापकों की तरफ से महमानों से माफी माँगता हूँ।

उपसंहार

राजेन्द्रबाबू—अब सम्मेलन का काम खत्म होने पर आया है। मुझे पता नहीं कि मुझे सभापति क्यों बनाया गया? लेकिन मुझे आज्ञा माननी पड़ी। और इसलिये सभापति बन गया हूँ। एक बार जो सभापति बन जाता है, तो उसके हाथ में अधिकार आ जाता है। वह जब चाहे बोल सकता है, जितना चाहे बोल सकता है, दूसरों को बोलने से रोक भी सकता है। लेकिन आप अपने दिलमें डर न रखें कि मैं अपने अधिकार का इस्तेमाल करके आपका ज्यादा वक्त लूँगा। थोड़े से समय में ही अपनी बात खत्म कर दूँगा।

नैतिक ढिलाई को दूर करना

हमने जो प्रस्ताव पास किये हैं उनका काफी महत्त्व है। हम यह सोचकर इकट्ठे हुये थे कि किसी न किसी तरह वातावरण को शुद्ध करने की कोशिश करेंगे। हमलोग रचनात्मक कार्य में लगे हुये हैं। देशभर में आज जो समस्यायें खड़ी हुई हैं, पूरी लगन से, ताकत लगाकर, उनको हल करना भी बहुत बड़ी रचनात्मक प्रवृत्ति है। देश में जो नैतिक ढिलाई आ गयी है, सरकारी और गैर-सरकारी

कार्यकर्ताओं में जो नैतिक भ्रष्टता घर कर रही है, उसको हटाना बहुत बड़ा काम होगा। हमने जो प्रस्ताव किये हैं उनपर अमल करने की जिम्मेवारी हमपर अपने आप आ पड़ती है। गांधीजी के जीवन की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने जो कहा सो किया। जो नहीं किया, उसे कहा भी नहीं। हमने इन प्रस्तावों में जो कुछ कहा है उसे करना चाहिये। और अगर करने की नीयत न हो तो कहना ही नहीं चाहिये था।

आफ़त के मारे और ज्यादतियाँ करनेवालों के दिल सुधारना

आप जानते हैं कि पिछले दो बरसों में गांधीजीने क्या क्या किया ? उनका क्या तरीका था। जिनपर विपत्ति आई उनकी मदद के लिये वे दौड़कर गये। नवाखाली, बिहार और दिल्ली पहुँचे। जिन लोगों पर आफ़त आयी उनके लिये सहानुभूति जतलाना आसान काम है। लेकिन उनके टूटे हुए दिलों को सुधारना, उनमें नई जान डालना, मामूली बात नहीं है। गांधीजीने मुर्दा दिलों में जान फूँकने का काम किया। उनके बारे में तरह तरह की बातें कही गयीं। यह कहा गया कि 'ये नवाखाली में क्यों जा रहे हैं। बिगाड़ने जा रहे हैं।' पूछा गया कि 'बिहार, कलकत्ता और देहली में इनका क्या काम है ? पाकिस्तान की आबोहवा सुधारने के लिये ये वहाँ क्यों नहीं जाते' ? उन्होंने इन बातों का खयाल नहीं किया। किसी के मना करने से उन्होंने न माना। वे जा पहुँचे। हिन्दु और मुसलमान दोनोंपर मुसीबतें पड़ी थीं। दोनोंपर असर पड़ा। जो मुसीबत के मारे थे उनको हिम्मत आयी। जो ज्यादतियाँ करते थे, उनके भी दिलमें फर्क पड़ा। कलकत्ते में जादू का-सा असर हुआ। बिहार के बारे में उन्होंने यह घोषणा की कि अगर मारकाट बंद न हुई, तो मैं अनशन करूंगा। फौरन असर हो गया। सारा झगड़ा रुक गया। बिहार में कुछ दिनोंतक रहे। वहाँ काम शुरू करा दिया। दिल्ली में जो कुछ हुआ वह हाल की बात है। सरकार कोशिश करती थी, उसकी पुलीस भी मदद कर रही थी। लेकिन उजड़ी हुई बस्तियों को बसाने का काम बापू ही कर सके। शरणार्थियों के मामले को इस तरीके से सुलझाना है कि जिनपर आपत्ति पड़ी है उनको भी सम्हालें और जिन्होंने ज्यादतियाँ की हैं उनको भी सम्हालें। ज्यादतियाँ करनेवाले उभाड़े गये थे। वे पागल हो गये थे। हम उनको होश दिला सकते हैं। ऐसा नहीं कि ये बुराइयाँ दूर हो ही नहीं सकतीं। अगर ठीक तरह से काम किया जाय तो जो हिम्मत हार कर बैठे हैं उनको भी आश्वासन मिलेगा और जो ज्यादतियाँ करते हैं उनका भी दिमाग ठिकानेपर आयेगा।

बुलावे की राह न देखें

हम किसी के बुलाने की राह न देखें। यह भी न समझें कि अखबार में कोई सूचना निकलेगी जो काम करना चाहते हैं, वे खुद सुचेताबहन और दूसरे काम करनेवालों को अपने नाम दे दें। यह अपनी अपनी मनोवृत्ति का सवाल है, लगन का सवाल है। काम साल-डेढ़ साल तक चलेगा। इतने अरसेतक काम करनेवालों का संगठन बनाना होगा। रचनात्मक काम करनेवाले

इक्के-दुक्के सभी जगह हैं। मगर वे इकट्ठे होकर इस काम को उठावेंगे तभी कुछ हो सकेगा। प्रस्ताव तो आपने कर लिया लेकिन जाने से पहले अपने दिलों में तै कर लें कि इस मामले में हम कितना और किस तरह का काम कर सकते हैं।

गांधी-स्मारक निधि का उपयोग

गांधी स्मारक कोष की तरफ भी आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। स्मारक कोष की बात अखबारों में छपी है। हर सूबे में कमेटियाँ बन गयी हैं। आप भी अपनी अपनी जगह जाकर इस काम को आगे बढ़ायें। काम कमेटी की मातहत में रहकर करे। इस मामले में कुछ गलत फहमी है। लोग अपने अपने स्थानों में अलग अलग स्मारक बनाने की सोच रहे हैं। सभी को अपने अपने घरों में स्मारक बनाने की इच्छा हो, तो आश्चर्य नहीं है। लेकिन इस तरह से हमारी शक्ति बिखर जायेगी। हम को अपनी शक्ति बटोरनी है। गांधीजी का सब से बड़ा स्मारक तो वे खुद ही हैं। उनको यह देश भूल थोड़े ही सकता है? हमारे लिये वे हिन्दुस्तान की शक्ति के प्रतीक थे। उनमें मानो जनता की सारी शक्ति केन्द्रित हो गयी थी। हम उनके नामसे फायदा उठाकर अपनी फैली हुई शक्ति को इकट्ठा करना चाहते हैं। राष्ट्रनिर्माण के लिये उन्होंने जो रचनात्मक कार्यक्रम हम को बतलाया उसी को बढ़ाने में यह पैसा लगाया जायेगा। गांधीजी के लेख वगैरह एकत्रित करके छापने का काम नवजीवन संस्था करेगी। पैसा जितना आ जावे उतनाही अच्छा है। दस दिन की आमदनी का नियम रखा है। लोगों की देनेकी इच्छा है। लेकिन किस को दें, कैसे दें, यह दिक्कत है। उनको दूर जाकर पैसा न देना पड़े। उनके पास जाकर ले लिया जाय। उनको यह भरोसा दिलाया जाय कि चुनाव, राजनैतिक दलबन्दी और इस तरह के कामों में यह पैसा नहीं लगाया जायगा। लोग चाहें तो इस के लिये खास कानून भी बनाया जा सकता है, जिससे गलत फहमी की गुंजाइश न रहे। दिल्ली, बम्बई या कलकत्ते में ज्यादा पैसा इकट्ठा होगा; लेकिन जहाँ का पैसा वहीं खर्च करने का नियम, उन जगहों के लिए थोड़े ही लागू हो सकता है? जो पैसा आयेगा उसका तीन-चौथाई करीबन उसी जगहपर खर्च किया जायगा। लेकिन बड़े बड़े शहरों से जो पैसा आयेगा उसके लिये पूरी तरह यह नियम लागू करना मुश्किल है।

लोग अपनी अपनी जगह स्मारक बनाना चाहते हैं। कई लोग मूर्तियाँ बनाना चाहते हैं। एक जगह से इटली से मूर्तियाँ मंगाने की इजाजत माँगी गयी। हम ने कहा यह गलत बात है। मूर्तिकार इस काम से नफा उठाने की इच्छा न रखें। बड़ी बड़ी मूर्तियाँ बनवाने में सारा पैसा खर्च हो जायेगा। छोटी मूर्तियाँ बनाने में फायदा नहीं। कुछ लोग हॉल वगैरह बनवाने की बात सोचते हैं। इस में भी दिक्कतें हैं। बड़े बड़े हॉल बनवाने के लिये काफी रुपये चाहिये। छोटी इमारत सार्वजनिक काम के लिये उपयोगी नहीं होगी। तालीमी संघ का स्कूल, रचनात्मक कार्य का कोई

केन्द्र या नई जिन्दगी को बनाने का कोई तरीका स्मारक के रूप में खड़ा किया जा सकता है। नये समाज की रचना की कोई न कोई तजवीज ही गांधीजी का सच्चे अर्थ में स्मारक हो सकती है।

मुझे तैनात क्यों किया गया ?

मुझे डर है कि आप यह न समझें कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं में मैं सब से अच्छा हूँ इसलिये मुझे सभापति बनाया गया। बात ऐसी नहीं है। किसी न किसी को सभापति बनना ही होता है। मेरा तो यह पेशा ही हो गया। इसलिये मुझे तलब कर लेने में आसानी थी। आप मुझ से यह आशा न करें कि सर्वोदयसमाज के संचालन का भार मैं उठाऊँगा। जो काम आप सौंपेंगे उसे करूँगा। सर्वोदयसमाज का हर एक सदस्य अपना स्वतंत्र महत्त्व रखता है। आप यह जगह छोड़ने से पहले अपने दिल में कोई निश्चय कर के जायँ। हम सब अपनी अपनी जगह अगर इन प्रस्तावोंपर अमल करेंगे तो नये समाज के निर्माण में बहुत कुछ मददगार होंगे।

[इस के बाद श्री पुरुषोत्तम गांधी ने 'वैष्णव जन तो' भजन गाया और रामधुन के साथ सम्मेलन का काम समाप्त हुआ।]

[शाम को ६ बजे]

परिशिष्ट १

सम्मेलन के प्रस्ताव

सेवाग्राम में गांधी सेवासंघ की ओर से ता. १३, १४ व १५ मार्च, १९४८ को जो रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन हुआ, उसमें मंजूर हुए प्रस्ताव नीचे दिये जाते हैं:—

प्रस्ताव १

महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि

ता. ३० जनवरी, १९४८ की शाम की नई दिल्लीमें सभी रचनात्मक संघों के प्राण-स्वरूप पू० गांधीजी का देहावसान होने से जो हानि हुई है, उसे शब्दों में व्यक्त करना असम्भव है। जिस व्यक्ति ने उनके प्राण लेने का दुष्कृत्य किया उसने, तथा जो लोग उसके पीछे होंगे उन्होंने, न सिर्फ हमारे देश का बल्कि सारी मानवजाति का, जो द्रोह और नुकसान किया है तथा हिन्दू धर्म और संस्कृति पर जो बड़ा कलंक लगाया है, उसका कोई नाप नहीं निकाला जा सकता। सब विचारशील लोगों के लिये यह सोचने की बात है कि जगत का सब से श्रेष्ठ और पवित्र पुरुष, जो मनुष्यमात्र का मित्र और अपने देश-जनों का पिता था, जो निर्भयता और विश्वास के साथ लोगों के बीच फिरा करता था, ऐसे महात्मा को भी गोली का शिकार बनाने की हद तक तामस बुद्धि का मनुष्य में पैदा होना संकुचित सांप्रदायिक वृत्ति बढ़ानेवाले और मानव-मानव के बीच भेदभाव तथा द्वेष उत्पन्न करनेवाले कुसंस्कारों और बुरी तालीम का परिणाम है।

मानवजाति पर लगे हुए धब्बे को और उससे हुए नुकसान को तथा गांधीजी के परिवार के व्यक्तियों के समान बने हुए हमारे जैसे सब लोगों के दुःख को किसी प्रस्ताव से नहीं मिटाया जा सकता। उसे मिटाने का एकमात्र मार्ग है, विवेक के साथ गांधीजी के सिखाये हुए सिद्धान्तों और आदेशों पर चलने के लिये जनता की मनोवृत्ति तैयार करना, उनके रचनात्मक कामों को लोकप्रिय बनाना, सब देशों, धर्मों और जातियों में मित्रभाव, सहयोग और सहाय्यवृत्ति बढ़ाना, तथा जगत से नरहत्या, अत्याचार, युद्ध, आदि हिंसक साधनों का त्याग कराना।

गांधीजी के लिए आदर और भक्ति रखनेवाले तथा उनके सिद्धांतों के अनुसार राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, आदि क्षेत्रों में काम करनेवाले सब कार्यकर्ताओं से और जनता से इस सम्मेलन का अनुरोध है कि शोक के इन दिनों में हम इसी बात का चिंतन करें, परस्पर विचार-परामर्श करें और संकल्प करें कि आइंदा हम उनके कामों को किस तरह आगे बढ़ा सकेंगे और उनका 'मिशन' पूरा कर सकेंगे।

प्रस्ताव २

सर्वोदयसमाज

गांधीजीके उसूलों को माननेवालों का एक भाईचारा कायम हो, जिसे एक फैले हुए संगठन की शकल दी जाय।

१. नाम—इस संगठन का नाम सर्वोदय-समाज होगा।

२. उद्देश्य (इरादा)—सत्य और अहिंसा पर एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश करना जिसमें जातपाँत न हो, जिसमें किसी को शोषण करने का मौका न मिले और जिसमें समूह और व्यक्ति, दोनों को, पूरा पूरा (सर्वांगीण.) विकास करने का पूरा अवसर मिले।

३. साधन (जरिये)—इस इरादे को पूरा करने के लिए नीचे लिखे साधन (जरिये) काम में लाये जायँ :—

१. सांप्रदायिक एकता (अलग अलग मजहबों को माननेवालों में और जमात-जमात में मेल।)
२. अस्पृश्यता-निवारण (छुआछूत न मानना)
३. जातिभेद-निराकरण (जातपाँत मिटाना)
४. नशाबंदी
५. खादी और दूसरे ग्रामोद्योग (दस्तकारियाँ)
६. गांव-सफाई
७. नई तालीम
८. स्त्रियों के लिये पुरुषों की बराबरी के हक और समाज में स्त्री-पुरुष की बराबरी की प्रतिष्ठा।
९. आरोग्य और स्वच्छता
१०. देश की भाषाओं का विकास
११. प्रांतीय संकीर्णता का निवारण
१२. हिन्दुस्तानी का राष्ट्रभाषा के तौर पर प्रचार
१३. आर्थिक समानता
१४. खेती की तरक्की
१५. मजदूर-संगठन
१६. आदिम जातियों की सेवा
१७. विद्यार्थी-संगठन
१८. कुष्ठ रोगियों की सेवा

१९. संकट-निवारण और दुखियों की सेवा

२०. गो-सेवा

२१. प्राकृतिक चिकित्सा (कुदरती इलाज)

२२. इसी तरह के दूसरे काम

४. सेवक—जो कोई ऊपर लिखे उसूलों तथा साधनों को मानता है और उनके मुताबिक काम करने की कोशिश करता है, वह सेवक इस समाज में शामिल हो सकेगा। वह सर्वोदयसमाज के मंत्री को इत्तिला दे कि उसे समाज के उसूल और साधन मंजूर हैं और अपना नाम और पता भेज दे। ऐसे सेवक का नाम और पता समाज के रजिस्टर में दर्ज किया जायगा। सेवकों का आपस में संपर्क (ताल्लुक) रखने के लिये हर साल एक मुकर्रर जगह पर तीस जनवरी के दिन मेला लगा करे जिसमें सब सेवक शामिल हो सकेंगे।

५. स्वरूप—इस समाज की सूरत सलाह देनेवाली संस्था की होगी, हुकूमत करनेवाली संस्था की नहीं।

६. व्यवस्था—यह सम्मेलन सभापति और श्री किशोरीलालभाई मशरूवाला को यह अधिकार देता है कि वे दोनों मिलकर एक समिति मुकर्रर करें, जो सर्वोदयसमाज का काम चलावे तथा बढ़ावे। समिति के सदस्यों की संख्या वे ही निश्चित करें।

प्रस्ताव ३

सम्मिलित समिति

इस सम्मेलन की सिफारिश है कि मौजूदा रचनात्मक संघ आपस में मेल करने की एक योजना बना लें और एक सम्मिलित समिति या मिलापी कमेटी कायम करें। यह काम जितनी जल्दी हो सके, पूरा किया जाय।

श्री जे. सी. कुमारप्पा से सम्मेलन की प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्ध में उचित कार्रवाई करें।

प्रस्ताव ४

कुमारप्पा की तजवीज़

प्रस्ताव नंबर (३) के अनुसार होनेवाली सम्मिलित समिति से और बापूजी के विचार में भरोसा रखनेवाले सेवकों से इस सम्मेलन की सिफारिश है कि श्री जे. सी. कुमारप्पा की तजवीज़ के मुताबिक रचनात्मक काम चलाने के लिये छोटे छोटे केन्द्र जगह जगह पर कायम करें।

प्रस्ताव ५.

शरणार्थी

रचनात्मक काम करनेवालों का यह सम्मेलन निहायत दुःख के साथ उस मानसिक हवा को देखता है जो देश में फैल गयी है। फ़िरकेवाराना नफ़रत और अपने मकसद को हासिल करने के लिये अच्छे-बुरे साधनों में फरक न करने की मनोवृत्ति आग की तरह फैल रही है और देश का भविष्य उसकी वजह से खतरे में पड़ रहा है। यह संमेलन हर हिंदुस्तानी से पूरे ज़ोर के साथ अपील करता है कि वह इस आग के बुझाने को अपना पहला कौमी फर्ज समझे और अपनी सारी शक्ति इस काम में खपा दे कि इस देश के रहनेवाले फ़िरकेवाराना नफ़रत से मुक्त हो जायँ और निश्चय कर लें कि हर मकसद को पूरा करने के लिये साधनों को खरा और साफ रखना जरूरी है, मानी हर हालत में सत्य और अहिंसा के उसूल को पूरी तरह पाला जावे।

यह सम्मेलन सब रचनात्मक संघोंसे प्रार्थना करता है कि वह अपने सब काम करनेवालों को हिदायत करें कि मुल्क की मौजूदा हालत में वह अपना पहला फ़र्ज ऊपर लिखे जहर को मिटाना और ऊपर के ऊसूलों को फैलाना समझें।

इस सिलसिले में यह जरूरी है कि ज़हांतक बन पड़े, कॉंग्रेस और सरकार के सहयोग से हर रचनात्मक संघ और रचनात्मक काम करनेवाला हिंदुस्तान भर के अंदर सब मजहबों के शरणार्थियों को फिरसे बसाने और उनकी आर्थिक और मानसिक हालत दुरुस्त करने के लिये पूरी मदद करे और कोशिश करे कि हर जगह सब अलग अलग मजहबों के लोग अपनी जान, माल, इज्जत और मजहबों को पूरी तरह सुरक्षित समझते हुए फिरसे अमन-चैन, प्रेम और एकदूसरे के साथ मेल-मिलाप से रह सकें।

प्रस्ताव ६

शान्ति-सेवादल

पू. बापूजी के बलिदान का असली कारण देश में फैली तंग जातीयता है, जिसे दूर किये बिना हम हिंद के माथे परसे कलंक का टीका न मिटा सकेंगे।

इस अहम काम को पूरा करने के लिये यह बहुत जरूरी है कि देश की जनता को, खासकर नौजवानों को, बिना किसी जातीय भेदभाव के सत्य, अहिंसा और सदाचार की बुनियाद पर संगठित किया जाय। यह संगठन अेक "शांति-सेवादल" के रूप में हो, जो देश में कौमी एकता का वातावरण पैदा करे, दंगों से पीड़ितों की सेवा करे, शरणार्थिओं को जरूरी मदद पहुंचाये और शहर में तथा देहातों में भजनमंडलियाँ कायम करे।

परिशिष्ट २

श्री जे. सी. कुमारप्पा की योजना

अ. भा. चरखा संघ, अ. भा. ग्राम उद्योग संघ, हिन्दुस्तानी-तालीमी संघ, हरिजन सेवक संघ और गोसेवा संघ, ये सब हमारी संस्थायें अपने अपने क्षेत्र में काम कर रही हैं। पर एक दूसरे के काम में इनमें सहयोग का अभाव है और अहिंसा और सत्य पर आधारित गाँधी-दर्शन पर भी पूरा ध्यान इन्होंने नहीं दिया है। नतीजा यह हुआ है कि हरेक संघ अपने क्षेत्र में तो विशेषज्ञता हासिल करने का प्रयत्न करता है पर अपनी दूसरी साथी-संस्थाओं के मकसदों का कोई ख्याल नहीं रखता। इस अलगाव की वजह से अपनी ग्रूह के बाहर हमारा असर बहुत कम रहा है और अन्दर भी हम पूरी तरह गाँधीवादी जीवन प्रकट नहीं कर पाये हैं। इन संघों की उत्पत्ति के पीछे जो ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है, वही इस हालत का कारण है। अब मौका आ गया है कि तामीरी काम को फिर से नया साँचे में ढालें।

एक प्रतिस्पर्धा या होड़वाली व्यवस्था में शासनक्षेत्र में सरकार को राह पर रखने का काम 'विरोधी पक्ष' करता है। लेकिन अहिंसा और सचाई पर बने समाज में ऐसे 'विरोधी पक्ष' को कोई स्थान नहीं है। हमारी अवस्था ऐसी होनी चाहिये कि सरकार हमारे काम करने के ढंग और जनसेवा के तरीके की ओर आकर्षित हो और अपनी सरकारी योजनाओं में उनकी यथासंभव नकल करने की कोशिश करे। इसी तरह हम मज़बूत हो सकते हैं और अपना कार्यक्रम अच्छी तरह प्रदर्शित कर के सरकारी विभागों के सामने अनुकरणीय उदाहरण पेश कर सकते हैं। इसलिये अब जरूरी हो गया है कि पिछले रिवाजी काम करने के ढंग को छोड़ कर हम फिर से व्ययस्थित हों। इस ध्येय को हासिल करने के तरीके पर गांधीजी ने अपने कांग्रेस के विधान के मसविदे में रोशनी डाली है। उन्होंने सुझाया है कि कांग्रेस, प्रचारकार्य और पार्लमेंट्री कामों के अपने रूप में अपने वक्त से ज्यादा रह चुकी है और अब उसे "राजनैतिक संस्थाओं और फिरकेवाराना पार्टियों के झगड़े फिसादों से दूर रहना चाहिये और आर्थिक आजादी के लिये काम करना चाहिये"। वे चाहते हैं कि कांग्रेस अपने आपको एक तामीरी काम करने वाली जमात—लोकसेवक संघ—में तबदील करले और मौजूदा विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं को अपने में मिला कर उनकी सेवाओं से काम ले। अगर कांग्रेस खुद इस कार्यपद्धति को अपनाती है, तब तो हमें आगे आने की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। पर अगर वह ऐसा नहीं करती, तो हमें अपनी मौजूदा जमातों को तोड़कर लोकसेवक संघ के रूप में पुनस्संगठित होना पड़ेगा। यह संघ एक ऐसी जमात होगा, जो तामीरी कामों के सब पहलुओं पर अमल करेगी और प्रत्यक्षरूप में गाँधीवादी जीवनको प्रदर्शित करेगी।

कुछ साल हुए व्यवस्था में हेरफेर करने की एक कोशिश की गई थी और समग्र-ग्राम-सेवा संघ बनाया गया था। लेकिन क्योंकि उसमें कोई जीवित एकता नहीं थी, इसलिये यह कोशिश बेकार साबित हुई। हमें बिल्कुल नये सिरेसे पुनर्रचना की आवश्यकता है, जिसमें की कार्यपद्धति की रूपरेखा इस तख्ते में दी है:—

लोकसेवक संघ (कार्यकर्ता, नियुक्ति, व्यवस्था करना और प्रबंध, हिसाब-किताब रखना)
स्वास्थ्य
भोजन
बालक और साधारण देखरेख
सफाई और हाइजीन
तालीम
हिंदुस्तानी तालीमी संघ
हिंदुस्तानी प्रचार सभा
आर्थिक
खेती
रोज़ी के रूपमें
स्वावलंबी
सब्जी
फल
ग्राम उद्योग
खाद्य उद्योग
प्राथमिक आवश्यकतायें चरखा संघ
बहुविषयक समिति
राजनैतिक
पंचायत
प्रांतीय और केन्द्रीय सरकार
कुंजी के धन्धों का नियंत्रण
सार्वजनिक तथा राष्ट्रके फायदे के कामों का नियंत्रण
प्रचार
सामाजिक
कौमी एकता
हरिजन सेवक संघ
किसान-मजदूर और देहाती काम करनेवाले
युवक
स्त्रियोंके प्रश्न
पशुसेवा
गोसेवा संघ
प्रकाशन
नवजीवन ट्रस्ट
' लोकसेवक
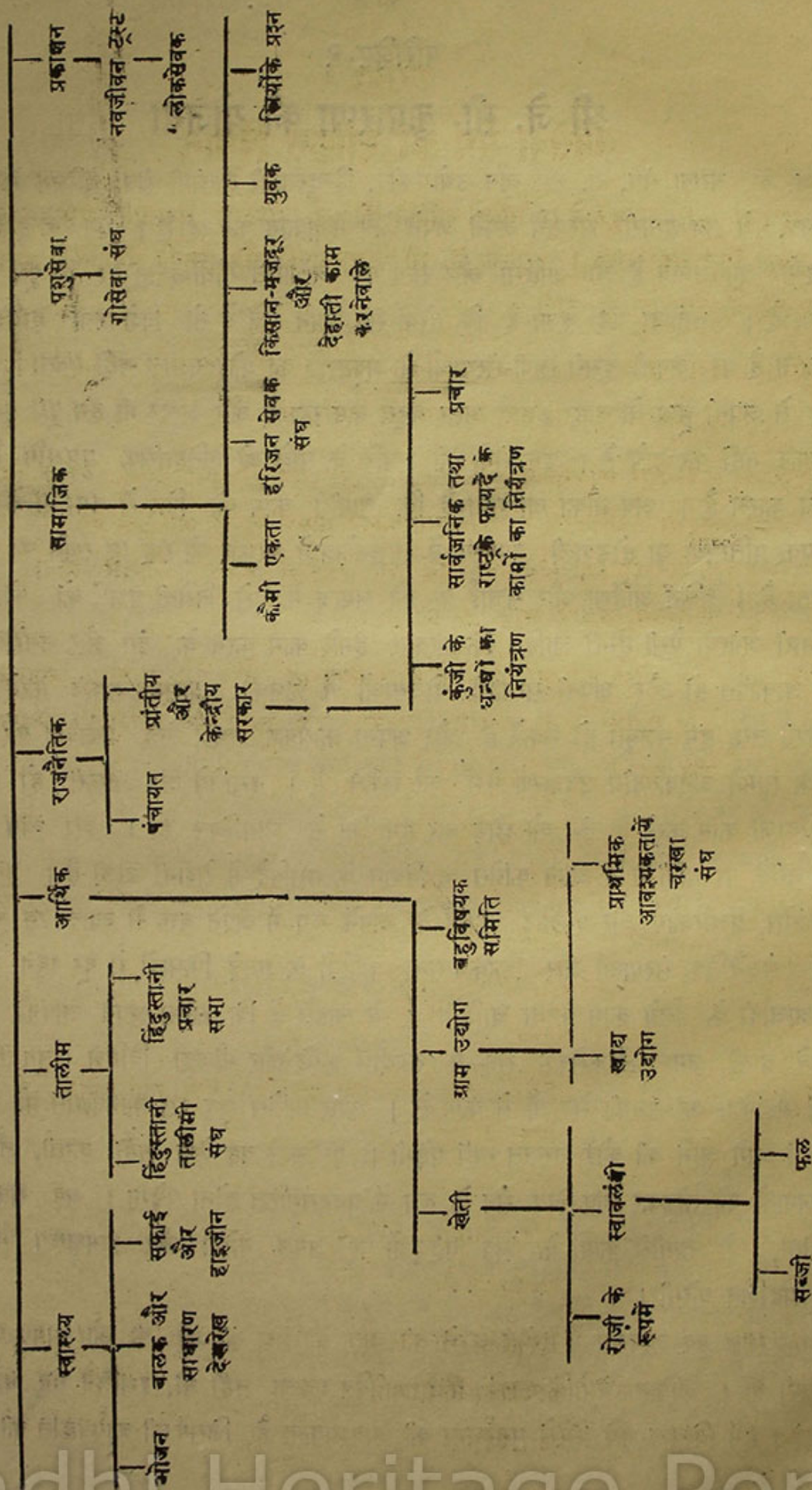
परिशिष्ट ३

सर्वसेवा संघ का स्वीकृत विधान

सूचना—श्री जाजूजीने सम्मिलित समिति की जो योजना सेवाग्राम सम्मेलन में रक्खी थी, उसकी नकल मिल नहीं सकी। इसलिए जे. सी. कुमारप्पाकी और उनकी सहमति से बनायी गयी सर्व-सेवा संघ की योजना यहां दी जाती है:—

१. नाम : इस संघ का नाम "अखिल भारत सर्वसेवा संघ" होगा। संघ का कार्यालय वर्धा में, या समय-समय पर संघ निश्चय करे वहाँ, रहेगा।

२. उद्देश्य : सत्य और अहिंसा की बुनियाद पर असा समाज कायम करना, जिसमें किसी का शोषण न हो और उस दृष्टिसे नागरिकोंको ग्रामजीवन के अभिमुख बनाना और ग्रामजीवन के सब अंगोंका विधायक कार्य द्वारा विकास करना, जिससे ग्रामीणों का दारिद्य, अनारोग्य, अज्ञान आदि दूर हो।

३. कार्य : इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये नीचे लिखे हुए, तथा ऐसे ही अन्य, विधायक कार्य करना, केन्द्र कायम करना, शाखादि खोलना, तथा उसके लिये आवश्यक धनसंग्रह करना और खर्च करना।

१. साम्प्रदायिक एकता
२. जातिभेद-निराकरण
३. खादी व अन्य ग्रामोद्योग
४. नई तालीम
५. गोसेवा
६. स्त्रियोंके लिये पुरुषों की बराबरी के हक और समाज में स्त्री-पुरुष की समान प्रतिष्ठा
७. आर्थिक समानता
८. आदिम जातियों की सेवा
९. विद्यार्थी-संगठन
१०. प्राकृतिक चिकित्सा
११. अस्पृश्यता-निवारण
१२. नशा-बंदी
१३. ग्राम-सफाई

१४. खेती की तरक्की

१५. आरोग्य और स्वास्थ्य

१६. देश की भाषाओं का विकास

१७. हिन्दुस्तानी का राष्ट्रभाषा के तौर पर प्रचार

१८. मजदूरों की उन्नति

१९. कुष्ठ रोगियोंकी सेवा

२०. संकट-निवारण और दुखियों की सेवा

२१. इस तरह के दूसरे काम

४. संघ के सभासद : जिन्हें ऊपरकी कलम २ व ३ में बताये गये संघ के उद्देश्य व कार्य मान्य हों और जो संबंधित होनेवाले संघों द्वारा नामजद किये गये हों, या जो सर्व-संघ द्वारा स्वीकृत (coopted) किये गये हों, वे संघ के सभासद होंगे। उनके लिये लिये निम्न नियमों का पालन लाज़मी होगा :—

[१] खुद के या घर में कते सूत की या प्रमाणित खादी पहनें.

[२] नियमितरूप से सूत कातें.

[३] महीनेमें कमसे-कम एक रोज पाखाना-सफ़ाई या ग्राम-सफ़ाई का कुछ काम करें.

५. सर्वसेवा संघ—ऐसे सभासदों की समिति का नाम सर्वसेवा संघ होगा, और वही संघ के कार्य का संचालन करेगी और सब विषयों में अंतिम निर्णय करने का अधिकार उसको होगा। (आगे इसे छोटे रूपसे सर्वसंघ कहा है।)

(क) सर्वसंघ के सभासदों की संख्या ग्यारह से कम या इक्कावन से अधिक नहीं होगी।

(ख) सर्वसंघ के पदाधिकारियों में एक खजांची और एक या अधिक मंत्रियों का होना आवश्यक होगा। इनके अलावा, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सहायक मन्त्री, विभाग-मन्त्री, एक या अनेक, आवश्यकतानुसार बनाये जा सकेंगे।

(ग) पदाधिकारियों की कालमर्यादा तीन वर्ष की होगी।

(घ) यदि कायमी अध्यक्ष न बनाया हो, तो सर्वसंघ की हर एक बैठक में उपस्थित सभासद उस बैठक के लिये सभापति चुन लिया करेंगे।

(च) उद्देश्य के विरुद्ध न हो, ऐसे उपनियम बनाने का अधिकार सर्वसंघ को होगा।

(छ) हर साल सर्वसंघ के कुल सदस्यों में से अेक-पंचमांश सदस्य निवृत्त होंगे। निवृत्त सभासद फिर से चुने जा सकेंगे। संबंधित किसी संघ के नामजद सभासद के निवृत्त होने पर वह

संघ फिर से नामजद करेगा और सर्वसंघ द्वारा स्वीकृत सभासद के निवृत्त होने पर सर्व-संघ स्वीकृत करेगा। निवृत्त होने के नियम सर्वसंघ बनावेगा।

(ज) सर्वसंघ का कोई भी सभासद या ट्रस्टी लगातार तीन सभाओं में बिना इजाजत के अनु-पस्थित रहेगा तो उसका स्थान खाली हुआ समझा जायगा।

६. **एकीकरण**--(क) सर्वसेवा संघ सलाहकार मंडल न रहकर वह एक कार्यकारी संघ होगा, जो संबंधित संघों की कार्य-स्वतंत्रता को अबाधित रखते हुए जनता में समग्र-दृष्टि से सीधे केन्द्र खोलेगा और चलावेगा, सब संघोंका समन्वय करेगा व सब को मार्गदर्शन देगा।

(ख) सर्वसंघ के उद्देश्य से जो सहमत हो और ऊपर के विधायक कार्यों में से एक या अनेक कार्य करती हो ऐसी कोई भी अखिल भारतीय स्वरूप की संस्था सर्वसंघ से संबंधित होना चाहेगी, तो सर्वसंघ को अधिकार होगा कि वह उसे संबंधित कर ले।

(ग) संबंधित संस्था अपने कार्यक्षेत्र में कार्य करने के लिये स्वतंत्र रहेगी। उसे साधारण नीति के बारे में सर्वसंघ का मार्गदर्शन मानना होगा; और सब संस्थाओं के समन्वय की नीति का पालन करना होगा।

(घ) संबंधित संस्था का एक प्रातिनिधि उस संस्था द्वारा नामजद किया हुआ सर्वसंघ का सभासद रहेगा, बशर्ते कि सभासदों की संख्या मर्यादा से अधिक न बढ़े।

७. **संस्थापक, संस्था व सभासद**—महात्मा गांधीजी के बताये हुवे मार्गोंपर काम करनेवाली नीचे की दस संस्थाएँ, उन्हें एक-दूसरे के उद्देश्य और कार्य मान्य होने के कारण, एकत्र होकर यह सर्वसेवा संघ बनाती हैं और इस से संबंधित होती हैं।

(१) अखिल भारत चरखा संघ, सेवाग्राम, वर्धा.

(२) अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ, मगनवाड़ी, वर्धा.

(३) गोसेवा संघ, गोपुरी, वर्धा.

(४) हिंदुस्तानी तालीमी संघ सेवाग्राम, वर्धा.

(५) हिंदुस्तानी प्रचार सभा, काकावाड़ी, वर्धा.

(६) नवजीवन कार्यालय, कालुपूर, अहमदाबाद

(७) हरिजनसेवक संघ, किंगजवे, दिल्ली.

(८) पश्चिम भारत आदिवासीकार्यकर्ता संघ, दाहोद, गुजरात,

(९) हिंदुस्तानी मजदूर संघ, अहमदाबाद.

(१०) अखिल भारत प्राकृतिक चिकित्सा निधि, तालीवाड़ा रोड, पूना

संघों द्वारा नामजद सभासद

(१) श्री. धीरेन्द्र मुजुमदार.
(२) ,, जे. सी. कुमारप्पा.
(३) ,, राधाकृष्ण बजाज.
(४) ,, आर्यनायकम्.
(५) ,, काका कालेलकर.
(६) ,, जीवणजी देसाई.
(७) ,, ठक्कर बापा.
(८) ,, श्रीकान्त भाई.
(९) ,, गुलझारीलाल नन्दा.
(१०) ,, डॉ. दीनशा मेहता

स्वीकृत सभासद

(११) श्री. आचार्य कृपलानी, ६ जंतरमंतर रोड, नई दिल्ली.
(१२) ,, कृष्णदास गांधी, सेवाग्राम, वर्धा.
(१२) ,, एन. रामस्वामी, तामिलनाड चरखा संघ, तिरुपुर.
(१३) ,, कैथान.
(१५) ,, वल्लभ स्वामी, नालवाडी, वर्धा.
(१६) ,, ...
(१७) ,, ...

८. **ट्रस्टी**—(**क**) सर्वसंघ की स्थावर जायदाद ट्रस्टियों के नाम पर रहेगी। और वह या उसका कोई हिस्सा बेचना या ठेके से देना आदि स्वत्व-निवृत्ति करने के विषय में सर्वसंघ तय करे उसके अनुसार कानूनी दस्तावेज कर देने का अधिकार ट्रस्टियों को रहेगा।

(**ख**) ट्रस्टियों की संख्या दो से तीन रहेगी। उन की नियुक्ति सर्वसंघ अपने सभासदों में से करेगा। वे कायमी होंगे। निवृत्ति-क्रम से निवृत्त नहीं होंगे।

९. **निर्णय**—(**क**) साधारण तौर पर सर्वसंघ के नि बिना मत-विभाजन के ही किये जाने की कोशिश होनी चाहिये। लेकिन मत लेने की जरूरत पड़े तो उप सदस्यों के दो-तिहाई मत से प्रस्ताव पास समझा जायगा।

१०. **अलहदगी**—सर्वसंघ को अधिकार होगा कि अपने तीन-चौथाई बहुमत से सर्वसंघ के सदस्य या ट्रस्टी को, बिना कारण बताये, अलग कर दे। यदि वह सदस्य किसी संघ द्वारा नामजद हो, तो उस संघ को उसकी जगह दूसरा भेजने को कहा जाय।

११. **सम्पत्ति**--सर्वसंघ का और सर्वसंघ की सारी संस्थाओं का सब प्रकार का प्रबंध सर्वसंघ के आधीन रहेगा। स्थावर-जंगम जायजाद भी सर्व-संघ के आधीन व मालिकी की रहेगी। परंतु सर्वसंघ के किसी सदस्य या व्यक्ति का व्यक्तिगत अधिकार उस पर नहीं होगा। अगर किसी कारण-वश सर्वसंघ का काम बंद हो जाय, या करना पड़े, तो सर्वसंघ को अधिकार होगा कि वह संघ की बची हुई सम्पत्ति सर्वसंघ के उद्देश्य में खुद लगावे। या सर्वसंघ के जैसा उद्देश्य रखनेवाली किसी संस्था या संस्थाओं को सौंप दे।

१२. **विधान में परिवर्तन**—विधान में अगर कोई परिवर्तन करना हो, तो उसकी पूर्व-सूचना दे कर बुलाई गयी सर्वसंघ की सभा में कुल सदस्यों की तीन-चौथाई बहुमति से पास होना आवश्यक होगा। अनुपस्थित सभासद अपना मत लिखितरूप में दे सकेंगे।

उपनियम

१. **सभा**—सर्व संघ की सभा जिस समय बुलानेकी आवश्यकता होगी उस समय मंत्री बुला सकेगा। या संघके एक-तिहाई सभासदोंकी माँग आनेपर बुलानी होगी।

२. **कोरम**—सभासदोंकी संख्या का एक-चौथाई। पर कमसे कम चार सभासदोंकी उपस्थिति आवश्यक होगी।

३. **कार्यवाही**—मंत्री सब सभाओंकी कार्यवाही उपस्थित सदस्यों के नाम सहित बराबर रखे। वह कार्यवाही विवरण-बही में दर्ज होने पर जिस सभामें मंजूर होगी उसके सभापति की उस पर सही रहे।

४. **हिसाबकिताब**--मंत्री व्यवस्थितरूप से सर्वसंघ के हिसाब और बहीखाता रखेगा। हर साल उसकी जाँच करवाके जमाखर्च का तख़्ता तैयार किया जावेगा। और वह सर्वसंघ की बैठक में स्वीकृति के लिये पेश किया जायगा।

५. **स्वीकृत सभासद**—सर्वसंघ के साधारण सभासदों में संबंधित संघों द्वारा भेजे हुये नामजद सभासदों की संख्या से सर्वसंघ द्वारा स्वीकृत सभासदोंकी संख्या अधिक नहीं रहेगी। आम-तौरसे स्वीकृत सभासदोंकी संख्या कमसे कम रखनेकी नीति होगी।

६. **उत्तरदायित्व**--सर्वसंघ के द्वारा अधिकृत व्यक्ति के लिखित अधिकारपत्र बिना कोई भी व्यक्ति सर्वसंघ के नामपर कोई लेनदेन या अन्य व्यवहार तो सर्वसंघ उसका जिम्मेवार नहीं होगा।

७. अदालती काम—सर्वसंघ के सारे काम काज मंत्री के नामसे होंगे। अदालती काम भी मंत्री के नाम से होंगे। परंतु विशेष अवसरों पर सर्वसंघ जहां, जिसको यह अधिकार देगा, वहाँ उसके नामसे यह काम होगा।

८. पोष्टसे निर्णय—मंत्री प्रस्ताव विशेष को सर्वसंघ के सभासदों के पास सम्मति के लिये भेज सकेंगे और सब सदस्यों की सम्मति मिल जाने पर वह प्रस्ताव संघ की बैठक में पास किये समान ही माना जायगा। और कार्यवाही-बही में दर्ज किया जायगा।

(**विशेष सूचना**—श्री मुन्नालाल शाहा और दूसरे व्यक्तियों के संशोधनों तथा सुझावों का मतलब उनके भाषणों में आगया है, इसलिए परिशिष्ट में उनको अलग से शामिल नहीं किया गया।)

वर्णानुक्रमणिका

क्रान्ति के साथ जोड़ने का तरीका

मैं सन् सत्रह, अठारह, उन्नीस और बीस में इतिहास का प्रोफेसर था। चरखा रखना बेवकूफ़ी की बात समझता था। मेरी वृत्ति, शिक्षा-दीक्षा, सब कुछ उसके खिलाफ़ था। लेकिन उस बूढ़े ने चरखे का सम्बन्ध क्रान्ति के साथ जोड़ दिया, तो मुझे चरखा लेना ही पड़ा। ग्रामोद्योग देहातों में घर घर चलते थे। आज भी थोड़े बहुत चलते हैं। लेकिन गांधीने उनको भी क्रान्ति के साथ जोड़ दिया। किसी चीज़ को क्रान्ति के साथ जोड़ देने का तरीका बड़ा कारगर तरीका है। बड़ा तेज़ तरीका है। महात्मा की सब प्रवृत्तियाँ क्रान्ति के साथ जुड़ गयीं। और तो और, प्रार्थना भी क्रान्तिकारक हो गयी। भंगी का काम इस देश में कौन-सा सभ्य आदमी करता? लेकिन उसने उसे भी स्वराज्य के काम के साथ जोड़ दिया। उसने कहा कि मैं बतलाता हूँ कि अंग्रेजों को कैसे निकाला जाय। हमने कहा, बतलाओ। उसने कहा, चरखा लो, झाडू लो। इसलिये इन चीज़ों को अपनाना पड़ा। जिस चीज़ का ज़माने की इन्क़िलाबी माँग के साथ मेल होता है वे पुरानी होकर भी नया अर्थ लेकर आती हैं और क्रान्तिकारक रूप ले लेती हैं।

सेवाग्राम-सम्मेलन,

—आचार्य कृपलानी

सर्वोदय का मार्ग

कुछ लोग, जो कि अपने को व्यवहारवादी कहते हैं, सचाई पसन्द करते हैं, लेकिन एकपक्षी सचाई में ख़तरा देखते हैं। कहते हैं कि सामनेवाला अगर असत्य का उपयोग करता है, हिंसा करता है, तो हम ही सत्य और अहिंसा पर डंटे रहेंगे, तो हमारा नुकसान होगा। ये लोग वास्तव में सचाई का मूल्य ही नहीं जानते। अगर जानते होते तो ऐसी दलील नहीं करते। हमारे प्रतिपक्षी भूखे रहते हैं, तो हम ही क्यों खायँ, ऐसी दलील वे नहीं करते हैं। जानते हैं कि जो खायेगा वह ताक़त पायेगा। इसका प्रतिपक्षी से कोई संबंध नहीं है। 'एकपक्षी' खाना तो मंजूर है; लेकिन 'एकपक्षी' सचाई, प्रीति, मंजूर नहीं है। इसका क्या अर्थ है? सामनेवाला जैसा होगा वैसे हम बनेंगे? इसका मतलब यही हुआ कि वह हमें नचायेगा वैसे हम नाचेंगे। आरंभशक्ति—इनिशिएटिव—उसके हाथ में हमने सौंप दी। यह पुरुषार्थहीन विचार है। और उससे एक दुष्टचक्र तैयार होता है। दुर्जनता का एक सिलसिला जारी होता है। उसको तोड़ना है, तो हिम्मत करनी चाहिए और निष्ठापूर्वक, परिणाम का हिसाब लगाये बगैर, प्रेम करना चाहिए, उदारता रखनी चाहिए। आख़िर सत्य, प्रेम और सज्जनता ही भावरूप चीज़ें हैं। असत्यादि अभावरूप हैं। प्रकाश और अंधकार का यह झगड़ा है। उसमें प्रकाश को डर कैसे? यह है सत्याग्रह की विचारसरणी जैसी, मैं समझता हूँ। इसीमें सबका भला है। इसीलिए इसे सर्वोदय की विचारसरणी भी कहते हैं।

गांधीजी की हत्या हमारे लिए एक चुनौती है। अगर सचाई में हमारी परम निष्ठा है, उसका अमल हमारे निजी और सामाजिक जीवन में करने की वृत्ति हम रखते हैं, तभी इस चुनौती का हम स्वीकार कर सकते हैं। नहीं तो उस चुनौती का हम स्वीकार नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, बल्कि, इच्छा न रखते हुए भी, हम उस हत्याकारी के पक्ष में ही दाखिल हो जाते हैं। मैं आशा करता हूं कि गांधीजी की देहमुक्ति हममें शक्तिसंचार करेगी और हम सत्य-निष्ठ जीवन जी कर सर्वोदय की तैयारी के अधिकारी बनेंगे।

राजघाट, देहली
३०, जनवरी १९४९

—विनोबा

मुद्रक — नारायणदास जाजू, मुख्य प्रबन्धक, श्रीकृष्ण प्रिण्टिङ्ग वर्क्स, वर्धा